भवानी प्रसाद मिश्र का काव्य : वस्तु और रूप

(हैदराबाद विश्वविद्यालय की पीएच.डी.(हिंदी) उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध-प्रबंध)

2004

प्रस्तुतकर्ता

तात्याराव सूर्यवंशी

एम.ए., एम.फिल.

निर्देशिका :

प्रो.शशि मुदिराज,

पीएच.डी., डी.लिट.
हिंदी विभाग,
हैदराबाद विश्वविद्यालय,
हैदराबाद - 500 046

विभागाध्यक्षा :

प्रो.नूरजहाँ बेगम,

एम.ए.(हिंदी) एम.ए.(संस्कृत) पीएच.डी., डी.लिट.
हिंदी विभाग,
हैदराबाद विश्वविद्यालय,
हैदराबाद - 500 046

Hindi Department,
School of Humanities,
University of Hyderabad,
Hyderabad-500 046.

Date : 21/6/2004

This is to certify that I, TATYARAO SURYAVANSHI, have carried out the research work embodied in the present thesis for the full period prescribed under Ph.D. ordinances of the University.

I declare to the best of my knowledge that no part of this thesis was earlier submitted for the award of research degree of any University.

(Signature of the Candidate)
Name : Tatyarao Suryavanshi
Enrolement No. 99HHPH07

Supervisor

Head
Hindi Department 21/6/04

अध्यक्ष हिन्दी विभाग
The Head, Department of Hindi,
हैदराबाद विश्वविद्यालय
University of Hyderabad
हैदराबाद-500 046. (आं.प्र.)
Hyderabad - 500 046. (A.P.)

Probal D., 22.6.04

Dean
School of Humanities

DEAN
SCHOOL OF HUMANITIES
UNIVERSITY OF HYDERABAD
HYDERABAD-500 046

प्रस्तावना

काव्य एक नवीन सृष्टि है, उसकी रचना का आनंद जिसे मिल गया है वह धन्य है। उसे कोई भी संसार की वस्तु अच्छी नहीं लगती। काव्य सर्वोपरि आनंददायी वस्तु है। मानव जीवन में तो काव्य से बढ़कर आनंददायी वस्तु नहीं हो सकती। काव्य से मनुष्य में संस्कार का निर्माण होता है। उसके अंतः में स्नेह और माधुर्य का अंकुर होता है। वह सौंदर्य की दृष्टि प्रदान करता है। जिस प्रकार सौंदर्य-दर्शन से सहृदय आनंदित होता है उसी प्रकार सौंदर्य की रचना करके और सार्वजनिक आनंद बिखेर कर कवि प्रसन्न होता है। वह निराकार पदार्थों, भावों, विचारों को सजीव तथा साकार करती है। वह व्यापकत्व की ओर ले जाती है, जिससे हम देश, राष्ट्र, जाति, वर्ग, धर्म आदि संकीर्ण भावनाओं से ऊपर उठकर वैश्विक आधार प्राप्त कर सकते हैं। दूसरे शब्दों में कहें तो कविता वह साधन है जिसके द्वारा शेष सृष्टि के साथ मनुष्य के रागात्मक संबंध की रक्षा और निर्वाह होता है।

भवानी प्रसाद मिश्र की काव्य रचना-यात्रा भारतीय समाज और परिस्थितियों के कई दौर से गुजरी है। प्रारंभिक दौर में एक ओर राष्ट्रीय स्वतंत्रता का संघर्ष, जिसमें गांधी के नेतृत्व में हिंसा के जगह अहिंसा, नफरत की जगह प्यार और नैतिक एवं मानवीय आदर्शों का संपूर्ण आंदोलन था। दूसरी ओर कुछ स्वार्थी तत्वों द्वारा पूरे माहौल को निज हित में साधित करने की कुत्सित चेष्टा भी चल रही थी। भवानी प्रसाद मिश्र ने अपनी रचनाओं के लिए प्रायः गद्य-भूमिका भी नहीं दी कविता के माध्यम से ही निर्विवाद रहकर नवयुवकों को अपने से भी बड़ा बनने की चेतावनी दी। दूसरा सप्तक में संकलन की बनावट को बनाये रखने के लिए लगभग अनचाहे ही दो पृष्ठों का वक्तव्य दिया और "व्यक्तिगत" कविता संकलन में कविता के बारे में थोड़ी जानकारी। "बुनी हुई रस्सी" में कविता के विषय में कुछ बातें बता दी है, पर सच्चाई यह है कि भवानी प्रसाद मिश्र ने केवल कविता के माध्यम से अपनी बात कहना चाहा है तो एक प्रकार से वह पूरे साहस से, काव्य सृजन के सामने उपस्थित चुनौती का सामना किया है, "वस्तुपरक" एवं "शैलीपरक" स्तर पर। अतः कह सकते हैं कि भवानी प्रसाद मिश्र उन इने-गिने कवियों में हैं जिन्होंने कविता के माध्यम से ही समाज जीवन को प्रक्षेपित और संवर्धित करना चाहा है।

भवानी प्रसाद मिश्र के काव्य में "वस्तु" और "रूप" विषय पर शोध करने की आवश्यकता इसलिए नहीं है कि अब तक उन पर कोई क्रमवार विचार नहीं किया गया है अपितु इसलिए जरूरी है कि उनमें रचनात्मक स्तर पर सर्जनात्मक उपलब्धियों एवं नवीन दृष्टिभंगियों का जो विकास होता गया, उसका अध्ययन किया जाना आवश्यक है। मुझे "लक्ष्मण केडिया" की इस बात ने प्रेरित किया कि "राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन तथा स्वातंत्र्योत्तर काल में विभिन्न वैचारिक मान्यताओं और वादों के तहत पनप रही रूढ़ियों एवं शोषित मानव के संघर्ष-काल में इस रचनारत कवि के व्यापक सर्जना संसार के समग्र विकास पर न व्यापक चर्चा हुई है और न ही वस्तुपरक आलोचना।" जाहिर है साहित्य में वैचारिक मतभेद स्वाभाविक है और साहित्य के विकास के लिए संगत भी, परंतु दूसरे पक्ष के कवियों को एकबारगी नकार दिया जाना साहित्य के पर्यावरण के लिए अहितकर है। मूलतः प्रस्तुत शोध भवानी प्रसाद मिश्र के काव्य में "वस्तु और रूप" को समझने भर की कोशिश है। इस शोध-प्रबंध को अध्ययन एवं विवेचन की सुविधा के लिए पाँच अध्यायों में विभक्त किया गया है। प्रथम अध्याय में "वस्तु और रूप" का सैद्धांतिक विवेचन है जिसमें रूसी, मार्क्सवादी एवं भारतीय चिंतन अवधारणा के आधार पर विश्लेषित किया गया है।

अध्याय दो में भवानी प्रसाद मिश्र का व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर प्रकाश डाला गया है। इसमें युगीन वैचारिक परिप्रेक्ष्य तथा साहित्यिक एवं राष्ट्रीय आंदोलन का भी विवेचन किया गया है।

अध्याय तीन के अंतर्गत भवानी प्रसाद मिश्र के काव्य में विश्लेषित "वस्तु" को विवेचित किया गया है।

अध्याय चार के अंतर्गत भवानी प्रसाद मिश्र के काव्य में रूपायित विविध रूपों को विवेचित किया गया है।

अध्याय पांच में मिश्र जी के अद्योपांत काव्य में "वस्तु और रूप" का कालांतर में हुए बदलाव और परिवर्तन का विकासात्मक विश्लेषण किया गया है।

अंत में उपसंहार के अंतर्गत शोध-क्रम में प्राप्त निष्कर्षों को प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है तथा संदर्भ-ग्रंथ की सूची संलग्न की गयी है।

वैसे अनुसंधान कार्य का सीमातीत दायित्व होता है। इनमें गुरुजनों की सहायता अनिवार्य होता है। उनमें मैं सर्वप्रथम पूर्व विभागाध्यक्ष और मेरे गुरु एवं निर्देशिका प्रो.शशि मुदिराज जी

के प्रति अभारी हूँ जिन्होंने सहनशीलता एवं एकाग्रता के साथ विषय से लेकर संपन्न होने तक इस शोध-कार्य का निर्देशन किया। उनके सहयोग, प्रोत्साहन तथा स्नेहमयी फटकार के लिए मैं शाब्दिक आभार प्रकट करना कम समझता हूँ। पश्चात मैं विभागाध्यक्ष प्रो.नूरजहाँ बेगम के प्रति आभार प्रकट करता हूँ जिनका प्रत्यक्ष, अप्रत्यक्ष सहयोग बना रहा।

मैं हिंदी विभाग के सभी गुरुजनों के प्रति आभार ज्ञापित करता हूँ, उनका इस शोर्ध-क्रम में प्रत्यक्ष, अप्रत्यक्ष रूप से सहयोग मिलता रहा।

गुरुजनों के अलावा जिन महानुभावों, विद्वानों का सहयोग एवं स्नेह मुझे मिला उनमें विवेक वर्धिनी महाविद्यालय के हिंदी विभाग के गुरुजनों के प्रति आभार प्रकट करता हूँ। एस.एस. खुबा कॉलेज के अशोक कुमार को धन्यवाद देता हूँ जिन्होंने मुझे प्रेरित, उत्साहित किया है।

इस शोध-कार्य को पूरा करने में सहायक रहे इंदिरागांधी मेमोरियल ग्रंथालय, केंद्रीय विश्वविद्यालय हैदराबाद तथा कर्मचारी का त्वरित सहयोग मिला। उसी तरह नेश्नल ग्रंथालय, कोकत्ता, बैंग्लौर विश्वविद्यालय का ग्रंथालय, गुलबर्गा विश्वविद्यालय का ग्रंथालय, स्टेट ग्रंथालय हैदराबाद, उस्मानिया विश्वविद्यालय का ग्रंथालय आदि का सहयोग बराबर मिला। मैं उनके प्रति आभार ज्ञापित करता हूँ।

मैं उन सभी मित्रों, दोस्तों का केवल औपचारिकता के लिए आभार प्रकट करता हूँ क्योंकि यह शोध-कार्य उनके सहयोग तथा प्रेरणा से संपूर्ण हुआ है। उनमें-बोरट्टी, शशिकांत, श्याम, गुर्रम, डॉ.शर्मिला, डॉ.बिंदु, डॉ.नंदु, श्रद्धेय डॉ.पडिकल, डॉ.थिरुमल, रमेश, ममता और चंदु।

अंत में अपने माता-पिता एवं परिवार के सदस्यों को भूल जाना कृतघ्नता होगी, जिन्होंने मुझे झेला, सहन किया तथा मेरा उत्साह तथा हिम्मत बढ़ाया। अनुज अन्नाराव का सहयोग तथा बहन आष्टशिलाा की प्रेरणा तथा उत्साह उत्तरोत्तर मिलती रही, जिससे शोध-कार्य में स्फूर्ति जगी। मैं उनका आजीवन आभारी रहूँगा।

जी.राधाजी को धन्यवाद देता हूँ जिन्होंने इस शोध-प्रबंध को अपने कुशल क्षमता द्वारा टंकित एवं सुशोभित किया।

* * * * *

विषय सूची

प्रस्तावना **I-III**

अध्याय एक **01-38**

वस्तु और रूप का सैद्धांतिक विवेचन

1.1 वस्तु और रूप:भारतीय दृष्टिकोण

1.2 वस्तु और रूप:मार्क्सवादी दृष्टिकोण

1.3 वस्तु और रूप:रूसी रूपवादी एवं संरचनावादी दृष्टिकोण

1.4 हिंदी समीक्षा में वस्तु और रूप विषयक विवेचन

1.5 वस्तु और रूप:अंत:संबंध

1.6 निष्कर्ष

अध्याय दो **39-75**

भवानी प्रसाद मिश्र:व्यक्तित्व, रचना एवं परिप्रेक्ष्य

2.1 जन्म एवं शिक्षा

2.2 व्यक्तित्व

2.2.1 सादगी

2.2.2 जिंदादिली

2.2.3 समाधानी

2.2.4 मृत्युंजयी कवि

2.3 रचनाएँ

2.4 परिप्रेक्ष्य

2.4.1 युगीन परिप्रेक्ष्य

2.4.2 राष्ट्रीय आंदोलन

2.5 वैचारिक परिप्रेक्ष्य

2.5.1 गांधी दर्शन

2.5.2 प्रयोगवादी काव्य-दर्शन

2.5.3 मानवतावाद

2.5.4 नयी कविता-दर्शन

2.6 निष्कर्ष

अध्याय तीन **76-157**

भवानी प्रसाद मिश्र का काव्य:वस्तु

3.1 व्यक्तिपरक काव्य

3.1.1 पारिवारिक जीवन

3.1.2 गांधी दर्शन

3.1.3 धर्म

3.1.4 मानवता

3.1.5 दलित, पीडित महिलाएँ

3.1.6 समन्वयता

3.1.7 वर्तमान त्रासदी

3.1.8 आशा और आस्था

3.1.9 जिजीविषा

3.1.10 पीडा

3.2 वस्तुपरक काव्य

3.2.1 सामाजिक दर्शन

3.2.2 राजनीति एवं पूंजीवाद

3.2.3 सत्य और अहिंसा

3.2.4 ग्रामीण एवं शहरी संस्कृति

3.2.5 औद्योगीकरण यांत्रिक उन्नति और मनुष्य के पारस्परिक संबंध

3.2.6 राजनीतिःआदर्श से पलायन

3.2.7 नया जीवन

3.2.8 निष्कर्ष

अध्याय चार **158-232**

भवानी प्रसाद मिश्र के काव्य में ''रूप''

4.1 प्रकृति के विविध-रूप

4.1.1 प्रकृति के प्रति रागात्मक-रूप

4.1.2 प्रकृति का आलंबन-रूप

4.1.3 प्रकृति का उद्दीपन-रूप

4.1.4 प्रकृति में मानवीय चेतना

4.1.5 प्रकृति में व्यक्ति चेतना

4.1.6 प्रकृति का लोकमंगलकारी-रूप

4.2 बिंब-रूप

4.2.1 भव-बिंब

4.2.2 इंद्रिय बिंब

4.2.3 अलंकृत बिंब

4.2.4 सामाजिक बिंब

4.2.5 वस्तु बिंब

4.3 प्रतीक विधान का रूप

4.3.1 प्राकृतिक प्रतीक

4.3.2 व्यक्तिगत प्रतीक

4.3.3 परंपरागत प्रतीक

4.3.4 सैद्धांतिक प्रतीक

4.3.5 सांस्कृतिक प्रतीक

4.3.6 भावात्मक प्रतीक

4.4 गीत

4.4.1 शोक गीत

4.4.2 पत्र गीत

4.4.3 व्यंग्य गीत

4.5 शैली

4.5.1 सरस शैली

4.5.2 मधुर शैली

4.5.3 व्यंग्यात्मक शैली

4.5.4 वर्णनात्मक शैली

4.5.5 उद्‌बोधात्मक शैली

4.6 गजल एवं शेर

4.7 मुक्त छंद

4.8 खण्डकाव्य

4.9 भाषा

निष्कर्ष

अध्याय पाँच **233-284**

भवानी प्रसाद मिश्र के काव्य में ''वस्तु और रूप'' का विकासात्मक विश्लेषण

5.1 राष्ट्रीय आंदोलन एवं गांधी-दर्शन

5.2 विभिन्न काव्यांदोलन

5.2.1 छायावाद

5.2.2 प्रगतिवाद

5.2.3 प्रयोगवाद

5.2.3.1 वर्तुलाकार लय

5.2.3.2 वस्तु रूप संबंधों का अन्यथाकरण

5.2.3.3 स्वगत में मुक्त संवाद का फार्म

5.3 नई कविता

5.4 रचनात्मक संश्लिष्टता

5.5 लंबी कविता

5.6 हायकु

निष्कर्ष

उपसंहार **285-289**

ग्रंथ-सूची **290-296**

* * * * *

अध्याय एक

वस्तु और रूप का सैद्धांतिक विवेचन

1.1 वस्तु और रूपः भारतीय दृष्टिकोण

1.2 वस्तु और रूपः मार्क्सवादी दृष्टिकोण

1.3 वस्तु और रूपः रूसी रूपवादी एवं संरचनावादी दृष्टिकोण

1.4 हिन्दी समीक्षा में वस्तु और रूप विषयक विवेचन

1.5 वस्तु और रूपः अन्तःसम्बन्ध

1.6 निष्कर्ष

अध्याय एक

वस्तु और रूप का सैद्धांतिक विवेचन

शब्द कोश में प्रायः शब्द के बंधे हुए या रुके हुए अर्थों को दिया जाता है। "वस्तु" का अर्थ यों प्राप्त होता है- वास्तविक या कल्पित सत्ता, सत्य, वह सामग्री या साधना जिससे कोई चीज बनी हो, इतिवृत्त आदि। प्रमुखतः वास्तविक या कल्पित सत्ता का अर्थ ही व्यवहार में आता है। यह बात हमेशा ध्यान में रखे जाने योग्य है कि "वस्तु-जगत" (Content World) सैद्धांतिक रूप में मनुष्य-निरपेक्ष होता है। किंतु व्यवहार और निरे सैद्धांतिक रूप में अन्तर करना आवश्यक है। वस्तु जगत विराट है और मानव सीमित। मानव अपने अस्तित्व संघर्ष के दौरान चिंतन और लोलुपता के अनुपात में विराट वस्तु जगत को अपने अनुसार यथार्थ या वास्तविक बनाता है। उस वस्तु-जगत की चर्चा न करना बेमानी होगा, जो अब तक किसी भी रूप में मानवीय बोध के घेरे में समेटा नहीं जा सका।

भारतीय काव्यशास्त्रीय चिंतन में काव्य के घटक तत्वों वस्तु और रूप के बारे में विचारते हुए कुछ मतभेदों के बावजूद श्रेष्ठ काव्य के लिए उनके सहअस्तित्व और सहभाव की स्थिति जरूरी मानी गई है। इसी प्रकार पाश्चात्य साहित्यशास्त्र एवं सौदर्यशास्त्र में अन्य कलाओं के साथ-साथ कविता के संदर्भ में भी "वस्तु और रूप" पर गंभीरतापूर्वक विचारते हुए उसके घटक तत्व के रूप में वस्तु और रूप की आंगिक संघटना की अवधारणा प्रस्तुत की गई है।

प्रोटेगोरस ने कभी घोषणा की थी कि - "मनुष्य सारी वस्तुओं का माप है।"[1] प्रोटेगोरस की उपर्युक्त उक्ति का आज ज्ञान मीमांसात्मक महत्व ही माना जा सकता है। मनुष्य का ज्ञाता होना उसे किसी भी ज्ञान के विषय से महत्तर सिद्ध करता है। किसी भी संदेहवाद का उत्तर मनुष्य स्वयं है। यह सुखद रूप से विस्मयकारी तथ्य है कि आधुनिक युग में एक ओर तो मनुष्य स्वयं के विश्व-केन्द्र होने की पारम्परिक धारणा से विच्छिन्न हुआ है और दूसरी ओर इस युग की आधुनिकता की प्रमुख पहचान यही है कि मनुष्य ने अपने को, परिवेश के प्रति द्वन्दात्मक रिश्तों में अनुभव किया है।

---

[1] The History of Western Philosophy: Burtrand Russels, P-17

मनुष्य एक क्रिया है तो किसी और कारण से नहीं बल्कि अपने मनुष्य होने के कारण है। वह अपनी मानवता की रचना करता है। अपने मानवस्वरूप, विश्वात्मा का सृष्टा वह स्वयं है। उसके इसी रूप को, इसी धर्म को अथवा इसी गुण को सही परिप्रेक्ष्य में पहचान कर वह सोच आरंभ किया जा सकता है, जो अपने निष्कर्षों तक पहुँचने के यात्राक्रम में भटकावों का शिकार न हो।

बतेल्ति ब्रेख्त ने कहा है - Man, too, that is to say the flesh and blood Man, can be understood only in the light of the processes in which he is involved and brought which he exists.[2]

1.1 वस्तु और रूप: भारतीय दृष्टिकोण

"मानक हिन्दी कोश" में वस्तु का अर्थ है - वह जो कुछ अस्तित्व में हो। वह जिसकी वास्तविकता हो। वह जो किसी वाद-विवाद, आलोचना या विचार का विषय हो।[3]

हिन्दी विश्वकोश (The Encyclopedia India) में वस्तु का अर्थ इस प्रकार है - चीज। वह जिसका अस्तित्व हो, वह जिसकी सत्ता हो, वह जो सचमुच हो। जैसे- डर, कोई वस्तु नहीं। पदार्थ। नैयायिकों के मत से परिदृश्यमान जगत् में दो प्रकार की वस्तु होती है - भाव और अभाव।

वस्तुतः वस्तु-जगत में वह सारा अंश वर्ण्य की श्रेणी में आ सकता है, जो मानवीय बोधा, चेतना, ज्ञान आदि के सम्पर्क में आ सकता है। "वस्तु" शब्द के मनमाने दुरुपयोग के पीछे भी यही तथ्य सक्रिय रहता है।

प्रस्तुत प्रसंग में यह महत्वपूर्ण कतई नहीं है कि नाट्यशास्त्र और काव्यशास्त्र के अंतर को विवेचित किया जाय। यह एक निर्विवाद सच है कि नाट्यशास्त्र काव्यशास्त्र का पूर्ववर्ती है। उस में भरत मुनि ने नाट्य-वस्तु के प्रसंग में बल देकर लिखा है-

"न तत ज्ञानं न तत् शिल्पं, न तत् सा विद्या न सा कला।
न सा योगे न तते कर्म, नाट्योस्मिन यत्र दृश्यते।"[4]

---

[2] Quoted in "Marxist Aesthetics", Henry Arvon - P. 7
[3] खंड-पांच, पृ. 26
[4] नाट्यशास्त्र 1/117 -भरतमुनि, दिनकर के काव्य में अभिव्यंजना शिल्प, पृ. पर उद्धृत

अर्थात् जगत में ऐसा कोई ज्ञान नहीं है, ऐसा कोई शिल्प नहीं है, ऐसी कोई विद्या नहीं है, कला नहीं है, ऐसी कोई युक्ति नहीं है और ऐसा कोई कर्म नहीं है, जो नाटाी में दिखाई न पड़े। अर्थात् संसार की समग्र विद्या नाटाी एवं काव्य के अंग हैं।

जैसे कि काव्य में अभिव्यक्ति जिस बात की होती है, वह भी महत्वपूर्ण है ऐसा बहुत से विचारकों का मत है। काव्य में किस ढंग से अभिव्यक्ति हुई है, उस पर विचार करना उसके रूपवादी पक्ष के अन्तर्गत आता है, पर बहुत से विचारक काव्य को केवल कला नहीं मानते वरन् उसके अतिरिक्त उसे विद्या या सृष्टि अथवा रचना के रूप में स्वीकार करते हैं। अतएव उनके दृष्टिकोण से काव्य रूपी अभिव्यक्ति में तत्व क्या है? अर्थात् वह जिसकी अभिव्यक्ति है, वह वस्तु क्या है, यह भी एक महत्वपूर्ण प्रश्न है। इस पर पाश्चात्य साहित्य में काफी विचार हुआ है। परन्तु भारतीय साहित्य में यह पक्ष उपेक्षित रहा हो, ऐसी बात नहीं है। हमारा संत साहित्य, प्रगतिवादी-साहित्य प्रबन्ध काव्यों की परम्परा, में अभिव्यक्ति से अधिक उसके भीतर निहित संदेश और जीवन-दर्शन, नीति, संस्कृति आदि को महत्वपूर्ण समझा गया है।

कविता सरल होनी चाहिए। उसमें निर्मल यशवाले चरित्रों का वर्णन, निर्मल-विचार, कल्पना, प्रतीक, बिम्ब द्वारा वर्णन होना चाहिए। इसी प्रकार अभिव्यक्ति के साथ-साथ कविता में वर्णित भाव क्या है, इस पर भी विचार किया जाता रहा है। डॉ. भगीरथ मिश्र के अनुसार -"हम यह कह सकते हैं कि अभिव्यक्ति या कलावादी पक्ष के साथ-साथ उसके सामाजिक जीवन सम्बन्धी या वस्तुवादी पक्ष की भी परीक्षा होनी चाहिए और जो कृति दोनों ही कसौटी पर खरी उतरे वही उत्तम कविता होती है।"[5]

इस वस्तुवादी पक्ष को देखने परखने की अनेक कसौटियाँ हमें मिलती हैं। इन में मुख्यतः दो प्रकार की कसौटियाँ देखी जाती हैं- एक प्रचारवादी या आदर्शवादी द्वितीय यथार्थवादी या वास्तविकतावादी।

प्रचारवादी या आदर्शवादी पक्ष "वस्तु" को आदर्श के रूप में भला या बुरा मानकर उसके पक्ष या विपक्ष में प्रचार करता है। दूसरा पक्ष काव्य को जीवन की पुनः सृष्टि समझकर कवि के अनुभव और कल्पना में जो कुछ आया उसका वर्णन रूपों या बिम्बों की रचना द्वारा करता है। इन दोनों ही पक्षों के विस्तृत सिद्धांत मुकमल नहीं हैं, ऐसा नहीं। इन दोनों ही प्रकार के दृष्टिकोण को

---

[5] काव्यशास्त्रः पृ. 291

लेकर लिखने वाले आलोचक, विचारक चिंतन हमें मिलते हैं। हिन्दी का भक्ति काव्य काफी अंशों में आदर्शवाद या प्रचारवादी दृष्टिकोण को लेकर चलता है। इसी प्रकार पाश्चात्य साहित्य के अन्तर्गत नीतिवादी या साम्यवादी आदर्शों का प्रचार करनेवाले अनेक लेखक और आलोचक हैं। मैथ्यू अर्नाल्ड, जॉन रस्किन, लियो टाल्सटाय, क्रिस्टोफर कॉउवेल, रैलफाक्स आदि आदर्शवाद को लेकर चलने वाले हैं। वेलिन्स्की, चर्नीशेब्स्को, दोब्रोल्युबोव, जेम्स फेरेल, स्पेण्डर आदि यथार्थवादी दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हैं। फिर भी इन लेखकों और चिंतकों का मुख्य प्रतिपाद्य कविता में अभिव्यक्त "रूप" पक्ष से "वस्तु" पक्ष है। किन्तु इन समालोचकों का निष्कर्ष यह रहा कि काव्य-वस्तु के रूप में भाव, विचार, चरित्र, कथन, नीति, सिद्धांत आदि का अपना महत्व होता है। कुछ और गहराई से सोचें तो भाषा और शब्द भण्डार भी काव्य-सामग्री के रूप में आते हैं। अतः प्रश्न उठता है कि इस समस्त सामग्री का उपयोग और प्रयोग कवि ने किस प्रकार किया है और सामग्री तथा उसके उपयोग के परिणाम स्वरूप अन्ततोगत्वा रचना या कृति के रूप में हमें जो वस्तु प्राप्त होती है उसका प्रभाव और स्थायित्व क्या है? इसी अंतिम परिणति में ही कविता की प्रतिभा देखी जाती है।

विषय वस्तु का चरित्र इस बात की सूचना देता है कि कवि के जीवन की परिस्थितियाँ और उनके दबाव का स्वरूप कैसा है। वेंलेस स्टविंस ने विषय- वस्तु के चुनाव की पृष्ठभूमि में कवि-कलाकार के नये-पन के प्रति आग्रह को भी महत्वपूर्ण माना है। "Just as the choice of subject is unpredictable at the outset, so its development after it has been choosen, is predictable."[6]

यदि वस्तु का संवेदनाओं के द्वारा पूरी तरह से आन्तरिकीकरण न हुआ हो, तो रचना का उस विषय वस्तु से सम्बन्ध शिथिल और कामचलाऊ होगा।

भारतीय काव्यशास्त्र के आचार्यों ने जिसे सौदर्य कहा है वह प्रकारान्तर से रूप-विन्यास की आंतरिक पहल है।

अङ्गप्रत्यङ्गकानां यः सन्निवेशी यथोचितम्।
संशिलष्ट संधिबनधः स्यात् तत् सौंदर्यमुदाहतम्।

---

[6] Poets worked-Reginald Gibbons, P-5

डॉ. नामवसिंह ने इस श्लोक की व्याख्या करते हुए लिखा है कि "जब रूप विन्यास अंग प्रत्यंग से यथोचित सन्निविष्ट, संश्लिष्ट तथा संन्धिबन्ध होता है तभी वह स्वाभाविक प्रतित होता है। भावों के साथ उसका मेल भी तभी बैठ सकता है और ऐसी ही स्थिति में किसी प्रकार के आभूषण बिना ही शरीर विभूषित मालूम होता है। सुढर और सुडौल अंग यष्टि अपने आप ही शोभन है। इसी को आचार्य ने रूप संज्ञा दी है।"[7]

अङ्गान्य भूषितान्येव केनचिद् भूषणादिना।

येन भूषितवद् भान्ति तद् रूपमिति कथ्यते।।

भाव और रूप की पूर्ण संगति के बाद कभी-कभी काव्य की रूप विधि एक ओर काम करती है। अपनी सार्थकता प्रमाणित कर चुकने के बाद जब "रूप" किसी अतिरिक्त भाव की व्यंजना करता है तब वह "प्रतीक" हो जाता है। "झंझा" जब अपनी ध्वनि से आँधी-पानी दोनों का पूर्ण बोध करा देती है, तो उसके रूप की सार्थकता पूरी हो जाती है। किंतु इसके आगे बढ़कर जब वह किसी हृदय की व्यथा और क्षोभ की ओर संकेत करती है तो अपनी सार्थकता के अतिरिक्त कार्य करती है। काव्य के क्षेत्र में "रूप" का यह अतिरिक्त कार्य "प्रतीक" और "व्यंजना" कहलाता है तथा वस्तु जगत में लावण्य।

डॉ.नगेन्द्र ने काव्यशास्त्रीय, रीति आचार्यों की निंदा करते हुए लिखा है कि -इनके दोष पहले सामने आते हैं और गुण बाद में। इन का पहला दोष है सिद्धांत-प्रतिपादन में मौलिकता का अभाव। काव्यशास्त्र के क्षेत्र में मौलिकता की दो कोटियां हैं- एक, नवीन सिद्धांतों की उदभावना, दूसरी के अन्तर्गत प्राचीन सिद्धांतों का पुनराख्यान आता है।[8]

भारतीय काव्यशास्त्र के आचार्यों में "शब्द" और "अर्थ" या (रूप और वस्तु) को लेकर जो मतभेद की स्थिति उभरती रही, उसे दो सामाजिक शक्तियों के वैचारिक संघर्ष के रूप में देखना चाहिए। इस संघर्ष का कारण है भारतीय समाज की बहुस्तरीय संरचना। आचार्यों पर विभिन्न सामाजिक स्तरों का दबाव था। परम्परा का भी दबाव था, लेकिन संघर्ष उग्र नहीं हो पाया। इसका कारण यह था कि सभी आचार्यों ने सामंती ढांचे को स्वीकार कर लिया था। इसी में जिन आचार्यों ने सामाजिकों (यानी दर्शक पाठक और श्रोता) को महत्व दिया, उन्होंने अर्थ को यानी अलंकार्य(वस्तु) को दिया और जिन आचार्यों ने सामाजिकों के बदले आश्रयदाता, राजाओं

---

[7] प्रगतिवादी कविता में वस्तु और रूपः डॉ.रविरंजन, पृ.55 से उद्धृत

[8] काव्य-शास्त्रः डॉ.नगेन्द्र, पृ.17

अथवा नायकों को महत्व दिया वे अलंकार को महत्व दिया। भारतीय काव्य चिंतन परम्परा में-सर्व प्रथम भामह ने अलंकारों को ही काव्य-सौंदर्य का एकमात्र कारक घोषित किया। ये हमारी काव्यशास्त्रीय परम्परा में रूपवादियों के आदि गुरू हैं। इन के बाद वामन(8 वी सदी) ने "रीति" को काव्य की आत्मा और विशेष-प्रकार की पद रचना को "रीति" कहा। वास्तव में काव्य की सामाजिक, वैचारिक ही नहीं, संवेदनात्मक भूमिका का निषेध करने के उद्देश्य से ही अलंकार या रीति को काव्य की आत्मा कहा जाने लगा। काव्य की उपर्युक्त भूमिका का निषेध सामंती समाज के प्रभुत्वशाली वर्गों के हितों के अनुकूल था। दरअसल यह आकस्मांत नहीं है। वर्तमान के रूपवादी भी भिन्न-भिन्न भाषा में, भिन्न-भिन्न संदर्भ में साहित्य एवं कला की सामाजिक, वैचारिक एवं सैद्धांतिक भूमिका का निषेध कर रहे हैं। अतित में हम देख सकते हैं कि वक्रोक्ति सिद्धांत के प्रवर्तक कुंतक 10-11 वी शती में अलंकारवादियों में सबसे मूर्धन्य रह चुके हैं। उन्होंने अलंकार विषयक युक्ति संगत दृष्टिकोण अपनाकर शब्द, अर्थ और अलंकार की समष्टि को काव्य कहा, चूंकि जब उन्होंने वक्रोक्ति को समस्त अलंकारों का मूल घोषित किया तो कथन-भंगी के निकट हो गये और रूपवादी के कतार में समा गये।

इसी प्रकार डॉ.निर्मला जैन के अनुसार वस्तु निरपेक्ष होती है और काव्य वस्तु सापेक्ष। उन्होंने प्रकारान्तर से निजता की ओर ही संकेत किया था। निजता ही वह बिंदु है, जहाँ काव्य-वस्तु और काव्य-भाषा का अंतर मिट जाता है क्योंकि हम काव्य-वस्तु को काव्य भाषा में ही जानते हैं। डॉ.परमानंद श्रीवास्तव के अनुसार, "काव्य भाषा ही काव्य वस्तु को जानने का विश्वासनीय आधार है-बल्कि काव्य वस्तु काव्य भाषा में ही उपलब्ध है-काव्य भाषा के बाहर उसे निर्धारित नहीं किया जाता।"[9]

वस्तु और रूप को स्पष्ट करते हुए डॉ.रामविलास शर्मा ने "वस्तु" को काव्य में निर्णायक भूमिका के रूप में स्वीकारा है। उनके अनुसार-"साहित्य का शिल्प, उसके विभिन्न रूप, सामाजिक विकास से ही संभव हुए हैं, ये उस पर बहुत कुछ निर्भर होते हैं। और यह बात भी आकस्मिक नहीं है कि हर प्राचीन साहित्य में महाकाव्य साहित्य का मुख्य रूप बताया गया है। जनता तक साहित्य पहुँचाने के साधनों में जो परिवर्तन हुए, उनका प्रभाव उनके रूपों पर भी पड़ा है।"[10] लेकिन रूप और वस्तु के समाज-सापेक्ष संबंध में निर्णायक भूमिका विषय-वस्तु की होती

[9] साक्षात्कार : मार्च-मई 1981-काव्य भाषा और काव्य वस्तु नामक लेख-पृ.97-परमानंद श्रीवास्तव
[10] स्वाधीनता और राष्ट्रीय साहित्य-पृ.8

है। डॉ.शर्मा ने लिखा है-"साहित्य रूप और वस्तु एक-दूसरे से संबंध ही नहीं होते हैं बल्कि एक-दूसरे को प्रभावित भी करते हैं। ... लेकिन यह बात साहित्य कृति के संबंध में ही सही है, यानी उस वस्तु के संबंध में, जो हमें साहित्य की रचना प्रक्रिया के संपन्न होने के बाद प्रतिफल के रूप में प्राप्त होती है। ....कला और विषय-वस्तु दोनों ही समान रूप से साहित्य-रचना के लिए निर्णायक महत्व ही नहीं है। निर्णायक भूमिका हमेशा विषय-वस्तु की होती है।"[11]

इस प्रकार काव्य वस्तु का "वस्तु-तत्व" और उसे अभिव्यक्त करता "रूप-तत्व" अभिन्न हो जाते हैं। जब रूप-तत्व को अभिव्यक्त करने के बजाय उसे छुपाने का प्रयत्न करते हैं तो इससे भी वस्तु-तत्व की खोट ही उजागर होती है। वस्तु की वास्तविकता की तथा उसके अमूर्त होकर अवास्तविक होने के उदाहरणों को ध्यान में लायें अथवा प्रतीकों और बिंबों के अतिशय प्रयोग को चिंतन का विषय बनायें तो स्पष्ट ही यह ज्ञात हो जाता है कि वस्तु-तत्व का अभिव्यक्ति प्रकार ही रूप-तत्व है। "हर्बर्ट मारकूज" ने इसे बल देकर कहा है-"रूप होता हुआ वस्तुतत्व"।

इस प्रकार मानवीय निजता की कोटियों से गुजरकर वस्तु का काव्य-वस्तु बनना तथा उस काव्य-वस्तु का रूप होते हुए चलना ही एक सही कविता को प्रस्तुत करता है।

1.2 वस्तु और रूप : मार्क्सवादी दृष्टिकोण

सौंदर्य को शास्त्र की संज्ञा से सर्वप्रथम अभिहित करनेवाले "बामगार्टेन" की "एस्थेटिक्स" नामक पुस्तक 1750 में छपी और सौंदर्य एक बार फिर से साहित्यकारों, चिंतकों और दार्शनिकों की चिंता की मुख्य परिधि में आ गया। बामगार्टेन को इस बात का श्रेय जाता है कि एक विस्तृत विषय को उसने नये सिरे से, नई उत्तेजना के सहारे जगा दिया। इसलिए उसे कुछ लोग सौंदर्यशास्त्र का प्रवर्तक कहते हैं। इसके बाद इमानुएल कांट और बेनेदितो क्रोचे आते हैं। "कांट" ने सौंदर्य के निरपेक्ष और सापेक्ष दो प्रकार किए और अनुभूति तथा बुद्धि की विरोधी धाराओं में समन्वय लाना चाहा। कांट ने सौंदर्य की उपयोगिता से अलग किया और कलात्मक रूप को विचार तत्वों से अलगाया। इस तरह कांट ने "रूपवादी सौंदर्यशास्त्र के विकास में ही योगदान दिया। "हेगेल" ने सौंदर्य का संबंध दिव्य चेतना से जोड़ते हुए उसकी आत्मवादी (पदार्थ में आत्मा का प्रकाश नहीं सौंदर्य है) व्याख्या प्रस्तुत की। हीगेल की सुक्ष्मता से "क्रोचे"

---

[11] प्रगतिशील साहित्य की समस्याः पृ.7

और भी चरम तक खींच ले गये। क्रोचे ने ज्ञान को दो प्रकार का माना-सहज ज्ञान और तर्काश्रित ज्ञान। क्रोचे मानते हैं कि सौंदर्य कल्पनामूलक होता है। अर्थात वह वस्तु में नहीं, दृष्टि में स्थित होता है। कल्पना से वस्तु की सत्ता सुंदर अभिव्यक्ति में मानों भिन्न रूप ग्रहण कर लेती है। और इस तरह से सौंदर्य वस्तु पर कल्पना द्वारा आरोपित चित्र होता है। यही कारण है कि क्रोचे अभिव्यक्ति में ही सौंदर्य पाते हैं।

संवेदन और सहजानुभूति का संबंध विचारणीय है। शुद्ध संवेदन एक रूप रहित द्रव्य है, उसका कोई रूप हमारे मानस में कल्पित नहीं हो सकता। द्रव्य अपने प्रत्याहार की स्थिति में निश्चेष्ट रहता है। हम उसका अनुभव करते हैं, पर उसे अभिव्यक्त नही कर पाते। द्रव्य या वस्तु के बिना मानव-ज्ञान या किसी प्रकार की क्रियाशीलता भी संभव नहीं। कभी-कभी हम अपने अंतकरण की बातों को समझने की, उन्हें व्यक्त करने की चेष्टा करते हैं, पर व्यर्थ कुछ स्पष्ट नहीं होता। यही वह क्षण है जब हम वस्तु तथा रूप के स्पष्ट भेद को समझ सकते हैं। ये दोनों वस्तुतः दो नहीं एक ही है। एक अंतस है, दूसरस बाह्य। एक दूसरे का विरोध नहीं होता दोनों में तादात्म्य होता है।

प्रगतिवादी और प्रगतिशील चिंतकों ने वस्तु और रूप संबंधी विचार कुछ यूँ है-कला में दोनों वस्तुगत आधार को स्वीकार करते हैं। रचना में शक्ति स्त्रोत एवं विधायक तत्व के रूप में वस्तु को स्वीकारा गया है। रूप विधान बाहरी अलंकरण न होकर आंतरिक प्रक्रिया का अंग है। यथार्थ की ठोस पहचान के लिए विषय-वस्तु का होना आवश्यक हो जाता है। वस्तु तथा रूप में जैविक एकता पर भी जोर दिया जाता है। प्रगतिवादी समीक्षा की मान्यता है कि पुराना शक्तिशाली रूप, वस्तु को विकृत कर सकता है जबकि प्रगतिशीलों की मान्यता है-शक्तिशाली वस्तु सामग्री रूप को परिवर्तित कर सकती है। प्रगतिवादी रूपवादिता को नहीं स्वीकारते जबकि प्रगतिशील इसे स्वीकारते हैं। उनका विचार है कि वस्तु से रचना की मौलिकता का और रूप से सर्जनात्मकता की पहचान होती है। डॉ.नामवर सिंह प्रगतिवादी होते हुए भी वस्तु की सृजनात्मकता को स्वीकार करने का आग्रह करते हैं।

सौंदर्य को वस्तुगत मानते हुए भी दोनों के विचारों में अंतर है। मार्क्सवादी यथार्थ जगत के सौंदर्य को कल्पना के सौंदर्य से श्रेष्ठ मानता है, जबकि दूसरे कल्पना सौंदर्य को यथार्थ का गुणात्मक परिवर्तन मानते हैं। उनकी दृष्टि में-"प्रकृति सौंदर्य का मानव जीवन की व्याख्या में महत्वपूर्ण स्थान है। चर्नीशेवस्की जैसे विचारक सौंदर्य की द्वन्द्वात्मक स्थिति को नकारते हैं।

इंद्रियों द्वारा जो सौंदर्य ग्रहण किया जाता है वह भावना के संपर्क में आकर भी वस्तुगत ही रहता है। वस्तुगत होकर भी सौंदर्य में भिन्नता-व्यक्ति के भाव, संवेदना एवं विचार के आधार पर हुआ करती है। उस में सामाजिक-सांस्कृतिक संगठन का भी बहुत बड़ा हाथ होता है। वह कर्मोद्बोधक होता है तथा सामान्य सुख से उच्चतम और सूक्ष्म होता है। इस प्रकार कवि की भावना और कल्पना को महत्व प्राप्त हो जाता है।

इंग्लैंड के प्रसिद्ध मार्क्सवादी लेखक कॉडवेल ने "सौंदर्य" पर अपने निबंध में सौंदर्य क्या है इस प्रश्न पर लिखा है-"सब से सीधा उत्तर यह है कि सभी वस्तुओं (सुंदर वस्तुओं से) से मनुष्य का सामान्य संबंध है। इसलिए सौंदर्य मनुष्य में हैं। मनुष्य की एक दशा का नाम सौंदर्य है। पूंजीवादी सौंदर्यशास्त्री के लिए समस्या का यह बहुत सीधा समाधान इतना स्पष्ट मालूम होता है कि अन्य व्यक्ति कुछ और सोचे उसका धैर्य छूट जाता है।"[12] कोडवेल ने इस तरह के सौंदर्यशास्त्रियों में इंग्लैंड के विचारक आई.ए.रिचर्डस की गणना की है और उनके आत्मगत सौंदर्यवाद की आलोचना की है। किंतु कोडवेल के लिए सौंदर्य सी वस्तुगत सत्ता भी नहीं है, वे उसे वस्तु और मानव मन का परस्पर संबंध मानते हैं। मानवमन से स्वतंत्र सौंदर्य को वह भाववादी दार्शनिकों की कल्पना, सौंदर्य-संबंधी निराकार भावना मानते हैं।

मार्क्सवादी साहित्य में आर्थिक-व्यवस्था को आधार तथा कला, साहित्य, संस्कृति आदि को उस पर निर्मित इमारत माना जाता है। आर्थिक व्यवस्था बदलने पर उसकी इमारत भी बदल जाती है। अर्थशास्त्र की आलोचना को एक देन में मार्क्स ने, विचारधारा के अंतर्गत मनुष्य के सौंदर्य-बोध को गीना है। मार्क्सवादी साहित्य में कला, साहित्य और संस्कृति को मनुष्य की विचारधारा के रूपों में गिना जाता है।

किसी भी युग का साहित्य उस समय के संसार और समाज के प्रति प्रचलित धारणाओं से अछूता नहीं रहता। साहित्यकार संसार और समाज के प्रति कोई-न-कोई दृष्टिकोण अपनाए बिना तो रचना कर ही नहीं सकता। समाज-विज्ञान के विकास ने उसके सामने समस्या यह खड़ी कर दी है कि वह वैज्ञानिक-दृष्टिकोण अपनाए या अवैज्ञानिक साहित्यकार विज्ञान के प्रकारों की सहायता से अपनी रचनाएँ और भी प्रभावशाली बना सकते हैं। उन्हें समाज हित के लिए और भी सुंदर तथा उपयोगी बना सकते हैं। उनके लिए सुंदर मृत्यु में है, अन्याय, अत्याचार को फरेब से ढँकने में है, भविष्य से त्रस्त होने और क्षण में ही जीवन की सांधे पूरी करने में है। जो जीवित

और उदीयमान है, उनके लिए सुंदरता सत्य में है, मृत्यु को जीतने में है, अज्ञात, अत्याचार और अन्याय की दुनिया को दफनाने में है, सुख और शांति के उज्वल भविष्य की ओर बढ़ने में है। सौंदर्य उस मंजिल तक पहुंचने का शक्तिशाली साधन है।"[13]

सौंदर्य क्या है? इस प्रश्न का उत्तर देते हुए प्रेमचंद ने कहा था-"जहाँ सामंजस्य या हम आहंगी है, वह सौंदर्य है, वही सत्य है, वही हकीकत है। जिन तत्वों से जीवन की रक्षा होती है, जीवन का विकास होता है, वही हुस्न है।"[14] अतः सौंदर्य कोई जड और निर्जीव अवस्था का सूचक नहीं है, बल्कि वह खास किस्म के संबंध तथा प्रसंगों में गतिशील रहता है।

मार्क्सवादी कला-चिंतन में "सौंदर्य" को उसकी समस्त समग्रता तथा वस्तुगत सत्ता के साथ विश्लेषित तथा व्याख्यायित किया गया है। इनके अनुसार कला कोई निरपेक्ष या स्वतंत्र-वस्तु नहीं है, बल्कि प्रकृति तथा मानव-जीवन के सौंदर्य के ही एक अंग के रूप में सौंदर्य की सार्थकता होती है, अन्यथा सुंदर-असुंदर का भेद ऊपरी होगा। "सौंदर्य" की यह व्याख्या मार्क्सवादी चिंतन को भाववादी चिंतन से अलग कर विशिष्टता प्रदान करती है। डॉ.रामविलास शर्मा ने "सौंदर्य" की वस्तुगत सार्थकता को सारांश रूप में प्रस्तुत करते हुए लिखा है-"सौंदर्य का स्रोत जनता है। समाज के भीतर जो मरणशील तत्व है, जो जीवंत है और जो उदीयमान तत्व हैं इनसे बाहर सुंदर-असुंदर की सत्ता नहीं है।"[15]

स्पष्ट है कि सौंदर्य का आधार तथा स्त्रोत अकेले व्यक्ति मन का ग्रह नहीं है, बल्कि यह लोक-जीवन ही है जिसकी गहराइयों और मर्मस्थलों में पेठव वास्तविक सौंदर्य का मोती सच्चा कवि या कलाकार बीनकर लाता है। कला सृजन का वास्तविक और सार्थक "सौंदर्य" इसी में निहित है। शुल्क जी ने ठीक ही कहा था-"सच्चा कवि वही है जिसे लोक-हृदय की पहचान हो, जो अनेक विशेषताओं और विचित्रताओं के बीच मनुष्य जाति के सामान्य हृदय को देख सके।"[16] कविता या कला को नितांत "समाज निरपेक्ष" तथा "सौंदर्य" को "वैयक्तिक सत्ता" के रूप में मानने वाले कलाविदों तथा चरम व्यक्तिवादियों की शुक्ल जी की उक्त धारणा के मर्म को पहचान लेना चाहिए।

---

[12] आस्था और सौंदर्यः पृ.27
[13] लोक जीवन और साहित्य-पृ.15
[14] प्रेमचंदः कुछ विचार-पृ.76
[15] लोक जीवन और साहित्य-पृ.15
[16] चिंतामणी भाग-1-पृ.183

"सौंदर्य" की वस्तुगत सत्ता को स्वीकारने के बाद काव्य के संदर्भ में रूप के आधार को समझना सरल हो जाता है, क्योंकि रूप का संबंध मूलतः तथा अनिवार्यतः सौंदर्य से ही है। मोटे तौर पर काव्य के लिए रूप उसका प्रभावोत्पादकता तथा सार्थकता बढ़ाने के लिए ही माना जाता है। दूसरे शब्दों में विषय-वस्तु के जो विभिन्न पहलुओं की सुंदरता होती है, उसे उचित मात्रा में उद्घाटित करने का कार्य काव्य रूप करता है। काव्य में रूप वास्तव में काव्य के वस्तु-तत्व को ठीक से समझने और उसके अन्तर्जगत के मार्मिक तत्वों के गहरी समझ के लिए अनिवार्य है। इसकी अनिवार्यता सिद्ध करते हुए मुक्तिबोध की यह टिप्पणी महत्वपूर्ण है-"पाठक का यह आदि कर्तव्य और प्रथम धर्म है कि वह कलात्मक सौंदर्य को आत्मसात करते हुए कृति के मर्म में प्रवेश करे। कलात्मक सौंदर्य वह सिंह द्वार है, जिसमें से गुजर कर ही कृति के मर्म-क्षेत्र में विचरण किया जा सकता है।"[17]

मार्क्स पूर्व, सौंदर्य संबंधी अवधारणा को मुख्य रूप से आत्मगत अथवा विषयीगत, आदर्शवादी रूप में देखा जाता था। इन्होंने सौंदर्य को वस्तु से अलग एक अतींद्रीय सत्ता के रूप में माना। प्राकृतिक सौंदर्य को भी विशेष वस्तु से अलग, दृष्टा में केंद्रित बनाया था। अर्थात एक ही सौंदर्यानुभूति अलग-अलग दृष्टा के लिए अलग-अलग रूप ग्रहण करेगी। मार्क्सवादी सौंदर्य चिंतन को विशुद्ध रूप से आत्मगत नहीं मानता, बल्कि उसे वह सामाजिक तथा संश्लिष्ट मानता है, जिसका निर्धारण प्रकृति, वस्तु तथा समाज सम्मिलित रूप से करते हैं। मनुष्य के भीतर सुंदर और असुंदर विषयक अनुभूति और चेतना यों ही उत्पन्न नहीं हो जाती, बल्कि उनका विकास उत्पादन की प्रक्रिया तथा परंपरा एवं संस्कारों से जुड़कर होता है और यह एक लंबी तथा जटिल प्रक्रिया होती है। मार्क्सवादी दृष्टिकोण के तहत रूप-विधान का अध्ययन जहाँ तक संभव हो वस्तु से निकटतम संपर्क स्थापित करते हुए किया जाता है। विषय-वस्तु से अलग करके रूप को न तो पूरी तरह समझा जा सकता है और न उसे ठीक प्रकार से पसंद या नापसंद ही किया जा सकता है।

मनुष्य का प्रकृति से सौंदर्यमूलक संबंध एवं प्राकृतिक सौंदर्य की अनुभूति मनुष्य के द्वारा ही उसको मानवीकृत रूप में देखने से हुई है। एंगेल्स के अनुसार-"मनुष्य अपने रक्त, मांस, मज्जा, मस्तिस्क समेत-प्रकृति का है, और प्रकृति में है। केवल मनुष्य में ही प्रकृति स्वयं के प्रति

[17] गजानन माधव मुक्तिबोध-कामायनीः एक पुनर्विचार-पृ.169

सचेत होती है।"[18] अर्थात प्रकृति के निर्जन तथा निरपेक्ष सौंदर्य के प्रति भी चेतना मनुष्य में ही होती है। वह प्रकृति के नियमों को जानने-समझने का प्रयत्न करता है तथा उन नियमों को मानते हुए अपनी इच्छाओं के अनुसार प्रकृति का उपयोग करता है।

मनुष्य को सौंदर्य-बोध भी किसी अलौक सत्ता ने वरदान रूप में नहीं दिया। सौंदर्य-बोध भी एक प्रक्रिया-विकास की मंजिल तय करके मनुष्य ने अर्जित किया है।

मार्क्सवादी सौंदर्य दृष्टि की विवेचना करते समय यांत्रिक पद्धति नहीं अपनाते। "डार्विन" का विचार था कि सौंदर्य मनुष्य से स्वतंत्र स्थित है। प्रकृति फूल इस लिए नहीं खिलाती कि उसे देखकर मनुष्य पुलकित हो। फूल खिलते हैं कीटादी को आकृष्ट करने के लिए। इस से उनकी संख्या वृद्धि होती है। "हेकल" ने अपनी पुस्तक "विश्व प्रपंच" में सब कुछ को-सौंदर्य बोध के अनेक रूपों को भौतिक क्रिया कलाप से जोड़ा है। हेकल की व्याख्या में मानवीय चेतना या अनुभूति की कोई महत्वपूर्ण भूमिका नहीं है। इसके विपरीत "कांट" जैसे भाववादी दार्शनिक सौंदर्य-बोध को (आयडिया) से पृथक कुछ नहीं मानते। वे सौंदर्य की बात करते हैं, सुंदर वस्तु को कोई महत्व नहीं देते।

मार्क्सवादी विचारक इन दोनों अतियों से बचते हैं। वे मानते हैं कि जिन वस्तुओं को हम सुंदर मानते हैं उनकी सत्ता मनुष्य से पूर्व और स्वतंत्र हो सकती है। उन में सौंदर्य की खोज मनुष्य की भाव-शक्ति ने की है। सौंदर्य रूप और चेतना के संघात से उदित होती है। सौंदर्य रूप का गुण है जिसे मानवीय चेतना ग्रहण करती है।

मार्क्सवादी सौंदर्य दृष्टि के अनुसार प्रकृति और मानव के प्रत्येक स्तर का सौंदर्य सौंदर्यशास्त्र के विवेचन का विषय होता है। प्राकृतिक सौंदर्य की महत्ता मानव-जीवन के संदर्भ में ही प्रमाणित होती है। अतः प्रकृति और काव्य का सौंदर्य सही ढंग से मानव-जीवन के परिप्रेक्ष्य में ही विवेचित-व्याख्यायित हो सकता है। सौंदर्य सिर्फ इंद्रिय-बोधात्मक नहीं होता है, उसकी सुक्ष्म सत्ता मनुष्य की भावनाओं और विचारों तक में विराजमान होकर रूपायित होता जाता है। इस प्रकार सौंदर्य प्रकृति और मनुष्य की चेतना तक में वस्तुगत रूप में उपस्थित होता है। सौंदर्य का स्वभाव ही वस्तुनिष्ठ होता है क्योंकि "सुंदर" शब्द का प्रयोग विशेषण के रूप में होता है-जिसका विशेष्य कोई-न-कोई वस्तु अवश्य होता है। सौंदर्य आस्वाद्य होता है और मनुष्य की अनुभूति से जुड़ा होता है। इसलिए उस वस्तु को गुण के प्रभाव की अनुभूति वास्तव में वस्तु के

---

[18] वी.रोमेनेथो का निबंध "द बियुटी ऑफ नेचर"-देखें प्राब्लेम्स ऑफ मॉडर्न एस्थेटिक्स पुस्तक में-पृ.125

प्रभाव की अनुभूति होती है। इस प्रकार हम पाते हैं कि सौंदर्यात्मक अनुभूति वस्तुतः "वस्तु" केंद्रित होती है, जो "रूप" में ढलकर फैलती है।

नारियों के प्रति मार्क्सवादियों के मन में एक विशेष भाव तथा संवेदनशीलता है जो कि सहानुभूतिपरक है। फलतः इनकी नारी सौंदर्य विषयक दृष्टि भी भिन्न है। मार्क्सवादी काव्य में नारी कहीं भी अकर्मण्य नहीं मिलती। वह गलित जीवन अथवा दारुण परिस्थिति की शिकार हो सकती है किंतु अपनी यथास्थिति से संतुष्ट कहीं नहीं मिलती। वह निरंतर अपनी स्थिति के प्रति चैतन्य और संघर्षशील मिलती है। वह दुःस्थिति से उबरने की चेष्टा करती है। इनके अनुसार कुरूपता का अर्थ श्यामलता नहीं है। मार्क्सवादी कुरूप उसे मानते हैं जो अगतिशील हो। इनके पात्रों में भी अगतिशीलता मिलती है किंतु वह अगतिशीलता, गतिशील बनने की प्रेरणा देती है। नारियाँ जीवन के संवर्द्धन और परिष्कार की बात करती है। वे कहीं भी पराजय की बात नहीं करती। मार्क्स ने नारी जाति के विषय में प्रचलित सामंती पूंजीवादी मान्यताएँ खंडित की है। नारी के विषय में नये वैज्ञानिक और ऐतिहासिक सत्य को सामने रखा।

मार्क्सवादी सौंदर्यबोध कला और राजनीति का संबंध बनाकर कला और दर्शन तथा कला और नैतिकता को पास लाता है। इस पर मुक्तिबोध ने लिखा है कि-"आदर्शवादी या भाववादी सौंदर्यबोध में राजनीति और कला का विरोध है पर मार्क्सवादी कहता है क्योंकि संपूर्ण जीवन राजनीति से प्रभावित होता है, अतएव कला को राजनीति से पृथक नहीं किया जा सकता। परिवर्तन में राजनीति औजार का काम करती है।"[19] आगे मुक्तिबोध ने दायित्व पर बल देकर लिखा है कि-"किंतु केवल राजनीतिक मंच से परिवर्तन नहीं होता। परिवर्तन हेतु जितना गुरुतर दायित्व राजनीति का है उतना ही स्वयं समाज का भी।"[20]

1.3 वस्तु और रुप : रूसी रूपवादी एवं संरचनावादी दृष्टिकोण

सन् 1917 में विक्टर श्क्लोव्स्की (Shklovsky) द्वारा रूपवादी आंदोलन चलाया गया। उनके द्वारा कला या साहित्य में केवल शैलि-तत्व पर बल दिया गया। उनकी घोषणा थी कि शैली ही कला का केंद्र बिंदु होती है। तदुपरांत सन् 1920 में रूपवादी चिंतन अपने स्वतंत्र रूप से अस्तित्व में आया।

---

[19] एक साहित्य की डायरी-पृ.77

[20] एक साहित्य की डायरी-पृ.82

रूपवादी चिंतक जो कलागत सौंदर्य की चर्चा एक स्वायत्त तथा निरपेक्ष सत्ता के रूप में करते हैं। यह "सौंदर्य" अन्य दूसरे प्रकार के सौंदर्य से भिन्न भी है, क्योंकि प्रकृति तथा मानव-जीवन से उसका कोई संबंध नहीं है। रूपवादी कला-चिंतन की सौंदर्य के संबंध में यह सबसे बड़ी तथा महत्वपूर्ण सीमा तथा कमजोरी है।

इस धारणा के अनुसार काव्य में शिल्प न केवल महत्वपूर्ण है बल्कि अनिवार्य भी है-और वही काव्य के लिए सब कुछ है। इस मत के मतावलंबियों के अनुसार काव्य-शिल्प कौशल और कारीगरी का काम है, जिससे चमत्कार का सृजन होता है। यही चमत्कार काव्य का मूल तत्व है, जिससे काव्य का काव्य तत्व अक्षुण्ण रह सकता है। इन के लिए वस्तु तत्व का महत्व नगण्य और कम महत्व का है। काव्य के लिए यह धारणा एकांगी है, इसलिए यह अस्वस्थकारी और अहितकारी है क्योंकि यहाँ मात्र बाहरी ढांचे तथा ऊपरी चमत्कार को ही साध्य मानकर रचना कर्म से निवृत्ति पा ली गई है। काव्य के सीमित तथा व्यक्तिबद्ध उद्देश्यों की पूर्ति ही इस प्रकार की काव्य या कला का चरम लक्ष्य बनकर रह जाता है। काव्य के सापेक्षिक औचित्य संबंधी बहुतेरे प्रश्नों का यहाँ उत्तर ढूंढ पाना असंभव है।

रूस के साहित्य चिंतन में "रूपवाद" के अभ्युदय पर हम देखते हैं कि रूस में इसका आरंभ बीसवीं सदी के दूसरे दशक में हुआ इसके पूर्व वहाँ लगभग प्रतीकवाद एवं भविष्यवाद का प्रचलन था। इस समय यहाँ साहित्यिक मूल्यांकन के क्षेत्र में साहित्येतर मानदण्डों का हस्तक्षेप काफी बढ़ गया और विशुद्ध साहित्यिकता के पक्षधर विचारकों का चिंतित होना सहज था। रूसी प्रतीकवादी "भाषिक अभिव्यक्ति एवं कथ्य" अथवा "रूपक रूपित" के बीच स्वाभाविक रूप से प्रतीकात्मक संबंध होने की बात करते थे तथा उनकी समीक्षा पद्धति में दर्शनशास्त्र आदि विषयों से संबंधित प्रतिपत्तियाँ थीं। रूस में प्रतीकवाद के उन्नायकों में इवानोव एवं आंद्रे बेली का नाम मुख्य रूप से ले सकते हैं।

विक्टर श्क्लोवस्की (1893) रूस में साहित्य और भाषा के चिंतन पक्ष पर सक्रिय रूप से कार्यरत थे। उन्होंने साहित्य में शैली पक्ष पर विशेष बल दिया। इतना ही नहीं बल्कि कला, कला के लिए घोषित किया। (Art for Art) यही रूसी "रूपवाद" के नाम से उभर आया। यह विचारधारा रूसी क्रांति के पूर्व से गतिमान होकर बाद में आंदोलन का रूप लिया। इस में दो विद्वानों के अलग-अलग दल (School) बने जिस में अनेक नवयुवक छात्र भी थे। एक-"मास्को लिंग्वीस्टिक सर्कल" इस स्कूल के प्रख्यात सदस्य एवं संस्थापक रोमन-जॅकोब्सन थे।

दूसरा OPAYAZ दल सेंट पीटर्सबर्ग में जो ज्यादातर साहित्यिक आलोचना पर विशेष महत्व देता था, इस के प्रमुख्य सदस्य एवं संरक्षक थे-विक्टर श्क्लोस्की दोनों ही दल केंद्रीभूत होकर साहित्य और कला का गूढ अभ्यास कर परिक्षण के तौर पर श्क्लोवस्की ने "Art as Techniqe" नामक निबंध लिखा जो प्रथम सन् 1917 में प्रकाशित हुआ। इसी दल के अन्य विद्वान Eikhenbaum ने-"A kind of Manifesto of Formul Method" नामक लेख प्रकाशित किया।

रूसी भाववादी आंदोलन में माना गया था कि कल्पना चिंतन ही कला है। Potebnya के अनुसार-बिंब एवं कल्पना के बिना कला नहीं होती, विशेष कर कविता तो होती ही नहीं। उनके अनुसार काव्य और गद्य विशेष काल्पनिक चिंतन की पहचान है।

आकेदमीक Ovsyaniko Kulikovsky के अनुसार-काव्य विशेष चिंतन का माध्यम है। उन्होंने इसे अर्थशास्त्र के आधार पर दिमागी कसरत का मूल्य (मान) माना है। जो कि सौंदर्यशास्त्रीय दृष्टिकोण में प्रतिक्रियात्मक है।

निस्संदेह हम जब देखते हैं Potebny के काव्य में अपने गुरु के आदेशानुसार केवल "विचार" का वर्णन मिलता है। इसी तरह अनेक शिष्य काव्य को -"विशेष काल्पनिक चिंतन का माध्यम माना।" उनका मानना था काल्पनिक चिंतन का उद्देश्य अन्य गतिविधियों द्वारा अज्ञात को ज्ञात करता है। Potebny ने लिखा है-The Relationship of image to what is being clerified is that (a) the Image is fixed predicate of that which undergoes change-the Unchange Means of attracting what is perceived as changeble-(b) The Image is for clearer and simpler than what it clerifies-(Potebnya-iz zapisok poteorii Slovesnosti-p-314)

विक्टर श्क्लोवस्की का निबंध विशेषकर रूसी प्रतीकवादी व्याख्याता Potebnya के प्रतीकवादी विचारधारा के विरोध में विकसित हुआ। यह प्रतीकवाद फ्रेंच प्रतीकवाद के रूप में 19 वीं शति में उभर आया था, जिसका प्रभाव इंग्लैंड और अमेरिकन आधुनिक लेखकों पर Romantic रूप में रहा। कालांतर में श्क्लोवस्की का प्रश्न था कि काव्य को कलात्मक कौन बनाता है।

रूसी रूपवादी चिंतन का केंद्र वस्तु न होकर रूप था। यही धारणा कला के फलक पर संघर्ष का कारण बनी। सन् 1917 की रूसी क्रांति के पश्चात वहाँ विभिन्न अध्ययन क्षेत्रों में

परिव्याप्त परंपरागत मान्यताओं के पुर्नमूल्यांकन का आरंभ हुआ, इस पृष्ठभूमि में सक्रिय मूल दृष्टि ऐतिहासिक भौतिकवादी विचारधारा से रही। इस क्रम में पुनर्मूल्यांकनकर्ताओं ने कवियों, कलाकारों की उस लोकवादी रूपज्ञान एवं परंपरागत रूढिवादी मनोवृत्तियों का भी जमकर विरोध किया जो मानव मस्तिष्क की रहस्यमय ऊर्जा के बहाने कलात्मक सृजन की दैवी प्रेरणा या अतिमानवीय व्यापार के रूप में व्याख्या करती थी। रूसी रूपवादियों ने भी कला-साहित्य मूल्यांकन पद्धति को स्थूलता के घेरे से बाहर निकालकर सूक्ष्म एवं वैज्ञानिक प्रविधि के रूप में विकसित करने का जो प्रयास किया था, वह इस संदर्भ में उनके अवदान पर नये ढंग से सोचने के लिए बाध्य करता है। फिर भी इतना तो तय है कि साहित्य-कला को सामाजिक संदर्भों से काटकर अलग देखना तथा कलाकृतियों के मूल्यांकन-क्रम में विचार की भूमिका का पूरी तरह निषेध करना, जेसे प्रवृत्तियाँ वस्तुतः रूपवादियों की उस एकांगी सोच का परिचायक है, जो उन्हें प्रगतिशीलता के बजाए प्रतिक्रिया के ही अधिक निकट सिद्ध करती है। संभवतः इसी के चलते रूस में इसे दबा दिया गया और इसके मूल पाठ बहुत मुश्किल से मिलने लगे।

"मास्को लिंग्विस्टिक सर्कल" को "मजाकोवस्की" जैसे प्रतिष्ठित विद्वानों का सहयोग एवं समर्थन मिला। वे "छंदशास्त्र" के विशेषज्ञ थे, परंतु इसी के साथ वे "काव्यात्मक-रूप" के बारीक विश्लेषण की आवश्यकता एवं उसके महत्व को भी स्वीकार करते थे। इस संदर्भ में उनके द्वारा लिखित "हाऊ टू मेक वर्स" शीर्षक आलेख को विद्वानों ने महत्वपूर्ण बताया है। माजाकोवस्की के चिंतन में यदि एक ओर साहित्य के सामाजिक संदर्भों को गंभीरता के साथ स्वीकारने का आग्रह है, तो दूसरी ओर वे "रूपवादी पद्धति को कलात्मक अध्ययन की कुंजी" के रूप में उद्घोषित करते हैं। अपने इसी विश्वास के तहत उन्होंने सन् 1919 में "फार्मलिस्ट स्टडीज" जैसे ग्रंथ के प्रकाशन को प्रोत्साहित किया और कुछ वर्षों बाद लेखकों के सहयोग से "लेफ" नामक पत्रिका संपादित की।

मुख्यतः प्रतीकवादी आंदोलन सन् 1886 में कवि "जीन मोरेआस" ने "फिगारो" नामक पत्र में प्रतीकवाद का एक घोषणा-पत्र प्रकाशित कराया जिसमें उसने यह कहा कि प्रतीकवाद ही एक ऐसा शब्द है जो कला में सर्जनात्मक प्रवृत्ति को भली भांति व्यक्त करता है। विचार या भाव को संवेदनात्मक रूप प्रदान करना ही कला का प्रयोजन है। इस भावना को लेकर अनेक पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन हुआ।

डॉ.भगीरथ मिश्र के अनुसार-"यह प्रतीकवाद आंदोलन हीगेल और शापेनदावर के आदर्शवादी दर्शनों से प्रभावित है। इस के प्रचारकों एवं समर्थकों में मुख्य कवि और कलाकार थे-एडगर ऐलेन पो, वोदलेयह, बलैन, मलर्मे, रिम्बो आदि। इसका प्रभाव जर्मन, अमरीका, रूस, इंग्लैंड पर भी पड़ा।"[21]

रूसी रूपावादी कवियों के सिद्धांत पर रामधारी सिंह दिनकर का मत समीचीन जान पड़ता है। उन्होंने लिखा है-"सिद्धांत के धरातल पर प्रतीकवादियों ने वस्तुवाद का खंडन नहीं किया, लेकिन व्यवहार में वे बराबर कतराते रहे। भावनाओं के अलक्ष्य, अरूप, अतीद्रियों के रूपों की व्यंजना ध्वनि और संकेत से करने के प्रयास में कविता को वे खींच कर अंधकार में ले गये। काव्य में दुरूहता की वृद्धि तभी से होने लगी और एक के बाद एक, ऐसे कवि उत्पन्न होने लगे जिनकी कविताएँ अर्थ-बोध से ग्रस्थ थी। प्रतीकवाद का सारा जोर इस बात पर पड़ा कि प्रत्यक्ष वर्णन साहित्य का धर्म नहीं है। साहित्य का वर्णन अप्रत्यक्ष अथवा वक्र होना चाहिए।"[22] प्रो.रेने वेलेक ने रूसी रूपवाद की परिणती को स्पष्ट करते हुए और बीसवीं सदी की आलोचना में रूसी संरचना की धारणाओं पर विचार करते हुए लिखा है कि-"जब रूसी रूपवाद का निर्यात पोलैंड और चोकोस्लोवाकिया में दो महायुद्धों के समय हुआ तो जर्मन परंपरा के संपर्क में आया जो पूर्णता और समग्रता की थी, जिस में वस्तु की प्रकृति के मनन और इसकी दार्शनिक अंतर्दृष्टियाँ थी। ....चेक समूह जो प्राग के भाषिक दायरे के आसपास था, इस सिद्धांत को "रूपवाद" के बजाय "संरचनावाद" नाम दिया और अनुभव किया कि संरचना शब्द कलाकृति की समग्रता के प्रति अधिक न्याय करता है और इस पर रूप की अपेक्षा बाह्यता के संकेतों का कम बोध होता है। "[23]

डॉ.रविरंजन ने "संरचनावाद" के मौलिक विकास के संदर्भ में लिखा है कि-"वेलेक के उपर्युक्त उद्धरण से एक बात साफ है कि संरचनावाद का मूल स्त्रोत रूसी रूपवादियों के भाषा एवं साहित्य विषयक गंभीर चिंतन में विदित है। यह फ्रांस की उपज नहीं है, जैसा कि कुछ लोग दावा पेश करते हैं। यह सर्वविदित तथ्य है कि दार्शनिक चिंतन एवं वैज्ञानिक प्रणाली के रूप में संरचनावाद का आविर्भाव आधुनिक भाषा विज्ञान के उद्भव एवं विकास के साथ-साथ हुआ जिसे

[21] काव्यशास्त्र-पृ.272
[22] शुद्ध कविता की खोज-पृ.53
[23] आलोचना की धारणा-पृ.36

सैद्धांतिक आधार प्रदान करनेवाले भाषावैज्ञानिकों में सस्यूर और "बादुएन द कुर्तने" का नाम लिया जाता है।"[24]

जेन रफरफोर्ड ने संरचनावाद के सिद्धांत पर लिखा है-"संरचनावाद साहित्य के प्रति उस श्रद्धापूर्ण दृष्टि का प्रबल विरोध करता है जो इसे कुछ अद्भुत-अनोखा मानते हुए सूक्ष्म विश्लेषण या सैद्धांतिक विचार-विमर्श से परे मानते हैं। वास्तव में संरचनावाद में वस्तुनिष्ठता तथा पद्धति की सुस्पष्ठता के साथ-साथ निश्चित वैज्ञानिक नजरिये की दिशाा में प्रगति मिलती है। इसका भंडार न केवल स्पष्टता की दृष्टि से आदर्श है बल्कि प्रायः तकनीकी अमूर्त, कठिन एवं नवनवोन्मेषकारी भी होता है।"[25]

"संरचना" विषयी चिंतन का फलक हमें "जेररड गनेटे" के लेखों से पता चलता है। सन् 1930 के आसपास गेनेट "Ecolede Sautes Studies" के पेरिश में शिक्षक थे। उनके प्रकाशित तीन संकलन-Figar I 1966 Figar II 1969, Figar III, (1972) नामक निबंध में संरचनावादी दृष्टिकोण का पता चलता है। इसके अलावा वे साहित्य सिद्धांतों के अच्छे विद्वान थे। आरंभ में उन्होंने "प्लेटो" और "अरिस्टाटल" की कविताओं में पुरातन सैद्धांतिक कलागत-अभिव्यक्ति एवं प्रभावरहित, रूढीगत कला पक्ष से असंतुष्ट थे। दूसरे शब्दों में कहें तो इनके काव्य में पारंपरिक रूढीगत कलापक्ष ही विद्यमान थी। प्रतीक, बिंब और रूपवाद से वादग्रस्त होकर चिंतकों का ध्यान कला-पक्ष के नये मानदण्ड की ओर बढ़ा, जो कालांतर में "संरचना" की पुष्टी हुई। इस दृष्टिकोण के संदर्भ में "लीयो सस्यूर" का विशेष नाम लिया जाता है। जेररड गेनेटे "संरचनावाद" से प्रभावित हुए और उन्होंने "literary criticism and structurlism" नामक निबंध प्रकाशित कराया, जिसमें उन्होंने बताया कि किस प्रकार रोमन याकोबसन आधुनिक व्यवस्था की मांग के चलते वस्तुवाद और रूपवाद के द्वंद्व से "संरचनावाद" के अस्तित्व पर ध्यान केंद्रित किया।

संरचनावादी आलोचक, रूपवादी तो हैं पर वह "कला, कला के लिए" के विचार का समर्थन नहीं करते। वह रूप-सिद्धि को वस्तु के बिलगाव के साथ देखने के पक्ष में नहीं हैं। काव्य कृति को कलाप्रतीक मानने के कारण वे रचना को वस्तु और अभिव्यक्ति की एकीकृत सर्जना मानते हैं। यही कारण है कि काव्य कृति के व्यापक संदर्भ में जहाँ वे वस्तु के बिलगाव का विरोध

[24] प्रगतिवादी कविता में वस्तु और रूप-पृ.68

[25] साहित्य का समाजशास्त्रीय चिंतन (सम्पा-डॉ.निर्मला जैन) में संकलित आलेख-पृ.124

करते हैं वहीं वस्तु से असम्पृक्त अभिव्यक्ति रूप की भी तीखी आलोचना करने में नहीं चूकते। संरचनावादी आलोचना की प्रमुख विशेषता यह है कि वे "रूप" को "वस्तु" में रूपांतरित करते हैं। उसके लिए रूप पर दी गई उक्ति वस्तुतः वस्तुपरक प्रतिज्ञाप्ति बन जाती है। इसका कारण यह है कि रूप संबंधी उसकी अवधारणा, "प्रतीक" की संकल्पना को अपना आधार बनाती है। वह प्रतीक के रूप में काव्यकृति को स्वीकार करते हुए पहले वस्तु और रूप की अभिन्नता पर बल देती है, फिर रूप को वस्तु की यथार्थता को पकड़ने का साधन और वस्तु को अपनी आंतरिक प्रकृति के प्रकाशन के लिए "रूप" में बंधने की अनिवार्य नियति के संदर्भ में स्वीकार करती है। यहाँ एक बार फिर दुहरा देना असमीचीन न होगा कि रूप संबंधी उसकी अवधारणा एवं विशिष्ट चिंतन-प्रणाली का परिणाम है। उसके लिए "रूप" वस्तु की आभ्यांतर "संरचना" का पर्याय बन जाता है।

सिद्धांत और प्रणाली के संदर्भ में संरचनावाद एक आंदोलन की तरह भले ही भाषाविज्ञान के सभी क्षेत्रों में फैल गया हो, पर साहित्य के भीतर नव्य-रूपवादी आलोचना के रूप में यह फ्रांस में जन्मा और वह भी "लेवी स्ट्रॉंस" के बाद ही उभरा। इस की पृष्ठभूमि के रूप में रूसी रूपवादी आलोचना, अमेरिकी नव्य समीक्षा, फ्रांस की पाठ विश्लेषण पद्धति आदि आवश्यक कार्य करते रहे, पर एक साहित्यिक धारा के रूप में उसे बार्थ, ग्रीम, तदोरोव आदि विद्वानों की रचनात्मक दृष्टि का परिणाम ही कहा जा सकता है। आज इस धारा के समर्थकों में कलर, डेरिडा, फाऊलर, चेटमेन आदि विद्वानों का नाम लिया जा सकता है। दूसरी ओर रूसी आलोचक यूरी लोटमान, बोरिस, डस्पेन्स्की, इवानोव, तोपरोव, यूरी निकोत्सोव आदि।

डॉ.मैनेजन पाण्डेय ने फ्रांस में संरचना के अभ्युदय के एतिहासिक कारणों पर प्रकार डालते हुए लिखा है कि-"फ्रांस में अस्तित्ववाद अगर महायुद्धों से जर्जर सामाजिक, राजनीतिक वातावरण की वैचारिक प्रतिक्रिया का परिणाम था तो संरचनावाद "द गाल" के शासन की सामाजिक राजनीतिक स्थिति के वैचारिक वातावरण की उपज है।"[26] मूलतः छटे दशक के अंतिम चरण में फ्रांस में संरचनावादी चिंतन का प्रादुर्भात हुआ जिसके प्रमुख प्रवक्ता के रूप में "लेवी स्त्रॉत" के अलावा रोला बार्थ एवं मिशेल फूको आदि के नाम लिए जा सकते हैं।

जिस प्रकार प्रतीकवादी काव्य में मुख्यतः शब्दों के अर्थ एवं ध्वनि के संबंध पर विचार करने के आग्रही थे उसी प्रकार संरचनावादी विचारक किसी काव्यकृति की शाब्दिक संरचना एवं

उसके रूपकात्मक स्वरूप पर ही वैचारिक दृष्टि से ज्यादा बल देते हैं। इस पर प्रसिद्ध फ्रांसीसी संरचनावादी बार्थ का कथन विशेष रूप से उल्लेखनीय है-"संरचनावाद को संस्कृति एवं साहित्य के अध्ययन विश्लेषण के उस प्रणालीगत आंदोलन तक सीमित कर देना चाहिए जो स्पष्ट रूप से अपनी शक्ति के स्त्रोत से रूप में भाषा-विज्ञान को अपनाने के पक्ष में है।"[27] किंतु यहाँ ध्यान रखना जरूरी है कि संरचनावादी समीक्षा अपनी शक्ति के स्त्रोत के रूप में भाषा विज्ञान को अपनाने पर बल देने के बावजूद अपने आप में किसी कृति का भाषा-वैज्ञानिक विश्लेषण मात्र नहीं है। इस पर डॉ.रविंद्रनाथ श्रीवास्तव का विचार है-"संरचनात्मक आलोचना अपनी विश्लेषणात्मक प्रणाली एवं सैद्धांतिक मत प्रतिपादन में भाषा के दायरे में बंधकर चुक नहीं जाती, बल्कि भाषा के पार जा कर उसकी प्रतीकात्मक अर्थवत्ता को "रूप" (संरचना) के सहारे उद्‌भाषित और प्रकाशित करती है।"[28]

वस्तुतः संरचनावादियों के लिए "रूप" एक ओर वस्तु की यथार्थता को पकड़ने का साधन है तो दूसरी ओर वे यह भी मानकर चलते हैं कि अपनी आंतरिक प्रकृति के प्रकाशन हेतु "रूप" में बंधना "वस्तु" की अनिवार्य नियति है। दूसरे शब्दों में यदि कहें तो संरचनावादियों के लिए रूप, वस्तु की अभ्यांतर संरचना का पर्याय है। संभवतः इसी कारण से संरचनावाद को विचारकों ने "नव्य रूपवाद" कहा है।

डॉ.विश्वनाथ प्रसाद तिवारी संरचना को और स्पष्ट करते हुए लिखते हैं कि-"नये साहित्य के मूल्यांकन को लेकर जैसे दलगत संकीर्णता है, उससे साधारण पाठक ही क्या, बड़े सुलझे हुए आलोचक भी चक्कर खा जाते हैं।"[29] इस अराजकता की स्थिति में "संरचनावाद" ही रचना का सही मूल्यांकन प्रस्तुत कर सकता है। संरचना मात्र भाषा वैज्ञानिक अध्ययन नहीं है। संरचना में कविता की लय, बिंब, प्रतीक, अप्रस्तुत-विधान संश्लिष्ट होती है। भाषा कविता का प्रमुख अंग है, जिसके माध्यम से काव्य-सौंदर्य का सर्जन किया जाता है। मगर कविता में सौंदर्य उसकी संपूर्णता में अंतर्निहित होता है। सौंदर्य संपूर्ण आकृति का प्रभाव है, जिसका निर्माण उसके भीतरी तत्वों से होता है जो अत्यधिक सुंदर या असुंदर, आकर्षक या अनाकर्षक होता है। अतः

---

[26] साहित्य और इतिहास-पृ.44
[27] प्रगतिवादी कविता में वस्तु और रूपःपृ.69
[28] प्रगतिवादी कविात में वस्तु और रूपःपृ.69
[29] नये साहित्य का तर्कशास्त्र-पृ.70

जब तक आकृति के बुनियादी तत्वों का मूल्यांकन नहीं होगा, तब तक कविता मात्र सुंदर तत्वों का गुलदस्ता ही रहेगा।

"संरचना" शब्द से यह भ्रम होता है कि यह कविता की मात्र लयात्मक आकृति की व्याख्या तक सीमित है। निश्चय ही संरचना का तात्पर्य "ढांचा" से नहीं होता है। कविता में निहित समस्त तत्वों का समावेश संरचना में होता है। संरचना के अंतर्गत तत्वों की आकृति या कृमादर्श की व्यवस्था एवं व्याख्या होती है। कविता की संरचना को महाकाव्य के रचना-विधान से स्पष्ट नहीं किया जा सकता। मगर यह संरचना के रूप के निकट अवश्य पहुंचता है। अतः कविता वृत्ति या अंग विन्यास है, जो महाकाव्य एवं सामान्य कविता दोनों में अनिवार्य रूप में विश्लेषित होती है। मगर डॉ.नरेंद्र मोहन की धारणा है कि लंबी कविता के रचना-विधान का अनिवार्य लक्षण है नाटकीयता। इस के बिना आज के जीवन की अंतर्विरोधों भरी स्थितियाँ उजागर नहीं हो सकतीं। स्थितियों के पीछे की स्थितियों, व्यवहारों, मानसिक, आत्मिक क्रिया कलापों को अभिव्यक्त करने के लिए नाटकीय विधान लंबी कविता की संरचना माना जा सकता है। कार्यों और व्यापारों को नाटकीय विधान में प्रस्तुत करके स्थितियों के अंतर्विरोधों का बोध जगाया जा सकता है। इस में नाटकीय संवादों की योजना विशेष कारगर हो सकती है। लंबी कविता की संरचना में जिस गहरे कलात्मक संयम की आवश्यकता है, वह भी नाटकीय विधान द्वारा प्रभावी तौर पर समाप्त हो सकता है।

अतः कवि की संरचना या रूपविधान में आकार, भाषा, लय और शैली अंतर्निहित होती है। "संरचना" के अभिन्न अंग के रूप में वस्तु की स्वीकृति नहीं है क्योंकि वस्तु अंतर्निहित है, संरचना के अंग भाषा आदि से वह अलग नहीं है। अतः वह संरचना का आवयविक अध्ययन है। वस्तु की संरचना प्रच्छन्न रूप से वस्तु में ही निहित होती है। वह वस्तु का अपना गुण है जिसे वस्तु से बाहर कर नहीं देखा जा सकता। पर इस संरचना के आधार पर वस्तु का "मॉडल" बनाया जाना संभव है। उदाहरणार्थ "ताजमहल" कृति को ही लें। ताजमहल वस्तुगत की एक ठोस सावयव इकाई है जिसे हम अपनी आँखों से देख सकते हैं और हाथों से स्पर्श कर सकते हैं। सावयव होने के कारण उसकी अपनी एक विशिष्ट संरचना है जो प्रच्छन्न रूप से स्वयं ताजमहल कृति के अपने गुण के रूप में उसमें निहित है। इस संरचना की हम मात्र संकल्पना कर सकते हैं, जिसे देखने के लिए हमें जैविक नेत्र नहीं वरण बौद्धिक दृष्टि चाहिए। ताजमहल के संरचनात्मक रूप का हम मॉडल बना सकते हैं, जिसे हम छोटी-बड़ी मूर्तियों के रूप में सामने

कर सकते हैं। ताजमहल की ये मूर्तियाँ वस्तुगत का स्वयं ताजमहल नहीं, वरन उसमें प्रच्छन्न रूप से अंतभूक्ति संरचनात्मक रूप का प्रतीकीकरण के सिद्धांत के आधार पर बनाए गए मॉडल हैं।

1.4 हिंदी समीक्षा में वस्तु और रूप विषयक विवेचन

जिस प्रकार पूर्व के शास्त्रीय विवेचना में राजशेखर, प्रभृति विद्वानों द्वारा प्रस्तुत सूचियाँ उद्धृत करते हुए "कवि" की "तैयारी" की चर्चा की गयी थी, उसी प्रकार आज भी कवि से वस्तु-रूप को लेकर अपेक्षा की जाती है। हिंदी के प्रसिद्ध प्रगतिवादी समालोचक, मुक्तिबोध ने "वस्तु और रूप" संबंधी सार गर्भित विवेचन में लिखा है-"संवेदनशील कवि को उसे आस-पास की वास्तविकता के मार्मिक पक्ष गहरी चुनौती देती है। यह चुनौती दो प्रकार की होती है-एक तत्व संबंधी दूसरा रूप संबंधी। उसे (कवि) को न केवल अनुभूति पक्ष के वरन् वस्तु पक्ष के और उससे संबंधित परिज्ञान के विकास की अपेक्षा है।"[30]

राजकुमार सैनी ने रूप और वस्तु के संबंध में दो टूक भाषा में लिखा है-"आज की स्थिति यह है .... "कविता आदमी द्वारा आदमियों के लिए लिखी जाती है, आदमी बदलता है, आज वह कुछ और ज्यादा तेजी से बदल रहा है, आदमी की जीवन-चर्या बदल रही है, उसका अनुभव करने, सोचने और कार्य करने का तौर तरीका बदल रहा है। कुल मिलाकर उसका जीवन बदल रहा है। कविता के रूप और वस्तु में बदलाव इसलिए होता रहता है क्योंकि मानव-जीवन के रूप वस्तु में दबलाव होता रहता है।"[31]

डॉ.निर्मला जेन ने वस्तु और रूप विवेचन में लिखा है-वस्तु निरपेक्ष होती है और काव्य-वस्तु सापेक्ष। तो प्रकारांतर से निजता की ओर ही संकेत किया है। निजता ही वह बिंदु है, जहाँ से नये-नये रूप विकसित होते हैं।

मुक्तिबोध कविता में "रूप" की अपेक्षा "वस्तु" को अधिक महत्व देते हैं। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा है-"वस्तु-तत्व में इतनी शक्ति होती है कि वह स्वयं अपने "रूप" को लेकर आता है। अतएव मुख्यतः हमारे लिए वस्तु-तत्व प्रधान हो जाता है।"[32] लेकिन नयी कविता पर विचार करते हुए मुक्तिबोध ने इसका विरोधी लगनेवाला दृष्टिकोण भी प्रस्तुत किया है यथा-

[30] मुक्तिबोध रचनावली पांच-पृ.91
[31] पश्यंति-जुलाई-दिसंबर 1978, लेख-कविता में बदलाव की प्रक्रिया और युवा कवि-पृ.203
[32] नये साहित्य का सौंदर्यशास्त्र-पृ.62

"यह तो कहने की बात है कि तत्व स्वयं ही अपना रूप ग्रहण करता है।[33] वस्तुतः यह अंतर्विरोध ऊपरी है, जिसके माध्यम से मुक्तिबोध ने एक विशेष स्थिति का उद्‌घाटन किया है। ऐसी स्थिति तब उत्पन्न होती है जब वस्तु-तत्व को स्वतंत्रता से रूप ग्रहण करने की अनुमति न देकर कण्डीशण्ड साहित्यिक रिफ्लेक्सेज के अधीन पुराने सांचे में उसे जबरन "फिट" करने का प्रयास किया जाता है। मुक्तिबोध सामान्यतः वस्तु और रूप की एकीभूत संघनित स्थिति कला के लिए आवश्यक मानते हैं।

काव्य में "रूप" का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। वास्तव में "रूप" काव्य का एक अभिन्न अंग है, जिसके बिना काव्य अपना रूप नहीं पा सकता है। काव्य के विषय-वस्तु को कला रूप में ढालने का श्रेय रूप-विधान को है। काव्य-रूप के अंतर्गत-छंद, अलंकार, ध्वनि, भाषा, शैली, बिंब, प्रतीक तथा कल्पना आदि सभी तत्व आते हैं जो काव्य के लिए अनिवार्य हैं। जिस तरह काव्य, वस्तु से जुड़ा रहता है, उसी तरह "रूप" से भी। काव्य में वस्तु और रूप दोनों अन्योन्याश्रित हैं। कोई भी "महाकाव्य" उसकी रूपगत प्रौढ़ता के कारण ही बन सकता है। कवि की पूरी अभिव्यक्ति कौशल उनके काव्य रूप पर ही निर्भर करता है।

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट होता है कि काव्य-रूप वस्तुतः काव्य की सर्जना विधि का ही एक नाम है। काव्य रूप के अन्य सूचक शब्द हैं-काव्य-विधान, रचना-कौशल, शिल्प-विधि, शिल्प-विधान, रूप-रचना आदि। काव्य की रूपाकृति का निर्माण करने वाले सभी तत्व रूप के अभिन्न अंग होते हैं। हम कह सकते हैं कि काव्य रूप काव्य की अभिव्यक्ति कौशल का ही दूसरा नाम है।

मुक्तिबोध बाह्य जगत् की अभिव्यक्ति की छटपटाहट एवं रूप निर्माण की प्रक्रिया को भी समाज सापेक्ष मानते हैं। उनके मुताबिक "रूप" का जन्म वस्तु तत्व के निर्माण के साथ-साथ होता रहता है। जिस प्रकार हम आत्मसात कृत जगत् को अभिव्यक्ति देते हुए संशोधित-संपादति करते हैं उसी प्रकार बाह्य जगत् को आत्मसात करने की प्रक्रिया में भी संशोधन-संपादन चलता रहता है। वे इसे-"बाह्य का आभ्यंतरीकरण और आभ्यंतरीकृत का बाहीकरण"[34] मानते हैं। इस प्रक्रिया का संबंध वे सामाजिक द्वन्द्व एवं सामंजस्य से जोड़ते हैं। मुक्तिबोध "बाह्य के आभ्यंतरीकरण एवं आभ्यंतरीकृत बाहीकरण" की द्वन्द्व एवं सामंजस्य की प्रक्रिया को मार्क्सवादी

[33] नये साहित्य का सौंदर्यशास्त्र-पृ.49
[34] मुक्तिबोध रचनावली भाग-5-पृ.110

दृष्टि से, वर्गीय दृष्टि से व्याख्यायित करते हैं। वे "रूप" एवं "वस्तु" के अन्योन्याश्रित संबंध एवं उसके समाजशास्त्रीय आधार की विवेचना को स्वीकार करते हैं। "अभ्यंतरण में तत्व, रूप के बिना प्रकट होना असंभव है। रूप का अर्थ केवल चित्र ही नहीं, वरण शब्द, रंग, स्वर, प्रवाह, कुछ भी हो सकता है। मनस्तत्व का रूप-तत्व स्वयं निश्चल नहीं है। वह समशील अंतर्तत्वों से संयोग करता हुआ रूप विकास या रूप संशोधन करता जाता है। इस अंतर अभिव्यक्ति को जब बाह्य अभिव्यक्ति में बदला जाता है तब अंतर अभिव्यक्ति का रूप भी बहुत कुछ परिवर्तित हो जाता है।"[35]

मार्क्सवादी समीक्षकों ने रचना में सर्जक व्यक्तित्व को यथार्थपरक एवं ग्रहण करनेवाला कवि ही पुराने रूप में भावुक ढंग की गरब बाते कहता है। नामवर सिंह ने उपरोक्त अवधारणा के आधार लेकर दिनकर एवं नीरज के काव्य की आलोचना करते हुए लिखा है-"दिनकर एवं नीरज के गर्जन-तर्जन में इसलिए केवल फेन है। भावावेग के उस उफान में गंभीरता कहीं नहीं है। इस प्रकार रूप में ही नहीं बल्कि भाव में भी वे विकास की दृष्टि से पुराने हैं।" वही शिवदान सिंह चौहान वस्तु और रूप के द्वैत को नहीं मानते। वह वस्तु और रूप को सफल रचना में एक दूसरे में पूर्णतः समाहित मानते हैं। यथा-"वस्तु जितनी ही गहरी और संश्लिष्ट होगी रूप उतना ही समृद्ध और समर्थ होगा। किसी भी रचना का मूल्यांकन करते समय सिर्फ रूप अथवा वस्तु के ही मूल्यांकन तक आलोचना को सीमित नहीं करना चाहिए, अपितु रचना को उसकी संपूर्णता में देखना चाहिए।"[36]

हिंदी साहित्य में रूप विषयक चिंतन मूलतः स्वातंत्र्योत्तर काल से आरंभ हुआ। इसका कारण यह था कि समाज में व्याप्त तनाव को कवि अभिव्यक्ति देना चाहता है। अतः उसे नये ढंग, रूप एवं वस्तु संबंधी चुनौती का सामना करना पड़ता है। इस दौर की कविता सामाजिक एवं व्यक्ति के मन के ज्ञान संवेदना एवं मानवीय संवेदना को व्यक्त करना चाहती है। गजानन माधव मुक्तिबोध उसी परिप्रेक्ष्य में स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कविता में उठे रूप एवं तत्व संबंधी विवाद को देखते हैं, कवि मन में उठ रहे संघर्ष को वे त्रिविध मानते हैं जिसे उन्होंने 1. तत्व के लिए संघर्ष 2. अभिव्यक्ति को सक्षम बनाने के लिए संघर्ष 3. दृष्टि विकास के लिए संघर्ष के रूप में व्याख्यायित करते हुए इसे काव्य की रचना प्रक्रिया से जोड़ा है।

---

[35] मुक्तिबोध रचनावली भाग-5-पृ.113

[36] आलोचना के मान-पृ.51-52

हिंदी की मार्क्सवादी काव्य समीक्षा में वस्तु-रूप के अंतःसंबंध पर विचार करते हुए यह बात मार्क्स-एंगेल्स के कथनों से साफ तौर से स्पष्ट रूप से सामने आई है कि वे कृति में वस्तु को प्राथमिक मानते हैं, साथ ही रूप का भी वस्तु के साथ अंतःसंबंध स्वीकार करते हैं। वे रूप को वस्तु से निरपेक्ष नहीं मानते और न ही वस्तु को "रूप" से रहित स्वीकार करते हैं। वस्तु एवं रूप का अन्योन्याश्रित संबंध मार्क्सवादी कला चिंतन की समीक्षा का वस्तुगत आधार रहा है। हिंदी की मार्क्सवादी समीक्षा ने वस्तु और रूप के प्रश्न पर स्वातंत्र्योत्तर कविता के संदर्भ में विशेष रूप से विचार किया है। चूँकि साहित्य की अभिव्यक्ति का माध्यम भाषा होती है, अतः रचनाकार को अपने रचनात्मक श्रम के जरिए रूप के साथ-साथ माध्यम पर भी अधिकार हासिल करना होता है। लेकिन अगर कोई रचनाकार भाषा को ही साध्य मान ले तो वह रूपवाद का शिकार हो जाता है। यदि हम आधुनिक कविता के संदर्भ में देखें तो नया कवि रचना कर्म के दौरान नए-नए प्रयोग करता है। इन प्रयोगों में वह प्रतीकों, छंदों एवं कुछ विशिष्ट शब्दों के प्रयोगों में इतना तल्लीन हो जाता है कि विषयवस्तु को पीछे छोड़ जाता है। यही वह स्थिति है जहाँ वह रूपवाद की सीमाओं में बंधा होता है। रूपवादी रचनाओं में विचार या भाव की बजाय शिल्प पर जोर रहता है। भारतीय साहित्य की परंपरा के ही क्रम में रूप एवं वस्तु के अंतः संबंध को विश्लेशित करते हुए नामवर सिंह लिखते हैं-"साहित्य में विषयवस्तु पर बल देने का अर्थ है यथार्थ जगत् के सत्य का पूर्ण और गहरा ज्ञान। इसी ज्ञान से जीवन के प्रति वह अडिग आस्था आती है जो संपूर्ण साहित्य को अदम्य दीप्ति देती है।"[37]

मुक्तिबोध का मानना है कि यथार्थवादी शिल्प में ही यथार्थवादी बिंब का प्रयोग किया जा सकता है। ये बिंब सामाजिक यथार्थ से पूरी तरह अंतगृहित होते हैं।

काव्य में यथार्थवादी रूप विन्यास चुनने का यह अर्थ नहीं लगाया जाना चाहिए कि रचनाकार ने सामाजिक यथार्थ को वैज्ञानिक दृष्टि से समझा भी है। इसी संदर्भ में मुक्तिबोध ने यथार्थवादी शिल्प और दृष्टिकोण के बीच में व्याप्त अंतर को रेखांकित किया है-"कला के शिल्प और उसकी आत्मा में अंतर करना चाहिए। यह बहुत ही संभव है कि तथाकथित यथार्थवादी कलाकार ने यथार्थ को रंगीन चश्मे से देखकर, उस यथार्थ की अशुद्ध व्याख्या करते हुए उसका अशुद्ध मूल्यांकन करते हुए और इस प्रकार उस यथार्थ को ही विकृत बनाकर, किंतु

[37] इतिहास ओर आलोचना-पृ.28

यह विश्वास करते हुए कि उसकी अपनी समझ के अनुसार जो यथार्थ है सचमुच वही उसका यथार्थ स्वरूप भी है, उसने अपनी कल्पना को यथार्थ के बिंबों द्वारा खूब घुमाया फिराया हो।"[38]

डॉ.रामविलास शर्मा का विचार कुछ इस तरह है कि वे कला में सामाजिकता का विशेष आग्रह करते हैं। कला में रूप और वस्तु के सामाजिक आधारों को स्पष्ट करते हुए उन्होंने यह भी माना है कि-"सामाजिक मान्यताओं के साथ कला के "रूप" में परिवर्तन होता रहा है। यह परिवर्तन कलापक्षों के सामाजिक पक्ष की ही पुष्टि करता है।"[39] "अमृतराय" ने वस्तु और रूप के ऐक्य को कला का प्राण माना है। रूप एवं वस्तु को पृथक देखने की सृजन प्रक्रिया को कला के रूप के साथ "बलात्कार" माना है। वे रूप और वस्तु की समस्या को रचना-प्रक्रिया के साथ रखकर विश्लेषित करने का प्रयास करते हैं। क्या वस्तु का परिवर्तन रूप को प्रभावित करता है? यदि कोई रचनाकार नई कला वस्तु को पुराने शिल्प के साथ उतारने की कोशिश करें तो इस के क्या परिणाम हो सकते हैं? मार्क्सवादी समीक्षा ने इन प्रश्नों पर विचार गंभीरता से किए हैं। मार्क्सवादी समीक्षा यह मानती है कि मानवीय संवेदना एवं भावों में परिवर्तन का प्रभाव काव्य रूपों पर भी पड़ता है। यही वजह है कि प्राचीन काव्य शिल्प नवीन वस्तु की अभिव्यक्ति के लिए उपयुक्त माध्यम नहीं बन पाता है।

नामवर सिंह का मानना है कि "कविता बिंब का पर्याय नहीं है। कविता में बिंब-रचना सदैव वास्तविकता को मूर्त ही नहीं करती कभी-कभी वह वास्तविकता का अमूर्तन भी करती है। कविता में बिंब वास्तविकता के साक्षात्कार का ही सूचक नहीं होता, प्रायः वह वास्तविकता से बचने का एक ढंग भी रहा है। काव्य भाषा के लिए भी प्रायः बिंब योजना हानिकारक सिद्ध हुई है। बिंबों के कारण कविता बोलचाल की भाषा से अक्सर दूर हटी है। बोलचाल की सहज लय खंडित हुई है, वाक्य विन्यास की शक्ति को धक्का लगा है, भाषा के अंतर्गत क्रियाएँ उपेक्षित हुई हैं विशेषणों का अनावश्यक भार बढ़ा है और काव्य वस्तु की ताकत कम हुई है।"[40]

शिव कुमार मिश्र ने प्रगतिशील कवियों की काव्य-भाषा का मूल्यांकन करते हुए लिखा है-"भाषागत प्रयोगों की एकांत वैयक्तिक लीकों से बचते हुए प्रगतिशील कवियों ने अपनी कविताओं में न केवल उसकी व्यंजना शक्ति को समर्थ बनाया है, आधुनिक जीवन के समूचे

[38] मुक्तिबोध रचनावली-भाग-4-पृ.197
[39] प्रगति और परंपरा-पृ.56
[40] इहिास और आलोचना-पृ.124

प्रसार से शब्दों का चयन करके उसे व्यापकता भी दी है। भाषा के जिस सहज, सुथरे, अर्थ-गर्भ तथा लोकप्रिय रूप की आवश्यकता होती है, उसकी सत्ता अपनी-अपनी भूमिका में इन सब कवियों का सत्य है।"[41]

स्वाधीन भारत में हिंदी कविता तथा समीक्षा के सामने प्रमुख समस्या यह रही है कि सामाजिक यथार्थ को कैसे अभिव्यक्ति दी जाए। सामाजिक यथार्थ की जटिलताओं एवं विभिन्नताओं के कारण ही इस दौर की कविता में काव्य-प्रतिमान के रूप में बिंब की वापसी होती है। यही वजह है कि "तीसरा सप्तक" के कवि केदारनाथ सिंह को यह कहना पड़ा कि-"कविता में मैं सबसे अधिक ध्यान देता हूँ बिंब विधान पर। बिंब विधान का संबंध जितना काव्य की विषय वस्तु से होता है, उतना ही उसके रूप से भी। विषय को वह मूर्त और ग्राह्य बनाता है, रूप को संक्षिप्त और दीप्त।"[42]

मार्क्सवादी चिंतकों ने भाषा, शिल्प इत्यादि को वस्तु का साधनमात्र माना, जबकि रूपवादी समीक्षक इसी को साध्य मान बैठे। भाषा-शिल्प एवं वस्तु के अंतःसंबंध पर विचार करते हुए प्रकाशचंद्र गुप्त ने लिखा है-"भाषा शिल्प, उपमाएँ, संगीत, उक्ति-चमत्कार, काव्य के साधन मात्र हैं। वे काव्य के अलंकार हो सकते हैं, साध्य नहीं। उत्कृष्ट कला प्राण-रस मानवीय अनुभूति, गहरी संवेदना मानव जीवन का मर्मस्पर्शी निरूपण ही हो सकता है।"[43]

प्रकाशचंद्र गुप्त का मानना है कि-"भाषा सौष्ठव एवं रूप विन्यास का गहरा संबंध इस बात पर निर्भर करता है कि रचनाकार ने कितनी गहरी जीवनदृष्टि पाई है।"[44]

शुक्लजी काव्य में चमत्कारवाद के विरोधी थे। उनका चमत्कारवाद का विरोध व्यापक रीतिवाद विरोधी संघर्ष के अंतर्गत ही है। शुक्ल जी का मानना था कि-"कविता में गोचर "रूपों" का विधान अधिक होता है। वह प्रायः ऐसे रूपों और व्यापारों को ही लेती है जो स्वाभावितक होते हैं और संसार में सबसे अधिक मनुष्यों को सबसे अधिक दिखाई पड़ते हैं।"[45]

हिंदी समीक्षा में रूप विधान के गहरे चिंतक मुक्तिबोध ने लिखा है-"एक दूसरे प्रकार की आंतरिक प्रतिक्रिया तब शुरू होती है जब भावानुभूति के नाम पर हम उन्हीं भावनाओं को दुहराते

[41] आलोचना नवोक, जून-पृ.65
[42] अज्ञेयः तीसरा सप्तक-पृ.114
[43] साहित्य धारा-पृ.9
[44] साहित्यधारा-पृ.11
[45] चिंतामणि भाग-1, पृ.167

हैं जो निष्प्राण हो गई है, जहाँ जीवन की गति कुंठित हो गई है। इस प्रकार साहित्य में बासीपन की उत्पत्ति होती है, जिसके विरुद्ध प्रतिक्रिया फौरन शुरू हो जाती है, क्योंकि जीवन एक जगह रुका नहीं रह सकता।"[46]

व्यक्ति, समाज एवं रचना के संबंधी विवाद पर मुक्तिबोध ने लिखा है-"साहित्य वह समन्वय है जिसकी रूप रचना का आकार व्यक्तिगत शक्ति से बना होकर भी उसके तत्व सामाजिक हैं। जिसके तत्व समाज प्राप्त होकर भी वैयक्तिक शक्ति से शरीर प्राप्त है। साहित्य आत्मा की संस्कृति है और आत्मा संस्कृति तथा समाज की अन्तश्चेतना है। आत्मा संस्कृति के माध्यम से ही समाज की अंतश्चेतना विकसित होकर अभिव्यक्त होती है।

1.5 वस्तु और रूप : अंत:संबंध

काव्य की "वस्तु" एवं "विषय" के बीच जो संबंध या उसकी जो प्रकृति है, उसकी समीक्षा करते हुए मुक्तिबोध लिखते हैं-"काव्य का विषय और काव्य की वस्तु इन दोनों में बहुत भेद है। "विषय" शब्द का अर्थ व्यापक है, "वस्तु" का संकुचित। ....काव्य की वस्तु अर्थात् मनसतत्व (जिसके भीतर बाह्य जीवन जगत के बिंब एवं अंतर की प्रतिक्रियाएँ, दोनों का समावेश होता है) कवि-मन के भीतर के अंतर्तत्व व्यवस्था का ही एक भाग होते हैं।"[47] अंतर्तत्व के सामाजिक संबंधों का विश्लेषण करते हुए वे लिखते हैं-" 1. अंतर्तत्व संबोधित-संपादित आत्मसात कृत बाह्य जीवन जगत ही है। 2. मन का स्वातंत्र्य सापेक्ष है। 3. मन की ऊर्जा में ही उसकी सापेक्षा है, किंतु वह ऊर्जा भी देह स्थिति और वातावरण से नियंत्रित है।"[48]

वस्तु विवेचन में यह आवश्यक है कि लेखक, कवि का वस्तु के प्रति विशिष्ट संबंध भी जाँचा परखा जाए। मुक्तिबोध ने कहा है-"कला तभी तक जीती जागती रहती है जब तक कि लेखक का वर्ण्य वस्तु के प्रति भावात्मक संबंध हो। जिस प्रकार सोचना या विचार करना ज्ञान प्राप्त करने के लिए एक साधन है, उसी प्रकार भावना भी, जीवन का ज्ञान प्राप्त करने का एक कलात्मक साधन है। भावनाभूत ज्ञान ही कला का विषय है।"[49]

यहाँ पर विषय और वस्तु के अन्तर के साथ ही तुलनात्मक महत्व पर भी विचार कर लेना महत्वपूर्ण है। विभिन्न साहित्यिक युगों में ग्रहीत समान विषय भी वस्तु-तत्व की दृष्टि से

---

[46] मुक्तिबोध रचनावली भाग-5, पृ.25
[47] मुक्तिबोध रचनावली-भाग-1, पृ.107
[48] मुक्तिबोध रचनावली-भाग-1, पृ.107

भिन्न हो सकते हैं और रहे भी हैं। कारण, प्रत्येक कलाकार की रचना प्रक्रिया के साथ ही उसकी सामाजिक ओर वैयक्तिक चेतना में भिन्नता हो सकती है। इस भिन्नता से उसकी दृष्टि और रुझान में अंतर आ जाता है, अतः किसी विषय के प्रति उसकी मानसिक प्रतिक्रिया भी निश्चित रूप से कुछ भिन्न होती है। इस प्रकार "विषय" कवि की दृष्टि, उसके रुख-रवैये और उसकी समग्र चेतना से क्षालित होकर ही किसी रचना का वस्तु-तत्व बनता है। किसी कला कृति के लिए उसका विषय नहीं, वरन वस्तु तत्व महत्वपूर्ण होता है। पुराने विषयों को ग्रहण करके भी वस्तु तत्व की दृष्टि से कोई रचना दृष्टि की परिचायिका हो सकती है और नये विषय को ग्रहण करके भी वस्तु-तत्व की दृष्टि से पुरानी भावधारा की परिचायिका हो सकती है। उसे नया या पुराना बनाने कलाकार की दृष्टि और मूल्यभावना निर्णायक भूमिका का निर्वाह करती है।

कहा जा चुका है कि विषय और वस्तु में पर्याप्त अंतर है। जॉन डयूई ने अपनी पुस्तक "Art and Expeerience" में काव्य के विषय एवं उसके वस्तु तत्व के बीच भिन्नता पर प्रकाश डाला है। उनकी मान्यता है कि-"विषय काव्य का वाहक तत्व है, जबकि वस्तु अंतःतत्व। उन्होंने विषय को एक कच्चे माल की तरह स्वीकार किया है, जो रचनाकार के अनुभव से जुड़कर "वस्तु" में रूपांतरित होता है। डयूई के अनुसार-"यदि कोई कलाकार केवल विषय को लेकर रचना प्रारंभ करता है तो उसकी रचना में स्वाभाविकता की जगह कृत्रिमता की संभावना ही ज्यादा होगी।"[50] विषय से वस्तु का यह रूपांतरण जटिल रचना-प्रक्रिया से गुजरकर ही आ सकता है।

रचनाकार अपने संवेदनात्मक सौंदर्यात्मक दृष्टिकोण अथवा अपनी विश्वदृष्टि के अनुरूप "विषय" का आत्मसातीकरण करने के बाद अपनी प्रतिभा द्वारा मौलिक ढंग से जिस तत्व को सावयविक संघटना के रूप में कलाभिव्यक्ति प्रदान करने को आतुर हो जाता है, वही उस रचना का "वस्तुतत्व" है। इस संदर्भ में यह ध्यान देने की बात है कि "विभिन्न रचनाकारों के एक ही "विषय" को लेकर रचित अनेक कृतियों का "वस्तु-तत्व" उसकी रचनात्मक मौलिकता के कारण परस्पर भिन्न होता है।

कहना न होगा कि काव्य में "वस्तु" ही आधारभूत सामग्री होती है। यह कहना अनुचित न होगा कि काव्य-कृति में काव्य-वस्तु ही उसका प्रमाण तत्व है। डॉ.रामेश्वरलाल खंडेलवाल के अनुसार-"काव्य की वस्तु की सीमा बहुत व्यापक है। काव्य वस्तु के अंतर्गत रस, भाव, विभाव,

---

[49] मुक्तिबोध रचनावली: पृ.22

[50] Dewey John-Art and Experience-पृ.11

चरित्र, विचार, कल्पना, बिंब, इतिवृत्त आदि यह सब समाविष्ट हो जाताहै, जो कलात्मक रूप ग्रहण करने के लिए साहित्य की सूक्ष्म या स्थूल सामग्री बन सकता है।"[51]

रचना में प्रतिबिंबित अथवा अभिव्यक्त जीवन जगत ही उसका वस्तु तत्व है। काव्य की यह वस्तु केवल वस्तुनिष्ठ यथार्थ न होकर कवि द्वारा अपनी रचना में बौद्धिक एवं संवेदनात्मक अथवा रचनात्मक ढंग से उपस्थित यथार्थ है, और इसके लिए वस्तुनिष्ठ यथार्थ का रचनाकार के अंतर्मन से गुजरना अत्यन्त जरूरी है।

डॉ.निर्मला जैन अपनी पुस्तक में लिखा है -"काव्य-वस्तु कविता का वह नैसर्गिक अंग है जो शिल्प के कलात्मक माध्यम से कविता का रूप धारण करता है। यह वस्तु रूपमय काव्य कवि-प्रतिभा से उत्पन्न होकर ग्राहक की समग्र प्रतिग्राह्यता में स्थानांतरित होता है। काव्य उत्पत्ति की दृष्टि से कवि से इसका संबंध है, और ग्रहणशीलता की दृष्टि से ग्राहक से।"[52]

काव्य की वस्तु और विषय दोनों एक ही नहीं है। काव्य का विषय काव्य के बाहर की वस्तु है और उसका संबंध सामान्य भाषा से रहता है। कोई भी विषय काव्य रूप और काव्य भाषा में ढलकर काव्य वस्तु बन जाता है। एक विषय पर अनेक काव्य लिखे जा सकते हैं किंतु प्रत्येक काव्य कृति की काव्य "वस्तु" विशिष्ट होती है। वह काव्य वस्तु उस काव्य रूप एवं उस काव्य भाषा से भिन्न अपना अस्तित्व नहीं रख सकते। काव्य-रूप और काव्य-भाषा ये दोनों मिलकर काव्य-वस्तु को जन्म देते हैं। इसलिए काव्य का प्रभाव विषय पर नहीं निर्भर करता, अपितु वह काव्य-वस्तु पर निर्भर करता है। "अज्ञेय" ने काव्य के विषय और काव्य की "वस्तु" को अलग-अलग चीजें बताते हुए दोनों का अंतर बहुत अच्छी तरह स्पष्ट किया है। उन्होंने लिखा है कि- "यह बिल्कुल संभव है कि हम काव्य के लिए नये से नया विषय चुनें पर वस्तु उसकी पुरानी ही रहे, यह भी संभव है कि विषय पुराना रहे पर वस्तु नई हो। निस्संदेह देश-काल की संक्रमणशील परिस्थितियों में संवेदनशील व्यक्ति बहुत कुछ नया देखे-सुनेगा और अनुभव करेगा। इस तरह विषय के नयेपन के विचार का भी अपना स्थान है। पर विषय केवल नए हो सकते हैं, मौलिक नहीं। मौलिकता तो वस्तु से ही संबंध रखती है।"[53]

---

[51] जयशंकर प्रसादः वस्तु और कला-पृ.5
[52] रस सिद्धांत और सौंदर्यशास्त्र-पृ.280
[53] अज्ञेयः भूमिका तीसरा सप्तक-पृ.17

निष्कर्ष यह है कि काव्य का विषय और काव्य की वस्तु में सबंध आवश्य है, पर दोनों की भिन्नता भी स्पष्ट है।

जो भी हो, विषयानुरूप भाषा प्राप्त करने अर्थात विषय को भाषा में ढालने की क्षमता ही कवि की क्षमता होती है। विषय के बिना केवल भाषा को कवि काव्य का रूप नहीं दे सकता है और केवल विषय की प्राप्ति से ही कवि काव्य की रचना करने में समर्थ नहीं हो जाता। कवि के पास अपनी एक भाषा होती है और उसे अपने परिवेश से विषय भी उपलब्ध हो जाता है। उसमें से विशेष "वस्तु" लेकर रचनाकार रचना करता है।

अतः कवि की रचना में जो शक्ति होती है वह विषय की अपनी शक्ति नहीं होती, वरन कवि उस विषय को यह शक्ति प्रदान करता है। विषय को यह शक्ति काव्य वस्तु बन जाने पर प्राप्त होती है। लोक जीवन में जो विषय कहलाता है वह काव्य की भाषा में ढलकर काव्य वस्तु बन जाता है।

विषय और वस्तु के संदर्भ में डॉ.रामविलास शर्मा के विचार इस प्रकार हैं-"कला की विषय-वस्तु न वेदांतियां का ब्रह्म है, न हेगल का निरपेक्ष विचार। मनुष्य का इंद्रियबोध, उसके भाव, उसके विचार, उसका सौंदर्यबोध कला की विषय-वस्तु है।"[54]

अतः हम कह सकते हैं कि प्रत्येक साहित्यिक कृति की रचना के मूल में कोई न कोई वैचारिक दृष्टि अवश्य ही सक्रिय रहती है। वस्तुतः विचार तत्व ही किसी रचना विशेष का मेरुदण्ड होता है जिसके बिना उसका लिजलिजी भावुकता से ग्रस्त हो जाना साधारण है। परंतु इस विचार-तत्व का प्रकटीकरण श्रेष्ठ कृतियों में प्रत्यक्ष रूप से न होकर परोक्षतः ही रहता है। अतः शब्दों में अगर कहें तो किसी रचना विशेष में विचार तत्व जितना ही प्रच्छन्न रूप में विद्यमान होता है, वह उतनी ही श्रेष्ठ रचना मानी जाती है और इसी के साथ एक अच्छे पाठक का दायित्व बनता है कि कृति में जहाँ कहीं भी विषय तत्व मौजूद है, वह उसका साक्षात्कार अवश्य करें। क्योंकि इससे अवगत होने पर उस कृति विशेष की विषय-वस्तु का सही-सही मूल्यांकन हो पाएगा और इस क्रम ने हमें लेखक द्वारा वास्तविक जीवन जगत् से ही गई विभिन्न परिघटनाओं के संदर्भ में उसके मूल्यांकन संबंधी मानदंडों का भी ज्ञान हो पाएगा।

अतः विषय और वस्तु के विश्लेषित संबंध के उक्त आधार पर वस्तु तत्व की प्राथमिकता के तय हो जाने के बाद "रूप" के संबंध पर लेखक की स्थिति को स्पष्ट करते हुए

लूनाचार्स्की ने "रूप" की सापेक्षिक मान्यता पर टिप्पणी उचित जान पड़ती है-"एक लेखक अधिक या कम सामर्थ्य के साथ अपने विचारों, घटनाओं को अनुभव के अनुरूप ही अभिव्यक्ति का रूप अपनाता है जो विषय-वस्तु को पूरी स्पष्टता और गहरे प्रभाव के साथ उन पाठकों तक संप्रेषित करती है, जिनके लिए उसने कृति की रचना की है।"[55] इस प्रकार मार्क्सवादी आलोचक सबसे पहले अपने विश्लेषण का आधार कृति की विषय-वस्तु और उसके द्वारा पड़ने वाले सामाजिक प्रभाव को बनाता है। वह विशेष सामाजिक समूह को निर्धारित करता है जिसका प्रभाव पूरे सामाजिक जीवन पर पड़ सकता है। इसके बाद वह "रूप" की ओर आता है और रूप का विश्लेषण मुख्यतया इस दृष्टि से करता है कि रूप विशेष अपने उद्देश्य में कितना सफल रहा है याने वह कृति को किस सीमा तक संभव रूप में प्रभावकारी और ग्राह्य बनाता है।

इस प्रकार वस्तु और रूप में "वस्तु" प्राथमिक होने के बावजूद भी रूप की स्थिति उपेक्षणीय नहीं है, क्योंकि कृति के उद्देश्य को प्रभावकारी और ग्राह्य बनाने में उसका सक्रिय योगदान उसके महत्व को बढ़ा देता है। "रूप" का उद्देश्य सीमाओं में बांधा होकर और "वस्तु" का अनुगामी बनकर चलता है।

आधुनिक कविता के विस्तृत परिदृश्य में वस्तु और रूप एवं भाषा-शैली संबंधों को समाज सापेक्ष संदर्भों में परखा जाना ही उचित होगा क्योंकि इनका संबंध सामाजिक विकास की परिस्थितियों, अन्तर्जटिलताओं और अभिव्यक्तियों के सह-संबंधों पर आधारित होता है। डॉ.रामविलास शर्मा का भी विचार रहा है कि-"साहित्य का शिल्प, उसके विभिन्न रूप, सामाजिक विकास से ही संभव हुए हैं, ये उस पर बहुत कुछ निर्भर होते हैं। और यह बात भी आकस्मिक नहीं है कि हर प्राचीन साहित्य में महाकाव्य साहित्य का मुख्य रूप बताया गया है। जनता तक साहित्य पहुंचाने के साधनों में जो परिवर्तन हुए, उनका प्रभाव उनके रूपों पर भी पड़ा है।"[56] लेकिन वस्तु और रूप के समाज-सापेक्ष संबंध में निर्णायक भूमिका विषय-वस्तु की ही रामविलास शर्मा ने स्वीकारा है। यथा-"साहित्य में रूप और वस्तु एक दूसरे से संबद्ध ही नहीं होते हैं बल्कि एक दूसरे को प्रभावित भी करते हैं। ....लेकिन यह बात साहित्य कृति के संबंध में ही सही है, यानी उस वस्तु के संबंध में, जो हमें साहित्य की रचना प्रक्रिया के सम्पन्न होने के बाद

---

[54] आस्था और सौंदर्य-पृ.21

[55] ऑन लिटरेचर एण्ड आर्ट-पृ.11

[56] स्वाधीनता और राष्ट्रीय साहित्य-पृ.8

प्रतिफल के रूप में प्राप्त होती है। .....कला और विषय-वस्तु दोनों ही समान रूप से साहित्य-रचना के लिए निर्णायक महत्व की नहीं है। निर्णायक भूमिका हमेशा विषय-वस्तु की होती है।"[57]

महान कलाकृतियाँ रूप के लुभावने आवरण के कारण ही महान नहीं बन जाया करती। विषय-वस्तु का गहन और यथार्थ जीवन से पूर्णतः संबंध होना ही उसकी महानता का सूचक होता है।

"रामचरित-मानस" जैसे महान तथा कालजयी कृतियाँ अपने जीवंत जीवन-मूल्यों के कारण ही समाज में आदार का स्थान पा सकी है। रूप और वस्तु के पारस्परिक गतिशील और द्वन्द्वात्मक संबंध यहाँ महत्वपूर्ण बने हुए होते हैं। "रामचरित-मानस" तथा "रामचन्द्रिका" एक ही युग के दो महत्वपूर्ण कवियों की कृतियों के तुलनात्मक अध्ययन से वस्तु और रूप की स्थिति को भली भांति समझा जा सकता है। एक तरफ लोक-जीवन का रंग है, तो दूसरी तरफ दरबारी काव्य का ढंग है।

अतः यह रेखांकित किया जाना चाहिए कि यदि "रूप" वस्तु के अनुरूप ढलकर निकलेगा तो निश्चित ही वह वस्तु के विकास में सहायक होगा। यदि वस्तु से उसका विरोध है तो वह उसके विकास में बाधा भी हो सकता है। हिंदी के प्रख्यात आलोचक नंदकिशोर नवल ने ठीक ही कहा है कि-"रूप की भूमिका निर्णायक न होते हुए भी महत्वपूर्ण अवश्य है। वह वस्तु पर जवाबी प्रभाव डालती है।"[58] अर्न्स्ट फिशर के अनुसार-"रूप तत्व" उपेक्षणीय नहीं है, उसे गौण मानना एक बहुत बड़ी भ्रांति होगी। यह रूप तत्व ही है जो किसी वस्तु को कलाकृति बनाता है। रूप के अभाव में कला या साहित्य की स्थिति ही संभव नहीं है।"[59]

मुक्तिबोध बाह्य जगत की अभिव्यक्ति की छटपटाहट एवं रूप निर्माण की प्रक्रिया को भी समाज सापेक्ष मानते हैं। उनके मुताबिक रूप का जन्म वस्तु तत्व के निर्माण के साथ-साथ होता रहता है। जिस प्रकार हम आत्मसात कृत जगत को अभिव्यक्ति देते हुए संशोधित-संपादित करते रहते हैं उसी प्रकार बाह्य जगत को आत्मसत करने की प्रक्रिया में भी संशोधन-संपादन चलता रहता है। वे इसे बाह्य का अभ्यंतरीकरण और आभ्यंतरीकृत का बाहीकरण मानते हैं। इस प्रक्रिया का संबंध वे सामाजिक द्वन्द्व एवं सामंजस्य से जोड़ते हैं। मुक्तिबोध "बाह्य के

[57] प्रगतिशील साहित्य की समस्या-पृ.7
[58] आलोचनाःअंक 38, 1976 लेख-प्रगतिशील साहित्य और रूप की समस्य-पृ.14
[59] मार्क्सवादी सौंदर्य चिंतन इतिहास तथा सिद्धांत-पृ.393

आभ्यंतरीकरण एवं आभ्यंतरीकृत के बाहीकरण" की द्वन्द्व एवं सामंजस्य की प्रक्रिया को मार्क्सवादी दृष्टि से, वर्गीय दृष्टि से व्याख्यायित करते हैं। वे रूप एवं वस्तु के अन्योन्याश्रित संबंध एवं उसके समाजशास्त्रीय आधार की विवेचना को स्वीकार करते हैं। "अभ्यंतरण में तत्व, रूप के बिना प्रकट होना असंभव है। रूप का अर्थ केवल चित्र ही नहीं, वरन शब्द-रंग-स्वर-प्रवाह, इन में से कुछ भी हो सकता है, अथवा उनका संयोग हो सकता है। मनस्तत्व का रूप-या-तत्व स्वयं निश्चल नहीं है। वह समशील अंतर्तत्वों से संयोग करता हुआ रूप विकास या रूप संशोधन करता जाता है। सच तो यह है कि उनका पल्लवन और विकसन होता जाता है। इस अंतर अभिव्यक्ति को जब बाह्य अभिव्यक्ति में बदला जाता है तब अंतर अभिव्यक्ति का रूप भी बहुत कुछ परिवर्तित हो जाता है।"[60]

"नेसेसिटी ऑफ आर्ट" नामक पुस्तक में "आर्न्ट फिशर" ने वस्तु और रूप के अंतःसंबंध पर तर्कपूर्ण ढंग से विचार किया है। वस्तु और रूप के अंतःसंबंध पर विचारते हुए खनिज-धातु, वैज्ञानिक, जीवशास्त्र तथा समाजशास्त्र के विद्वानों ने भी बड़े तर्कसंगत इस बात को मूल्यांकित किया है कि-"वस्तु-तत्व पुराने रूप या कवच के अंदर रहकर भी सतत परिवर्तित होता रहता है। जब उसे गुणात्मक परिवर्तन आ जाता है तो विशेषता यह होती है कि वह धीरे-धीरे बनता जाता है, लेकिन निर्मित होने के बाद काफी समय तक स्थिर रहता है याने कि, सुप्त अवस्था में रहता है, फिर वस्तु-तत्व में परिवर्तन के साथ ही पुनः रूप और वस्तु में संघर्ष आरंभ हो जाता है। आर्न्स्ट फिशर के अनुसार-"जिसे हम रूप कहते हैं, वह भौतिक तत्व के एक विशिष्ट समूह एक विशिष्ट संयोजन, एक आपसिक संतुलन की अवस्था है। वह आधारभूत संरक्षण तथा रूढिवादी प्रकृति की भौतिक परिस्थितियों के अस्थायी, स्थायित्व की अभिव्यक्ति है। मगर अंतर-वस्तु लगातार बदलती रहती है, कभी वह बड़े नामालूम ढंग से बदलती है, तो कभी बड़ी तीव्र क्रिया के अंतर्गत बदलती है। वह रूप से जूझने लगती है। विस्फोट करके रूप को उड़ा देती है, और नये रूपों को जन्म देती है, जिनसे परिवर्तित अंतर्वस्तु कुछ समय के लिए एक बार फिर स्थायित्व पाती है। रूप किसी काल में उपलब्ध संतुलन की अभिव्यक्ति। अन्तर्वस्तु की अंतर्निहित विशेषताएँ हैं गति और परिवर्तन। इसलिए हालांकि यह

[60] मुक्तिबोध रचनावली:भाग-5, पृ.113

निश्चित ही एक सरलीकरण होगा, इस रूप को रूढीवादी ओर अंतर्वस्तु को क्रांतिकारी कह कर परिभाषित कर सकते हैं।"[61]

वस्तु और रूप के बीच घटित होनेवाले नये-पुराने के इस संघर्ष के दरम्यान अनेक बार उनका परस्पर विरोध हो जाना अस्वाभाविक नहीं है। जब उनके बीच का यह विरोध बढ़ते-बढ़ते चरम संघर्ष की अवस्था में पहुंच जाता है तब रचनाकार को उस संघर्ष का हल ढूंढना पड़ता है। इस संदर्भ में हिंदी कविता से उदाहरण ले सकते हैं। जैसे-भारतेंदु अपनी स्वच्छंद प्रेम भावना की अभिव्यक्ति के लिए कविता और सवैया जैसे मध्यकालीन रूप का इस्तेमाल कर रहे थे तो वहाँ वस्तु और रूप के बीच एक विरोध की स्थिति थी। यह विरोध बढ़ते-बढ़ते जब छायावाद काल में संघर्ष की अवस्था में पहुंच गया तब छायावादी कवियों ने इस पुराने रूप की जगह नये रूपों की सृष्टि करके उक्त संघर्ष का हल निकाला।

अतः हम कह सकते हैं कि साहित्य में वस्तु और रूप के बीच का संबंध द्वन्द्वात्मक होता है। इसका प्रमाण यह है कि यदि अनेक बार कृति का वस्तु-तत्व उसके रूप-निर्धारण का कारण बनता है तो इसके विपरीत कई बार "रूप" अपनी प्रकृति के अनुरूप वस्तु पर हावी होकर उसे अपने रंग में रंग लेता है। इसी प्रकार यदि रचनाकारों को वस्तु-रूप के बीच परस्पर विरोध की स्थिति के संघर्ष की अवस्था तक पहुंच जाने पर पुराने रूपों को ध्वस्त कर नयी वस्तु के अनुरूप नये रूपों की सृष्टि करनी पड़ती है तो इससे विलग साहित्य के इतिहास में अनेक ऐसे उदाहरण भी हमें प्राप्त होते हैं जबकि कवियों ने नयी वस्तु के लिए पुराने रूपों का ही सफलतापूर्वक इस्तेमाल किया है।

अंततः इस संदर्भ में विशेष ध्यान देने योग्य बात यह है कि काव्य में या साहित्य में वस्तु और रूप की परस्पर अभिन्नता को स्वीकारते हुए भी आँख मूंद कर यह मान लेना बहुत बड़ी भूल होगी कि किसी कृति के रचना-क्रम में वस्तु-रूप अनिवार्यतः अनायास ही एकमेक हो जाते हैं। वास्तविकता यह है कि साहित्य सृजन के दरम्यान रचनाकार को अत्यन्त जागरूक होकर "वस्तु" को उसकी प्रकृति के अनुकूल "रूप" प्रदान करना होता है। अर्न्स्ट फिशर के अनुसार- "रूप तत्व उपेक्षणीय ही नहीं है, उसे गौण मानना एक बहुत बड़ी भ्रांति होगी। यह रूप तत्व ही है जो किसी वस्तु को कलाकृति बनाता है। रूप के अभाव में कला या साहित्य की स्थिति संभव ही

[61] साक्षात्कार-नवंबर दिसंबर-1985, पृ.121

नहीं है।"[62] अर्थात प्रत्येक नयी रचना का नया विषय वस्तु, नये "रूप" की मांग करता है। कहना न होगा कि इसी जागरूकता के अभाव में अनेक महत्वपूर्ण कहे जाने वाले रचनाकारों की विभिन्न कृतियों में भी वस्तु-रूप के बीच दरार उत्पन्न हो जाया करती है और इस कारण ये कृतियाँ रचनात्मक दृष्टि से स्खलित होकर साहित्य-सृजन के क्षेत्र में अपनी कोई पहचान नहीं बना पाती।

निष्कर्ष :

"वस्तु" और "रूप" के सैद्धांतिक विवेचन से ज्ञात होता है कि "वस्तु" वास्तविक या कल्पित सत्ता का पर्याय है। मूलतः वास्तविक या कल्पित सत्ता का अर्थ ही व्यवहार में आता है। वस्तु-जगत वह सारा अंश है जो वर्ण्य की श्रेणी में आ जाता है जो मानवीय बोध, चेतना, ज्ञान, विचार के संपर्क में हो। भरतमुनि के अनुसार संसार की समग्र विद्या, नाटाी काव्य के अंग माना है। जिसकी अभिव्यक्ति हुई है उसके भीतर निहित संदेश और जीवन-दर्शन, नीति, संस्कृति आदि को महत्वपूर्ण माना गया है।

वस्तुवादी पक्ष को देखने की अनेक कसौटियाँ हैं। इनमें प्रमुख है-आदर्शवाद एवं यथार्थवाद। आदर्शवाद पक्ष वस्तु को आदर्श के रूप में भला या बुरा मानकर उसके पक्ष में या विपक्ष में प्रचार करता है। दूसरा पक्ष काव्य को जीवन की पुनः सृष्टि समझकर कवि के अनुभव और कल्पना का रूपों या बिंबों के द्वारा करता है। इस प्रक्रिया में हम मैथ्यू अर्नाल्ड, जॉन रस्कीन, टाल्स्टाय, कॉडवेल तथा वेलेन्सकी, ऐब्रोल्युबोव, जेम्स केलर, स्पेण्डर आदि के नाम ले सकते हैं।

सन् 1917 में विक्टर श्लोवस्की द्वारा रूपवादी आंदोलन चलाया गया, जो कि उन्होंने कला या साहित्य में केवल शैली-तत्व पर बल दिया। उनका मानना था कि शैली ही कला का केंद्र बिंदु होती है। इसी के चलते सन् 1920 में रूपवादी चिंतन अपने स्वतंत्र रूप में अस्तित्व में आया। बीसवी सदी के दूसरे दशक में रूपवाद के पहले प्रतीकवाद, बिंबवाद एवं भविष्यवाद का प्रचलन पाया जाता है। रूसी रूपवाद का केंद्र वस्तु परक न होकर रूप परक था। यही कारण कला के फलक पर संघर्ष का कारण बना।

---

[62] मार्क्सवादी सौंदर्य चिंतन इतिहास तथा सिद्धांत-शिवकुमार मिश्र-पृ.393 से उद्धृत

सन् 1917 की रूसी क्रांति के पश्चात वहाँ विभिन्न अध्ययन क्षेत्रों में परिव्याप्त परंपरागत मान्यताओं के मूल्य एवं मूल्यांकन आरंभ हुए और ऐतिहासिक भौतिकवाद के सिद्धांत पर वस्तु और रूप की पुर्नव्याख्या की गई। इस प्रवाह का असर भारतीय चिंतर पर भी रहा और हिंदी समीक्षा में इस की चर्चा एवं व्याख्या मुक्तिबोध, दिनकर, रामविलास शर्मा जैसे आलोचकों ने की। डॉ.रविंद्रनाथ श्रीवास्तव वस्तु और रूप को "संरचना" के सहारे उद्भाषित और प्रकाशित माना।

अतः काव्य में वस्तु और रूप का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण होता है। रूप काव्य का एक अभिन्न अंग है, इसके बिना काव्य अपना रूप नहीं पा सकता। काव्य के विषय वस्तु को कला रूप में ढालने का श्रेय रूप विधान को है। काव्य रूप के अंतर्गत आते हैं-छंद, अलंकार, ध्वनि, शैली, भाषा, प्रतीक, बिंब तथा कल्पना आदि। जिस तरह काव्य, वस्तु से जुड़ा रहता है, उसी तरह रूप से। काव्य में वस्तु और रूप अन्योन्याश्रित है।

इस परिप्रेक्ष्य को देखने से प्रतीत होता है कि काव्य की वस्तु और विषय दोनों ही एक नहीं होते। काव्य का विषय काव्य के बाहर की वस्तु है और उसका संबंध सामान्य भाषा से रहता है। कोई भी विषय काव्य-रूप और काव्य भाषा में ढलकर काव्य वस्तु बन जाता है। इस प्रकार वस्तु और रूप में वस्तु प्राथमिक होने के बावजूद भी रूप की स्थिति और गति गौण नहीं होती। रूप का उद्देश्य सीमाओं में बांधा होकर और वस्तु का अनुगामी बनकर चलना होता है।

* * * * *

अध्याय दो

भवानी प्रसाद मिश्र:व्यक्तित्व, रचना एवं परिप्रेक्ष्य

2.1 जन्म एवं शिक्षा

2.2 व्यक्तित्व

- 2.2.1 सादगी
- 2.2.2 जिंदादिली
- 2.2.3 समाधानी
- 2.2.4 मृत्युंजयी कवि

2.3 रचनाएँ

2.4 परिप्रेक्ष्य

- 2.4.1 युगीन परिप्रेक्ष्य
- 2.4.2 राष्ट्रीय आंदोलन

2.5 वैचारिक परिप्रेक्ष्य

- 2.5.1 गांधी दर्शन
- 2.5.2 प्रयोगवादी काव्य-दर्शन
- 2.5.3 मानवतावाद
- 2.5.4 नयी कविता दर्शन

2.6 निष्कर्ष

अध्याय दो

भवानी प्रसाद मिश्र व्यक्तित्व रचना एवं परिप्रेक्ष्य

जिस कलाकार के काव्य में जीवन के सत्य हों, जीवन के प्रति घोर आसक्ति हो, जो कभी खेतों की हरियाली की तरह लहराते हैं तो कभी-कभी कड़ी धूप से सूखकर नष्ट हो जाते हैं पर सूरज की तरह नयी-नयी उमंगों को लिए नये-नये भावों को संसार के कोने-कोने में बिखराते हुए हमारे समक्ष आते हैं, ऐसे कलाकार के काव्य में वस्तु और रूप को बुझी चिनगारी के समान समझा जाए। क्यों न उसे आधुनिक संदर्भ के वैचारिक पृष्ठभूमि पर जान, पहचानकर भविष्य में विश्व मानवता का लक्ष बनाये। ताकि वह भविष्य को मार्ग दिखा सके। भवानी प्रसाद मिश्र का साहित्य ठीक-ठीक इसी प्रकार का है। यदि भवानी प्रसाद मिश्र के व्यक्तित्व की परिभाषा संक्षेप में करनी हो तो इस प्रकार कहा जा सकता है कि वे दूसरों के मन की बात तत्काल जाननेवाले अंतर्ज्ञानी और अपने भीतर की बात सरल ढंग से दूसरों तक पहुंचाने में सफल हैं। उनके यहाँ अनौपचारिकता एवं मार्मिकता सहज प्रेषणीय है साथ ही आत्मस्वीकृति उनके चरित्र्य की प्रमुख्य विशेषता है।

भवानी प्रसाद मिश्र कभी दोहरे व्यक्तित्व में नहीं पड़े। इससे सर्जन सार्थक नहीं हो पाता। मुखौटे बदलने से, नये आंदोलनों की अगुवाई करने से, नारे बाजी और प्रचारात्मकता से अथवा घिसे पिटे नुस्खों और शब्दाडंबरों से कवि-कर्म की साधना धुंधली पड़ जाती है और कवि की सतही उथली जीवन शैली बहुत थोड़े समय में उसकी रचनाओं के अस्तित्व पर प्रश्न चिन्ह लगा देती है। या तो कवि जैसा जीता है वैसा लिखे या फिर जैसा लिखता है वैसा जिए। वह अपने दो स्तर नहीं रख सकता था, यों कहना चाहिए कि रचना और जिंदगी का अंतराल उसे कम करना होगा। कवि भवानी प्रसाद मिश्र की कृतियाँ इस बात का प्रमाण है कि उनकी जिंदगी कविता में डूबी, उतराई और कविता जिंदगी की रेल में बही और आसपास की आशाओं और आंकाक्षाओं से जुडी। यह है-कविता में जिंदगी और जिंदगी में कविता अतः रचना विषय-वस्तु के आधार पर हम उनकी जीवन की समग्रता खोज सकते हैं। डॉ.कमला प्रसाद पाण्डेय की उक्ति इस संदर्भ में उचित जान पड़ती है-"युग के कीटाणु, परंपरा के संचरणशील तत्व और व्यक्ति की

जागरूकता जैसे मूल्य जब एक केंद्र में इमानदारी से उपस्थित हो जाते हैं तो रचना की भूमि तैयार हो जाती है। कविता का कर्ता न तो अपने को और न पाठक को किसी रहस्य के संसार में छोड़ देता है। भटकना उसकी जिंदगी है पर ऐसी जिंदगी जब मानसिकता में किसी निष्कर्ष पर पहुंच जाती है तब कविता का पूरा आधार बन जाता है। जिंदगी का हर क्षण कविता का स्पंदन तो है परंतु उसकी पूर्णता किसी निष्कर्ष में है। क्षणों की पूर्णता के आधार पर ही कवि की मानसिकता में बिंब बनता है। जागरूक कवि की जिंदगी का रेशा-रेशा कविता है और कविता का हर रेशा जिंदगी।"[1] यह कविता और जीवन का सही मेल मिश्रजी की रचनाओं में रूपायित हुआ है। वे स्वीकारते हैं कि कविता में ही कह पाता हूँ मैं कुछ इसलिए लिखने से नहीं ऊबता।

2.1 जन्म एवं शिक्षा :

भवानी प्रसाद मिश्र का जन्म 29 मार्च सन् 1913 को टिगरिया नामक साधारण गाँव, तहसील सिवनी (मालवा) जिल्हा होशंगाबाद मध्य-प्रदशे में एक साधारण कन्य-कुब्ज ब्राह्मण परिवार में हुआ। बाल्यकाल में भवानी प्रसाद मिश्र को माँ का प्यार और ममता एवं पिता का भरपूर प्यार मिला। इसी प्रसन्नता के चलते उन्होंने लिखा है-

"माँ कि जिसकी स्नेह धारा
का यहाँ तक भी पसारा
उसे लिखना नहीं आता
जो कि उसका पत्र पाता।"[2]

भवानी प्रसाद मिश्र ने माँ के प्रति एक स्थान पर लिखा है-"मेरी माता गोमती थी। बड़ा सार्थक नाम है मेरी माता का। उससे रहते हमारे घर में सदा गाय रही। मेरी माता किसान की बेटी थी और निरक्षर थी। बुद्धि उनकी बड़ी तीव्र थी और भावुक होते हुए भी मैंने उन्हें कभी भावुकता प्रकट करते नहीं देखा।"[3] पूजनीय माँ श्रीमती गोमती देवी का सन् 1962 में स्वर्गवास हुआ। पिता श्री सीताराम मिश्र अधिक आयु में भी सशक्त थे।

---

[1] छायावाद: प्रकृति और प्रयोग-पृ.7
[2] गीतफरोश-पृ.128
[3] भवानी प्रसाद मिश्र: प्रेमशंकर रघुवंशी-पृ.74 पर उद्धृत

भवानी प्रसाद मिश्र को हाईस्कूल की शिक्षा के समय ही घर छोड़ना पड़ा। पुत्र को अपने से दूर रखना पिता को कभी नहीं भाया तथा पुत्र को अपने से दूर जाते देख उनका ह्रदय निश्चय ही द्रवित हुआ। चूंकि भवानी प्रसाद मिश्र पांचवी संतान थे, इसलिए उन्होंने लिखा है-

"पिताजी जिनको बुढ़ापा
एक क्षण नहीं व्यापा
रों पडे होंगे बराबर
पांचवे का नाम लेकर।"[4]

सन् 1964 में भवानी प्रसाद मिश्र के पिता का स्वर्गवास हो गया। माँ और पिता से प्रभावित उनका ह्रदय भावुकता, स्नेह-प्रेम साहस उनके व्यक्तित्व से पूर्णतया उजागर होते हैं। मन की भावुकता को साहस के साथ जोड़ते हुए उन्होंने लिखा है-

"कूदता हूँ खेलता हूँ मैं
दुःख डटकर ठेलता हूँ
और कहना मस्त हूँ मैं
यों न कहना अस्त हूँ मैं।"[5]

भवानी प्रसार मिश्र के जीवन में, माँ, पिता तथा भाई-बहनों यानी समूचे परिवार का स्नेह, विशेष स्थान रखता है। इतना ही नहीं विद्यार्थी जीवन में मित्रों का स्नेह भी उतना ही महत्व रखता है। भवानी प्रसाद मिश्र का ह्रदय केवल पारिवारिक स्मृतियों से ही द्रवित नहीं हुआ, बल्कि मिश्र एवं परिवार वालों से दूर होने के क्षणों में भी वह उतना ही सिसक उठा है। रामचरण पाठक ने भवानी प्रसाद मिश्र से विदा होते समय उस क्षण का भावना-प्रधान दृश्य हमारे समक्ष यों रखा है- "तांगे में सामान रखा गया। भवानी प्रसाद मिश्र जी हमें विदा देने नीचे उतरे। उनसे विदा होते समय भावावेश में मेरे आँसू निकल पड़े। उन्हें मेरी भावुकता छू गई। उन्होंने तांगा रोका, ऊपर जाकर अपनी पेटी बिस्तर ले आए और हमारे साथ ताँगे में रखकर चल दिए। उन्होंने भी होस्टल छोड़ दिया और हमारे साथ रहने लगे"[6] जिस स्नेह से परिपूर्ण परिवेश ने उन्हें पनाह दी उसे वे कभी भूल नहीं सके। वे निसंकोच भाव से कहते हैं-

---

[4] गीतफरोश-पृ.129
[5] गीतफरोश-पृ.134
[6] भवानीप्रसाद मिश्रः प्रेमशंकर रघुवंशी-पृ.115 पर उद्धृत

"तुम देख रहे हो मुझको, जहाँ खड़ा हूँ
तुम देख रहे हो मुझको जहाँ पड़ा हूँ,
मैं ऐसे ही खण्डहर चुनता फिरता हूँ
मैं ऐसे ही जगहों में पला बढ़ा हूँ।"[7]

भवानी प्रसाद मिश्र का बचपन खण्डवा, बैतूल और सुहागपुर में बीता एवं प्राइमरी शिक्षा सुहागपुर में हुई। हाइस्कूल की शिक्षा के लिए इन्हें नरसिंहपुर एवं होशंगाबाद जाना पड़ा। हाइस्कूल शिक्षा के उपरांत जबलपुर राबर्टसन कॉलेज (आजकल महाकौशल महाविद्यालय) में अध्ययन करते हुए हिंदी, संस्कृत और अंग्रेज़ी इन तीन विषयों को लेकर सन् 1934-35 तक बी.ए. किया। उसके बाद पदच्युतर शिक्षा में उनकी दिलचस्पी नहीं रही। उन्होंने एक जगह कहा भी है-मैं एम.ए. भी पास करूँ ऐसी कई लोगों की इच्छा भी थी। किंतु जाने क्यों मुझे भय था कि एम.ए. पास करके मैं सरकारी नौकर हो जाऊँगा। सरकारी नौकरी की अप्रतिष्ठा स्वयं मेरे पिता जो सरकारी नौकर थे मेरे मन पर स्पष्ट करते रहते थे।[8] अतः भवानी प्रसाद मिश्र प्रतिष्ठा की आशाएँ नहीं रखी। सीमित इच्छाओं से मन की बात पूरी की। बचपन के रुचियों के संबंध में उन्होंने लिखा है-"उन दिनों खेलों में गुल्ली-डंडा, चकरी और भौंरा यही मुख्य थे। गुल्ली-डण्डा मैं ठीक खेलता था। चकरी और भौंरा भी खेलता था, किंतु इसमें सफाई नहीं सधी थी। गोली खेलने का चलन भी था। उसमें मैंने कभी ऐसी कुशलता प्राप्त नहीं की, कि चस्का लग जाता। वर्षान्त में गैडी पर चढ़ना और दूर-दूर तक कीचड़ में घूमकर आना एक शौक था।"[9]

2.2 व्यक्तित्व :

काव्य का अनुशीलन आरंभ करते हुए स्वभावतः कवि के विषय में भी एक जिज्ञासा होती है। कवि का व्यक्तिगत जीवन उसके काव्य को समझने के लिए अनिवार्यतः ज्ञातव्य नहीं होता, बशर्ते उसका एक मूल्य भी होता है। उसका मूल्य उस समय है जब वह कवि के व्यक्तित्व की मूलभूत प्रेरणाओं को प्रकाश में लाए। वैसे अंततः कवि के व्यक्तित्व का उत्तम परिचय स्वयं उसका काव्य होता है क्योंकि वह उसका श्रेष्ठ कर्म है, उसके जीवन की चरम उपलब्धि और अभिव्यक्ति है। किंतु एक ही कवि के काव्य पर प्रस्तुत अनुशीलन में उसके व्यक्तित्व का कुछ

---

[7] गीतफरोश-पृ.17-18
[8] भवानी प्रसाद मिश्र:विजयबहादुर सिंह-पृ.4
[9] विजय बहादुर सिंह-पृ.6

परिचय देना भी आवश्यक हो जाता है। यदि भवानी प्रसाद मिश्र जी के व्यक्तित्व की परिभाषा संक्षेप में करनी हो तो, इस तरह कहा जा सकता है कि वे दूसरों के मन की बात तत्काल जाननेवाले अनार्ज्ञानी और अपने भीतर की बात सरल ढंग से स्पष्टतः दूसरों तक पहुंचाने में सफल है। उनके अभिव्यक्ति की अनौपचारिकता एवं मार्मिकता प्रेषणीय लगती है। यदि हजारी प्रसाद द्विवेदी के "विशुद्ध मनुष्य" लेख से उद्धरण देखें तो भवानी प्रसाद मिश्र का साकार रूप हमारे आँखों के सामने उभरता है यथा-"है मझोला कद, खदरिया एक धोती, एक कुर्ता, बस यही है वेश। सीपी का एक चमकता मोती है, कि फेरी में कटी है उम्र, रहता कभी वर्धा, कभी बांबे, कभी उत्तर, कभी दक्खन, कभी पूरब, कभी पच्छिम, पैरों में बांधे सनीचर, गा न सकता, रो न सकता, मगर कुछ-कुछ सिखा सकता, भटकतों को सही रास्ता दिखा सकता, और कुछ लिख सकता। यह गरम अफवाह है यह कवि प्रयोगी हो गया है, मगर मैं यह जानता हूँ, वह प्रयोगी हो नहीं सकता, कदाचित् योग से विभ्रष्ट योगी है, वियोगी तो नहीं हर्गिज।"[10]

अभिव्यंजनीय काव्य-वस्तु निस्संदेह कवि के व्यक्तित्व द्वारा किये गये चयन का परिणाम ही होता है। यह चयन इतना सचेत नहीं होता, जितना बोध की बुनियादी पर निर्भर होता है। उसे अनिवार्यतः बुद्धि पर आधारित मान लेना अपने बुनावट पर मान लेना अपने आप में एक अबौद्धिक कारवाई मात्र होगी। बुद्धि से परे-इस अर्थ में उसे अबौद्धिक कहा जा सकता है। वैलेस स्टीवेंस ने इसे काव्यात्मक यंत्रवाद कहकर समझना चाहा है। यथा - **In each of us is a biological Mechanism, each poet is a poetic Mechanism. To the extent that what he produces is Mechanical that is to say, beyond his power to change, it is irrational.**[11]

भवानी प्रसाद मिश्र का हृदय एक दर्पण है, जिसमें कई दृश्य उभरते हैं, धूमिल होते हैं किंतु स्थिर रह नहीं पाते क्षण-क्षण बदलते हैं। इसीलिए एक क्षण को पकडना कठिन है। यह जीवन्त व्यक्तित्व जिन्दगी को जिन्दादिली से पुकारते हुए कहता है-

कुछ लोग भ्रांतिवश मुझे शांति कहते हैं,
निस्तव्य बताते हैं, कुछ चुप रहते हैं,
मैं शांत नहीं निस्तब्ध नहीं, फिर क्या हूँ

---

[10] भवानी प्रसाद के आयाम (संपादक)-पृ.74

[11] **Reginold Gibbons: The poets work, ed. P.51**

मैं मौन नहीं हूँ मुझमें स्वर बहते हैं।[12]

भवानी प्रसाद मिश्र के व्यक्तित्व से विशेष बात यह दिखाई पड़ती है कि हमारा जीवन सहज और सरल हो। जैसे-

हमें चाहिए कि हम फूल की तरह खिले,
वृक्ष की भांति बढ़े।

कवि को कभी-कभी लगता है जैसे कविता की शक्ति बहुत सीमित है और उससे कुछ सिद्ध नहीं हो सकता-

कई दिन से इस तरह का बहुत कुछ
मन में चलता है,
हाय, कितनी बार मेरी बुद्धि ने
मुझको छला है
मुझे लगता है कि यह लिखना
नहीं काम कोई,
कर नहीं सकते लहर के स्वर
हवा में नाम कोई,
जगत की जो चाल है वह चलेगा
उस चाल से रे,
तुच्छ कवि का इस तरह लड़ना
न होगा काल से रे!

उनके व्यक्तित्व में इस संशय का समाधान यह है कि परिणाम चाहे कुछ भी हो, पर कवि को अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध अपनी आवाज को ऊँचा उठाना चाहिए। भवानी प्रसाद मिश्र सत्य-एवं सुंदरम के सिद्धांतों पर विश्वास रखने वाले एक आदर्शवादी एवं आशावादी कवि हैं- यथा तेरा जन्म दिन कविता में -

ठीक है यदि उस तरह से
हम हरे होते नहीं हैं,
किंतु यह भी है कि उतनी सरलता के साथ

---
[12] गीतफरोश-पृ.17

अपनी शक्ति हम खोते नहीं हैं।[13]

भवानी प्रसाद मिश्र जिस वातावरण में रहे उस परिवेश के बारे में उन्होंने लिखा है- "छोटी सी जगह में रहता था, छोटी-सी नदी नर्मदा किनारे, छोटे से पहाड़ विन्ध्याचल के आँचल में, छोटे साधारण मध्य वित्त परिवार में पैदा हुआ, साधारण पढ़ा लिखा और जो काम किये वे भी साधारण से अछूते। मेरे आस-पास के तमाम लोगों की सी सुविधाएँ-असुविधाएँ मेरी थी। मैं नहीं जानता किस बात को सुनाने लायक मानकर सुनाने लगूँ। खासकर जब सुनाने का मतलब यह माना जायगा कि इस सबका मेरी कविता से गहरा सम्बन्ध है।"[14] ऐसे एक निराले कवि भवानी प्रसार मिश्र का व्यक्तित्व दूसरे शब्दों में अगर कहा जाय तो यूँ कह सकते हैं- शरीर से उठावदार चेहरा पर सदा मुस्कराहट लिये। भले ही मन में कोई बेचैनी हो, किंतु चेहरे पर कोई फर्क नहीं। खूबसूरत और बड़ी-बड़ी आँखें, जिनमें स्नेह तथा करुणा का भाव फूट-फूटकर भरा हुआ है। ऐसे और भी हजारों आँखें हो सकती हैं, किंतु करुणा सहानुभूति स्नेह से परिपूर्ण ऐसी दो आँखें दुर्लभ हैं। उन्नत भाल गेहुआ रंग, नुकीली नाक, तेजयुक्त मुखमंडल, सादा एवं सरल, रहन-सहन, खादी का कुर्ता, सफेद धोती, पीछे जमें हुए निराले बाल, बड़े ही हँसमुख मिलन सार भवानी प्रसाद मिश्र जी के दार्शनीय व्यक्तित्व की कुल यही विशेषता है।

भवानी प्रसाद मिश्र हमेशा नव उन्मेषशालीनी रहे हैं। प्रारम्भ में गाँधी-विचारों के प्रति आकर्षण रहा, साथ ही गाँधी-विचारों से सम्बंधित पं.माखनलाल चतुर्वेदी, पं.बालकृष्ण शर्मा "नवीन" तथा श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी जैसे व्यक्तित्वों के सम्पर्क में ढलकर भवानीप्रसाद मिश्र ने गाँधी-व्यक्तित्व को अपने भीतर उतार, गाँधी-विचारों को ऊँचा उठाकर सशक्त बनाने का सफल प्रयास किया। इन्हीं विचारों को शिक्षा देने के उद्देश्य से वे स्वायत पाठशाला चलाई। इस पाठशाला को चलाते हुए "भारत-छोडो" आन्दोलन में भाग लिया जिसके चलते सन् 1942 में गिरफ्तार होकर नागपुर सेंट्रल जेल में दो साल आठ माह आठ दिन कारावास में रहकर सन् 45 में छूटे। जेल के जीवन में उनके साथ-विनोबा भावे, दादा धर्माधिकारी, किशोरीलाल भाई, काका कालेकर और किशोर भाई मश्रुवाला, सत्यनारायण बजाज, एच.वी.कामथ अन्य लोग थे। जेल के जीवन को इन्होंने एक प्रकार का विश्वविद्यालय की संज्ञा दी है। इसके बाद सन् 1946 में महिलाश्रम, वर्धा में शिक्षण का प्रारंभ। सन् 1947 में प्रसिद्ध कविता "गीत फरोश" की रचना।

---

[13] गीतफरोश-पृ.111

[14] दूसरा सप्तक, पृ.3

सन् 1948 में 30 जनवरी गांधी की हत्या से मर्मादत्त होकर 13 दिन तक लगातार निराहार रहकर 13 कविताएँ लिखीं। "अश्रु और अश्वास" शीर्षक से पुस्तिका कर वितरित की। सन् 1949 में हनुमान प्रसाद तिवारी के साथ मिलकर नागपुर से प्रकाशित "विचार" साप्ताहिक का संपादन। सन् 1950 से 1951 तक राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा में रहे। वहाँ से कवि सम्मेलन में हैदराबाद गए। वहाँ जुलाई 1952 से मई 1954 तक बद्री विशाल पीति के साथ "कल्पना" त्रैमासिक पत्रिका का संपादन किया। सन् 1955 से 1957 तक मद्रास के ए.बी.एम. फिल्म कंपनी के लिए संवाद लिखे, साथ ही संवाद निर्देशन भी किया। सन् 1956 में प्रथम काव्य संग्रह "गीत-फरोश" का प्रकाशन हुआ। बंबई आकाशवाणी में चीफ प्रोड्यूसर के रूप में नियुक्ति और 1957 में दिल्ली आकाशवाणी में स्थानांतरित। 1958 में "गांधी वाङ्मय" के हिंदी खंडों के संपादन कार्यों से जुड़े। सन् 1959 में इन्होंने दो विदेशी उपन्यासों का अनुवाद किया। हेलन कल्चर का "मुक्त द्वार" (ओपन डोर) और स्टेन बैंक का "रेड पोनी"। सन् 1961 से 1972 तक संपूर्ण गांधी वाङ्मय प्रकाशन विभाग भारत सरकार के हिंदी खंडों का संपादन किया। 1961 में उसी प्रतिष्ठान की "गांधी मार्ग" मासिक पत्रिका के संपादक रहे। साथ ही गाँधी-स्मारक निधि, सर्व-सेवा संघ तथा समन्वय-संघ सन्निधि, नयी दिल्ली से संबद्ध आकाशवाणी तथा दूरदर्शन के सामान्य संचालक थे। "गगनाचल" त्रैमासिक भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद के मानसेवी संपादक भी रहे।

भवानी प्रसाद मिश्र जिंदादिल इंसान थे। उन्हें कई प्रकार के जिंदगी के माडों से गुजरना पड़ा, किंतु मोड जैसा भी रहा हो उन्होंने उसे प्रेम से स्वीकार किया। जितने भी काम किये देश और समाज के लिए ही किये। उन्होंने स्वयं कहा है-"काम जितने किये सब मन के किये और मन से किये। जिन कामों का स्वभाव थोड़ा बहुत विपरीत था, उन्हें भी अपने साँचे में ढाला। उनके साँचे में मैं नहीं ढला।"[15]

भवानी प्रसाद मिश्र विविध क्षेत्रों के कवि सम्मेलनों में बड़े ही उत्साह से सहभागी होते रहे हैं और काव्य पाठ भी बड़ी ही तन्मयता से करते हैं-"ऐसे तेज जबान ऐसी प्रखर कविताएँ, कविता पाठ का ऐसा विभोर कर देने वाला तरीका कि अच्छे-अच्छे कण्ठ कवि बैठ जाते थे। आक्रामक व्यक्तित्व, तीखी आँखें जो सामने वाले को कप-कपा देती, नाक पर ऐसा उपहास कि

---

[15] भवानी प्रसाद मिश्र : विजयबहादुर सिंह-पृ.12

सामनेवाला हीनता अनुभव करने लगे, कभी बेहद कठोर, कभी बेहद भावुकता। ऐसा व्यक्तित्व कम होता है जो एक साथ आकर्षण और डरपैदा करे, जिसकी तरफ आदमी खिंचा चला जाए पर आशंका भी बनी रहे कि यह आदमी न जाने कब झपट्टा लगा दे।"[16] गहन से गहन अर्थ को सहज बोलचाल की भाषा में क्षण-क्षण बदलते हाव-भावों के साथ हमारे समक्ष उंडेलते हुए, तेज तर्रार आवाज तथा नाटकीय शैली में व्यंग्यात्मक भाव से सहक्षेपित करते हैं मानो यों लगता है-धरती की हरीतिमा से लेकर आकाश के पक्षी की तरह विचरण करते हुए, पुनः अपने घोसले में पूर्ववत। अतः वृद्धावस्था में शरीर की क्षीणता के बावजूद भी भवानी प्रसाद मिश्र के काव्य परस्पर विरोधी भावों या स्थितयों के जटिल अनुभव वस्तु के साथ संप्रेषित होने के लिए "रक्तकमल" कविता में रूपायित रूप हमारे आँखों के सामने नाचने लगता है जैसे-

"खुशी को
बाराहा मना किया था
मैं ने
कि न जाये वह
मेरे खून की धारा से
कहने अपना दुःख
मगर वह गयी
और अब खा रही है वहाँ
डुबकियाँ।"

कुल मिलाकर भवानी प्रसाद मिश्र का व्यक्तित्व उदयप्रकाश के शब्दों में कहें तो, इस प्रकार-"निसंकोच कहा जा सकता है कि वे कविता के गांधी थे। शब्दों की पूंजी उनके पास थी, चुटकी उनकी सच्ची थी और उनके चरखे की लय बाँधी हुई थी। भवानी प्रसाद मिश्र की तेजस्विता अद्वितीय है।"[17]

1.2.1 सादगी :

किसी महापुरुष के व्यक्तित्व में ऐसा क्या होता है जो एक ही क्षण में पर को निज बना लेता है, इसी को दूसरे शब्दों में अगर कहें कि किसी मानव-विभूति में गुरुत्वाकर्षण

---

[16] भवानी प्रसाद मिश्रः विजयबहादुर सिंह-पृ.12
[17] भवानी प्रसाद मिश्र के आयाम-पृ.91

का वह कौन-सा केंद्र बिंदु है जिसकी ओर समाज खिंचा हुआ चला जाता है और उस विभूति के प्रथम दर्शन में ही पर भावना से विनिर्मुक्त हो उसे आत्मीयवत समझने लग जाता है। इसका सरल उत्तर है-महद्दादर्श-समन्वित व्यक्ति की सादगी ही ऐसा चुंबक है जो अशेष-प्राणी वर्ग को अपनी ओर आकृष्ट करता रहता है।

सादगी और आत्मसत्य भवानी प्रसाद मिश्र के व्यक्तित्व के प्रमुख तत्व हैं। बाल कवि बैरागी ने एक प्रसंग द्वारा यों स्पष्ट किया है-"दा के हाथों और पावों पर सफेद चकते हैं। बडे-बडे दाग। मैं सवाल करूँ उससे पहले दा-बोले-हाँ तो पंडित! तुम इन दागों के बारे में कुछ पूछना चाहते हो। है न? मैंने सिर हिलाया। वे बोले बेटे! जिस तरह छोटे आदमी छोटे पाप करते हैं, ये चकते उन्हीं पापों के प्रमाण पत्र हैं। लो कॉफी पियो। मैंने भी जिंदगी में पाप किये हैं। तुम "दा" को साफ आदमी और टप-टप।"[18] ठीक इसी तरह की आत्म स्वीकृति जिला जालना (महाराष्ट्र) के सम्मेलन में उन्होंने श्रोताओं से कहा था-"मैं शरीर का वृद्ध और दिल का बीमार हूँ। किंतु इस भवन की इतनी सीढियाँ जो मैं चढ़कर आया हूँ तो केवल अपने स्वार्थ के लिए। अतः आत्मस्वीकृति तथा सत्यवादी दृष्टि भवानीप्रसाद मिश्रा के चरित्र्य की उल्लेखनीय विषय वस्तु की विशेषता है। यथा-

"मेरा और तुम्हारा
सारा फर्क
इतने में है
कि तुम लिखते हो
मैं बोलता हूँ
और कितना फर्क हो जाता है इससे
तुम ढाकते हो मैं खोलता हूँ।"[19]

1.2.2 जिंदादिल :

आस्था और विश्वास के कवि भवानी प्रसाद मिश्र प्रारंभ से ही निराशा और उदासी को अपने भीतर पनपने नहीं देते। यह स्वाभाविक ही था कि उन की सर्वोच्च आस्था शब्दों

---

[18] भवानीप्रसाद मिश्र : प्रेमशंकर रघुवंश-पृ.170

[19] भवानी प्रसाद के आयाम : पृ.10

में थी। उन्हीं के शब्दों में-सच पूछो तो मैं नहीं कह सकता कि ईश्वर में मेरा पूर्ण है या नहीं। डॉ.नन्दकिशोर आचार्य के सवाल के उत्तर में भवानी प्रसाद मिश्र ने कहा था-"मेरी वास्तविक आस्था मेरे शबदों में है। शब्द कवि का माध्यम नहीं है, यदि सच्चा कवि है तो वह स्वयं ही शब्द का माध्यम है।"[20]

जीवन में निराशा आ जाए भी तो उसे हटाकर कुशलता के साथ कैसे जिया जाए, इस कला से भवानी प्रसाद मिश्र पूर्णतः अवगत है। उन्होंने स्वयं कहा भी है-"उदासी आती है स्वाभाविक है। मगर आसान है, उसको रगडकर चमका लेना। निराशा गलत है। मैं उसको अपने पास फटकने नहीं देता। मैं जीवन के दो प्रधान तत्व सुख और दुख गड्ड-मड्ड करके, मिलाकर खंगोलकर उन्हें आनंद में बदलने की संभावना को अपनी मुट्ठी में महसूस करता हूँ।"[21] दूसरी तरफ से वे कहते हैं, दर्द जब पीरे बहाना करो, अतः भवानी प्रसाद मिश्र के व्यक्तित्व की प्रमुख विशेषता यह है कि स्वयं भी कठिनाइयों में जीने का नया मार्ग निकाल लेते साथ ही दूसरों को जीने की सही दिशा निर्देशित करते हैं, यथा-

"हम अपनी मनःस्थितियों में
ठहर जायें
अपने भय विषाद और पीड़ा के
आकाश में
किसी ध्वजा की तरह
फहर जायें
न धक्का दे मनःस्थिति को
न उनसे भागें
बने हम से तो
हम उनमें जागें।"[22]

1.2.3 समाधनी :

[20] मन एक मैली कमीज है-संपादक-नंदकिशोर आचार्य-पृ.2
[21] सम्प्रति-पृ.5
[22] सम्प्रति-पृ.35

भवानी प्रसाद मिश्र देश के कई शहरों में घूमे कई स्थानों, पदों पर रहे किंतु वे शहरी जीवन से कभी नहीं जुड़े। मद्रास में ए.बी.एम. कपंनी में चलचित्र के संवाद लिखे, निर्देशन भी किया पर चलचित्र नहीं के बराबर देखे। काफी हाउस तथा बड़े-बड़े होटलों का स्थान साहित्यकारों के लिए विशेष स्थान माने जाते हैं। फलतः भवानी प्रसाद मिश्र इन गतिविधियों से दूर रहे। उन्होंने जीवन में अनावश्यक बातों को नहीं पनपने दिया। जो जीवनोपयुक्त लगा उसे साकार कर दिया। उन्होंने कभी बड़ी-बड़ी आकांक्षाएँ नहीं रखीं। उनका सहजता भाव जैनेंद्र ने इस प्रकार लिखा है-"वह सदा स्पष्ट रहे अपने जीवन में। बात कहीं तो खुलकर कहीं, मन में किसी के प्रति गांठ नहीं रखी। सबके प्रति स्वागत-सत्कार का भाव उनमें रहा। ...उनके व्यवहार में एक अद्भुत खुलापन था। हर किसी के दुःख की कहानी पर उनका मन और उनकी आँखें भर आती थी। वह निष्ठावान पुरुष थे। केंद्रच्युत कदाचित कभी नहीं हुए। सबके प्रति उदात्त रहे, पर आसान से डिगे नहीं।"[23]

उन्होंने कभी दूर की कौडी लाने की आशा नहीं की। जहाँ तक हो सके दूसरों के सुख-दुख में सहभागी होकर जितना स्नेह उन्होंने दिया है, वह अविस्मरणीय है। एक ही मुलाकात में व्यक्ति के इतने पास आ जाते हैं कि ऐसा लगता है, हम मिश्र जी को बरसों से जानते हैं। बड़ा ही सरल स्नेह से भरा हुआ पवित्र हृदय उन्हें विरासत में मिला है। वे कहते हैं-"मेरा जीवन बहुत खुला-खुला बीता है। किसी बात की तंगी मैंने महसूस नहीं की। मेरे प्रति माता-पिता और परिवार के सिवा सभी लोग उदार रहे। एक तो मेरी इच्छाएँ ही बहुत कम हैं जो हैं, वे बराबर पूरी होती रहीं थोड़े में आनंद के साथ जीना दरिद्र ब्राह्मण परिवार से विरासत में मिली।"[24]

1.2.4 मृत्युंजयी कवि :

भवानी प्रसाद मिश्र के व्यक्तित्व का वैभव विशाल है। वे सारी समष्टि को अपने अस्तित्व का एक अंग मानते हैं। इसी उदार भावना को व्यक्त करते हुए वे कहते हैं-"जब मैं नहीं रहूँगा तब भी और तमाम सब रहेगा। इस तरह से मैं भी रहूँगा ही रहूँगा।"[25]

---

[23] भवानी प्रसाद मिश्र के आयाम-पृ.79

[24] भवानी प्रसाद मिश्रः विजय बहादुर सिंह-पृ.11

[25] संप्रति-पृ.5

यदि कभी निराशा भरे क्षण आते हैं तो वे एक झटके से उनसे मुक्त होकर सक्रिय भी दिखाई देते हैं। मृत्यु साक्षात्कार को ही लें। भवानी प्रसाद मिश्र ने "मृत्यु का साक्षात्कार" अद्वैत के आलोक में किया है। आत्मा की अमरता पर अखंड विश्वास के कारण ही वे मृत्यु को अत्यन्त सहज रूप में लेते हैं। उनकी कविता में मृत्यु अनिवार्य एक सहजता है। फलतः जीवन और मृत्यु उनके यहाँ एक ही सिक्के के दो पहलु हैं। वे जिस उमंग से जीवन का स्वागत करते हैं, उसी उत्साह से मृत्यु को आह्वान भी करते हैं-

"रस है हमेशा
हँस कर मिलने में
इसलिए हँसकर मिलो
मौत से
गलत है रोना मौत की घड़ी में।"[26]

बीमारियों के कारण शरीर की लाचारी को देख मृत्यु सुंदरी भवानी प्रसाद मिश्र के बहुत करीब आयी। किंतु उसे भी अंत में हार माननी पड़ी। ऐसी मृत्यु पर विजय पानेवाले भवानी प्रसाद मिश्र ने मृत्यु को कभी भयावह स्थिति में स्वीकार नहीं किया। क्योंकि मृत्यु बोध ने उन्हें बदलकर पुनः नया जीवनदान दिया है और वे मानते हैं कि शरीर भले ही नष्ट हो जाए लेकिन आत्मा अमर है यथा-

"घड़ी राख होने की आये बुरा इस में कुछ नहीं है
बुरा यह है कि मन राख होने से घबराये
मैं खुश हूँ कि वह नहीं हो रहा है।"[27]

भवानी प्रसाद मिश्र आस्था के कवि हैं। वे वस्तु स्थितियों को बदलने के लिए भविष्य के स्वर्णिम सपने सँजोते हैं किंतु उन में पलायन नहीं हैं, वे मौत का साक्षात्कार करते हुए भी कविता लिखने वाले व्यक्ति हैं। उनके शब्दों में-"याने मौत का भी एक मजा है।" इस लिए कवि राख होने से नहीं घबराता। वह पूरे उल्लास के साथ रथ-अश्वों से क्रमशः उदयाचल की ओर बढ़ता है। अतः भवानी प्रसाद मिश्र ने आत्मा के अमरत्व को स्वीकार करते हुए मृत्यु का आह्वान किया है-

---

[26] भवानी प्रसाद के आयाम-पृ.189
[27] अंधेरी कविताएँ-पृ.14

"मगर मुझे अपनी मौत का

भरोसा क्यों नहीं हो रहा है कितनी बार मैंने

देखा है बे-नकाब मृत्यु सुंदरी को

*　　*　　*　　*　　*

क्या जाने वह कब तक

मुझे मारे बिना इसी तरह अकेली मरेगी।"[28]

2.3 रचनाएँ :

भवानी प्रसाद मिश्र ने कविताएँ लिखना लगभग सन् 1930 से नियमित रूप से शुरू किया। इसी वर्ष की उनकी प्रसिद्ध पंक्तियाँ जो उनके व्यक्तित्व एवं परिप्रेक्ष्य को उजागर करती है। यथा-

"जिस तरह हम बोलते हैं, उस तरह तू लिख

और इसके बाद भी हमसे बड़ा तू दिख।"[29]

माखनलाल चतुर्वेदी ने अपनी "कर्मवीर" पत्रिका में मिश्र जी के प्रारंभिक कविताओं को प्रकाशित प्रोत्साहित करते रहे। इसके बाद प्रभाचंद्र शर्मा ने कलकत्ता से, श्री हेमचंद्र जोशी के साथ एक पत्र निकाला था, उस में तथा उनकी ही एक पत्रिका "कमल" में कुछ रचनाएँ प्रकाशित हुईं। अज्ञेय जी इन पत्रिकाओं में भवानी प्रसाद मिश्र की रचनाएँ पढ़कर आकर्षित हुए और "पहला सप्तक" में भवानी प्रसाद मिश्र की रचनाओं को स्थान देना चाहा। किंतु तब भवानी प्रसाद मिश्र भारत छोड़ो आंदोलन के सिलसिले में जेल में बंद थे इसलिए अज्ञेय जी को उनकी रचनाएँ प्राप्त नहीं हुईं। सन् 1945 में कारावास से मुक्ति पाने के बाद अमृत राय से परिचय हुआ और "हँस" में मिश्र जी की रचनाएँ प्रकाशित हुईं। सन् 1949 में हनुमान प्रसाद तिवारी के साथ मिलकर नागपुर से प्रकाशित "विचार" साप्ताहिक का संपादन किया। यह पत्रिका ढाई साल चली। इसके बाद अज्ञेय जी ने "दूसरा सप्तक" (सन् 1951) में मिश्र जी की रचनाएँ प्रकाशित की। इसके बाद भवानी प्रसाद मिश्र के काव्य रचनाओं के प्रकाशन का सिलसिला शुरू हुआ। तब से आज तक उनकी सत्रह रचनाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं। उन्होंने सन् 1967 में "आज के लोकप्रिय

---

[28] अंधेरी कविताएँ-पृ.81

[29] भवानी प्रसाद मिश्र: मन एक मैली कमीज है, सं.नंदकिशोर आचार्य-पृ.11

कविः बालकृष्ण शर्मा नवीन" पुस्तक का संपादन किया। तथा साहित्य अकादमी द्वारा प्रकाशित पुस्तक "रवींद्रनाथ की कविताएँ" में 32 कविताओं का अनुवाद। सन् 1977 में विनोबा जी की पुस्तक "पूजा गीतः एक चिंतन" में रवींद्रनाथ के 54 गीतों का अनुवाद और सोफोक्लीज के नाटक"एण्टीगनी" के काव्यानुवाद एवं बालकविताओं का प्रकाशन किया। सन् 1981 में भवानीप्रसाद मिश्र का संस्मरण पुस्तक "जिन्होंने मुझे रचा" प्रकाशित हुआ। सन् 1959 में विदेशी दो उपन्यासों का अनुवाद-हेलेन केल्लर का "मुक्त द्वार" (open door) और स्टेट बैंक का "रेड पोनी" का प्रकाशन। सन् 1980 में निबंध संग्रह "कुछ नीति कुछ राजनीति" का प्रकाशन। इसके अलावा भवानी प्रसाद मिश्र ने न्यू थियेटर्स कलकत्ता की फिल्म "स्वयंसिद्ध" की कथा वस्तु एवं संवाद और मद्रास के ए.बी.एम.फिल्म कंपनी को संवाद निर्देशन किया। वे सन् 1961 में गांधी शांति प्रतिष्ठान की पत्रिका "गॉधी मार्ग" का एवं सन् जुलाई 1952 से मई 1954 तक हैदराबाद की प्रसिद्ध पत्रिका "कल्पना" का संपादन किया। भवानी प्रसाद के क्रम के अनुसार प्रकाशित काव्य रचनाएँ निम्न प्रकार हैं-

1. गीत फरोश (1956 2. अंधेरी कविताएँ (1968), 3. चकित है दुःख (1968), 4. गांधी पंचशती (1969), 5. बुनी हुई रस्सी (1971) 6. खुशबू के शिलालेख (1973), 7. व्यक्तिगत (1974), 8. परिवर्तन जिए (1976), 9. इद न मम (1977), 10. कालजयी (1978) खंड काव्य, 11. त्रिकाल संध्यं (1978), 12. शरीर कविता फसले (1980), 13. अनाम तुम आते हो (1980), 14. मान सरोवर दिन (1980), 15. संप्रति (1982) 16. नीली रेखा (1984), 17. तूस की आग (1985)

भवानी प्रसाद मिश्र की ये सारी रचनाएँ जीवन की समसामयिक स्थितियों में कमाये हुए सत्य से साक्षात्कार कराती है। यही नहीं भवानी प्रसाद मिश्र की ये रचनाएँ युगबोध को सर्वथा भिन्न दृष्टि से परखती है। इन रचनाओं में विषय-वस्तु और रूप के सांगोपांग का कुशल ढंग से मिश्र जी ने निर्वाह किया है।

2.4 परिप्रेक्ष्य :

अनेक विवादास्पद स्थितियों, अनिश्चितताओं ओर संशयों के बावजूद कहा जा सकता है कि कविता किसी भी भाषा में लिखी जाए, किसी भी काल खंड की आर्थिक-राजनीतिक-सामाजिक दशा एवं प्रकृति से उत्पन्न हो, मानवीय सहजता का उसका आग्रह हमेशा एक जैसा रहता है।

लोक सामान्य भाव-भूमि पर कवि-प्रकृति, कुल मिलाकर अपने आचरण और प्रभाव में अमानुषिक शक्तियों एवं प्रवृत्तियों के विरुद्ध सक्रिय रहता है। जहाँ शोषण के प्रति, अराजकता के प्रति, अन्याय के प्रति तत्क्षण विद्रोह भाव व्यक्त नहीं होता, वहाँ भी कविता जिस मात्रा में और अनुपात में सक्रिय रहती है, उसी मात्रा और अनुपात में विद्रोह को गति देती है। कविता में बंधे-बंधाये नियम नहीं होते, भगवान या शैतान द्वारा बनाये गए दुनिया में एक अनवरत युद्ध चलाते जाते हैं और युद्ध में इन में से कभी एक की जीत होती है, कभी दूसरे की, लेकिन कविता स्वयं पराजित नहीं होती।

इस शताब्दि को सांसे गिनते देखकर एक विलक्षण अनुभूति होती है-यह कि पूरी शताब्दी एक ओर अभिन्न है-जहाँ से शुरू हुई वहीं आकर स्थगित। दिक् और काल के विशाल कैनवास पर इस शताब्दी की समूची कविता भी अपने आचरण और प्रभाव में एक ओर अभिन्न है। छायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नई कविता, अकविता, जनवादी कविता-ये विभाजन बड़े सतही है ओर अध्यापन के लिए ज्यादातर असुविधाएँ पैदा करते हैं। इस दृष्टि पर डॉ.रेवती रमण के विचार समीचीन जान पड़ते हैं। उनके अनुसार "स्पष्टतावाद की विचारधारा से परिचालित ये विभाजन श्रेष्ठ कविताओं के विवेचन विश्लेषण में बाधाएँ हैं। इन कठघरों के बिना भी अनुभूति संपन्न कविता पहचान में आ जाती है। संघटनों के भीतर ही नहीं, बाहर भी कविता है और आगे भी रहा करेगी और जैसा कि संगठन-विरोध प्रचलित करते रहते हैं-संगठन के भीतर कविता नहीं है, ऐसा नहीं है।"[30]

हम कह सकते हैं कि सोवियत संघ की स्थापा ने कविता की भारतीय अवधारणों एवं विषय-वस्तु, रूप को आधुनिक संवेदना से सजाया, संवारा। जीवन और रचना की यह नई अवधारणा एक नये मावनीय आदर्श पर आधारित, नयी मानवतावादी एवं त्याग दृष्टि से अनुशासित और नवीन रूपों से समृद्ध नवयुग की सर्वमान्य मूल्यनिष्ठ काव्यप्रेरणा बन गई। समकालीन नये-पुराने ज्यादातर कवि इस मूल्यनिष्ठ प्रेरणा के ही परिणाम फल हैं।

इस शताब्दी में अनेक घटनाएँ घटी, पर उनमें से ज्यादातर दुर्घटनाएँ थी। दो विश्व-युद्ध, भारत-विभाजन और समूह में थोडे-थोडे समय पर विस्थापन, साम्प्रदायिक दंगे, भारत पर चीन का आक्रमण, अपातकाल की घोषणा, गांधी की हत्या, इराक पर अमेरिकी पूंजीवाद का

---

[30] समकालीन कविता का परिप्रेक्ष्य-पृ.1

अन्य योरोपीय समर्थकों के सहयोग से हमला, वियतनाम, दक्षिण आफ्रिका, तिब्बत की जनता का स्वतंत्र्य समय और अभी-अभी शीत-युद्ध की समाप्ति। इस समूचे दौर में अमेरिका पूंजीवाद, साम्राज्यवाद महाशक्ति के रूप में उभरकर आया है। विश्वव्यापी सम्प्रदाय और संकीर्ण धार्मीक कट्टरता के नये उभार से हमारे समय के कवियों का मन सदा आहात और उद्विग्न रहा है। कुछ कवि इन घटनाओं दुर्घटनाओं से अप्रभावित रहकर अकविता में अपना ही जीवन लिखते रहे और वे जनान्दोलनों का पीछा करने वाली श्रेष्ठ राजनीतिक कविताओं के समान ही स्तरीय कलात्मक रहे। अभिप्राय यह है कि कविता में दर्शन आए, राजनीति आए अथवा खबर आए, कवि की संवेदना एवं विषय-वस्तु से अभिन्न होकर ही वह सार्थक है। कविता के माध्यम से कवि आत्म-प्रकाश करे यह लोकहित-साधन वह यथार्थ से जोडे बिना कविता साकार नहीं होती।

कविता छोटी-बड़ी, ज्यादातर कवियों के यहां तो है ही, अलबत्ता कहीं इक्के-दुक्के कहीं व्यापक संख्या में। यह अन्तर गुणात्मक भी हो सकता है पर कई बार ख्यातिलब्ध कवियों के यहां भी अनुपस्थित रहा करती है, यह स्वीकार करने का साहस पूरी तरह नैतिक है। पक्षधरता की आरोपित मुद्राएं निरर्थक और आमतौर पर अपहास्पद होती है और मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि कविता जहाँ विषय-वस्तु के आधार पर मुक्कमल है, वहाँ प्रासंगिकता का ढ़िढोरा पीटने की जरूरत नहीं है। भवानी प्रसाद मिश्र का वैचारिक परिप्रेक्ष्य मूलतः सापेक्ष रहा है। यथा इन्हीं के शब्दों में-

"युद्ध से कोई समस्या हल न होगी
आज तक होने न पाई
कल न होगी।"[31]

आधुनिक कविता के सृजनात्मक संसार को किसी एक विशेष विचारधारा के प्रतिफलन की अवधारणा में न्यस्त नहीं किया जा सकता, वैसे भी कुरूपता एवं असौदर्य के अभाव में सौंदर्य की स्थापना सम्भव नहीं है। यह तथ्य वस्तुपरक है कि समकालीन कविता के विस्तृत परिप्रेक्ष्य में प्रगतिवादी-जनवादी सृजन के परम्परा विरोध में न केवल प्रयोगवादी अकवितावादी काव्य सृजन की स्थापना हुई है बल्कि उनकी कलाअतियों व कलासिद्धांतों की स्थापना विश्वशीत-युद्ध के संदर्भ में, विवेचित भी हुई है। मुक्तिबोध की स्पष्ट धारणा -"नयी कविता के क्षेत्र में प्रगतिवाद पर जोरदार हमले किए गए और कुछ सिद्धांतों की एक रूपरेखा प्रस्तुत की गयी। ये सिद्धांत

और उनके हमले, वस्तुतः उस शीतयुद्ध के अंग थे जिसकी प्रेरणा लंदन और वाशिंगटन से ली गयी थी।"[32] समकालीन कविता के पूर्व पक्ष नयी कविता में ही नहीं, सातवें दशक में कविता के अस्तित्ववाद, निषेध-भाव, मनोमय जगत के फ्रायडीयन आन्दोलन भी उस शीत युद्ध की उपज रहे हैं।

2.4.1. युगीन परिप्रेक्ष्यः

भवानी प्रसाद मिश्र को अपने युगीन परिप्रेक्ष्य ने अत्यंत संवेदनशील बनाया है। उन्हें उन लोगों का सहयोग प्राप्त होता रहा जो लोग बड़े ही सहज-सरल भाषा का प्रयोग करते थे। दूसरी ओर अपने पिता पं.सीताराम मिश्र से बहुत कुछ सीखने को मिला जो वे स्वयं संस्कृत और अंग्रेजी के विद्वान थे। मिश्रजी ने स्वयं कहा है - "भाषा के प्रथम संस्कार उनसे ही मिले।"[33] क्योंकि पं.सिताराम मिश्र को भी कविता पढ़ने का चाव था। वे नागरी-प्रचारिणी सभा से प्रकाशित कवियों की रचनाएँ मंगवाते थे। भवानी प्रसाद मिश्र पर सबसे पहले काव्य ग्रंथों में - जयद्रथ वध, भारत-भारती, रायदेवी प्रसाद पूर्ण का संपूर्ण संग्रह और लाला भगवान दीन का "वीर पंचरत्न" का प्रभाव प्रमुख हैं। इन कवियों का उनके मन पर गहरा प्रभाव पड़ा और भी कवि थे, जैसे प्रसाद, निराला, महादेवी वर्मा, पन्त आदि। इन लोगों की भाषा उनके पकड में नहीं आती थी। इस से हटकर मैथली शरण गुप्त की भाषा इन्हें पसंद थी। लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि इन्होंने मैथलीशरण का अनुकरण करने की कोशिश की हो। अनुकरण के बारे में वे कहते हैं - "मैं कहना चाहता हूँ भाषा में मुझे किसी का अनुकरण करना ही पड़ता तो, मैथलीशरण का ही अनुकरण करता।" लेकिन अनुकरण का सवाल नहीं था। क्योंकि "कारण" मुझे प्रिय था। मैं स्वयं कुछ करना चाहूँ तो अनुकरण का सवाल कैसे उठता। अनुकरण का सवाल होता तो, मैं मैथली शरण के पास जाता। मेरा खयाल है, मेरी भाषा मैथली शरण के ज्यादा पास की भाषा है।"[34] भवानी प्रसाद मिश्र ने उर्दू कवियों को भी पढ़ा था। इस बात का श्रेय वे पंडित ईश्वरी प्रसाद शर्मा को देते हैं, जिन्होंने अपने सम्पादकत्व में निकलने वाले "हिन्दुपंच"(कलकत्ता) में प्रसिद्ध उर्दू कवियों में जिन में प्रसिद्ध कवि

---

[31] भवानी प्रसाद मिश्र के आयाम-पृ.183 पर उद्धृत
[32] नयी कविता का आत्म संघर्ष तथा अन्य निबंध, पृ.37
[33] व्यक्तित्व और कृतित्व, पृ.24 पर उद्धृत

गालिब, दाग, मीर, जोक, मीर अनीस, और सौदा आदि पढ़ने को मिलें। इनके बावजूद हिन्दी कवियों में कबीर, तुलसीदास के संस्कृत श्लोक तथा कालीदास को पढ़ा। मराठी में ज्ञानेश्वरी और तुकाराम के अभंग बड़ी ही एकाग्रता से पढ़े। अंग्रेजी के कवियों को भी पढ़ा जिन में वर्डस्वर्थ ने कहा था-"हम जैसे बोलते हैं वैसी ही भाषा का उपयोग करें।"[35] ठीक उसी तरह भाषा की सहजता में भवानी प्रसाद मिश्र ने माखन लाल चतुर्वेदी की इस बात को काफी हद तक स्वीकारा है -"तुम्हारा आसान लिखना छूट न जाये इसकी सावधानी रखना। किंतु यह भी ध्यान में रखना है, कि आसान लिखना ध्येय नहीं है। ध्येय लिखना है, मन की बात, भीतर की बात, भीतर से भीतर की बात और वह इस तरह की न वह सूत्र हो न भाष्य। जो मन में समा सके उसे वाणी तक लाओ। किंतु जुबांदराजी मत करो। कलम को जीभ मत बना देना। लिखने और बोलने का अन्तर सँभालकर लिखना। "[36]

भवानी प्रसाद मिश्र की काव्य प्रतिभा सन् 1930 में ही होरंगाबाद हाइस्कूल में पढ़ते समय असहयोग आन्दोलन के काल में अंकुरीत हुई। नरसिंहदास अग्रवाल के प्रसिद्ध गीत "रणभेरी बज चुकी" चारों ओर गूंज रही थी यथा-

वीरवर पहनो केसरिया बाना

x x x

माता के सच्चे पूतों को आज कसौटी होना है,
देखे कौन निकलता पीतल कौन निकलता सोना है।

- के उत्तर में भवानी प्रसाद मिश्र ने लिखा था -

मैं माता का पूत, कसोटी का कोई पत्थर ले जाए,
मुझ में ऐसी रेखा खिंचेगी, जिससे सोना भी शरमाएँ।

भवानी प्रसाद मिश्र का काव्य विभिन्न वादों से गुजरते हुए भी "वादी" नहीं रहा। इन पर बालकृष्ण शर्मा "नवीन" जी का भी गहरा प्रभाव पड़ा है। स्वयं भवानी प्रसाद ने लिखा- "नवीन जी की राष्ट्रीयता एवं प्रगतिशीलता उत्तरोत्तर परिस्कृत होती हुई अन्त

---

[34] व्यक्तित्व और कृतित्व, पृ.114
[35] व्यक्तित्व और कृतित्व, पृ. 25 पर उद्धृत
[36] जिन्होंने मुझे रचा, पृ.39

में विश्व-मानवता में परिणता हो जाती है। यों समय-समय पर वे विभिन्न वादों से प्रभावित भी रहें हैं, लेकिन वे किसी वाद विशेष में बँधकर नहीं रहें।"[37] इन बड़े-बड़े कवियों का तथा उनकी भाषा का उनके मन पर गहरा प्रभाव पड़ा।

"जिन्होंने मुझे रचा" यह संस्मरण(गद्य) लिखने का उन्होंने प्रथम प्रयास किया था। इस में मिश्रजी ने "नवीन" एवं चतुर्वेदी तथा "पुन्नालाल बख्शी" इन तीन व्यक्तियों को हमारे समक्ष रखते हुए, अपने दायित्व को निभाया है। भवानी प्रसाद मिश्र को साहित्य जगत में आज जो मंजिल प्राप्त हुई है, वह इन कवियों की अंगुली पकड़कर ही। उन्होंने लिखा है-"मेरे नैपथ्य की इसी आवाज ने मुझे इधर-उधर होता देखा है, मुझे चौकाकर सावधान किया है। मैं इनके लिए बख्शीजी के प्रति कृतज्ञ हूँ और अपने को प्रकारान्त से ही सही उनकी रचना मानता हूँ।"[38] अतः इन कवियों का सानिध्य उन्हें बराबर प्राप्त होता रहा। इसलिए इन संस्मरणों को लिखकर उन्होंने अपने भीतर को अधिक प्रज्ज्वलित किया है।

अंत में भवानी प्रसाद के परिवारिक परिप्रेक्ष्य एवं पारिवारिक सम्बन्धों और काव्यगत चेतनाएँ की चर्चा की जा चुकी है। प्रत्येक संबंध मिश्र जी के व्यक्तित्व को उद्विग्न किये रहा। जब व्यक्तित्व, और काव्य वस्तु के संदर्भ में बात करें तो सर्वप्रथम यही तथ्य ध्यान में आता है कि कविता कवि के व्यक्तित्व को ही व्यक्त करती है। व्यक्तित्व भी एक प्रक्रिया है और कविता भी एक प्रक्रिया है। कविता कवि व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति ही होती है।

2.4.2. राष्ट्रीय आन्दोलनः

भवानी प्रसाद मिश्र विद्यार्थी जीवन में ही राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेने लगे थे। इसी के चलते, होशंगाबाद के हेडमास्टर साहब कुछ क्रोधित भी हुए थे। इस प्रसंग को कवि ने कहा है-"होशंगाबाद से नरसिंहपुर जाना पड़ा, क्योंकि होशंगाबाद के हेडमास्टर साहब ने मेरे पिताजी को जिन्होंने नरसिंहपुर में थे, लिखा कि आप भवानी प्रसाद को अपने पास रखिए। यह आन्दोलन में दिलचस्पी लेता है, जो ठीक नहीं है।"[39] यहाँ

---

[37] जिन्होंने मुझे रचा, पृ. 25
[38] भवानी प्रसाद मिश्रः जिन्होंने मुझे रचा, पृ. 83
[39] भवानी प्रसाद मिश्रः विजय बहादूर सिंह, पृ.9

स्वयंमेव ही स्पष्ट है कि भवानी प्रसाद मिश्र में आरंभकाल से ही राष्ट्रीय भावना के बीज प्रस्फुटित होने लगे थे। अपने जीवनकाल तक अनेक स्थितियाँ कवि को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करती रही। इन परिस्थितियों की छाप उनके व्यक्तित्व पर गहरी पड़ी है। जिनमें से राजनीतिक गतिविधियों का लेखा-जोखा भी भवानी प्रसाद मिश्र ने, सिर्फ अपने तक सीमित रखा बेशर्त समय-समय पर जन समाज को इन परिस्थितियों के विषय-वस्तु से जनता को सचेत करते रहे। यथा-

कौओं की ऐसी बन आयी पांचों घी में
बड़े-बड़े मनसूबे आये उनके जी में
उडने तक के नियम बदलकर ऐसे डाले,
उडने वाले सिर्फ रह गये बैठे ठले,

x x x

"आगे क्या कुछ हुआ सुनना बहुत कठिन है
यह दिन कवि का नहीं चार कौओं का दिन हैं।"[40]

कांग्रेस शासन के दौर में सन् 1975 में इंदिरागांधी प्रशासन में अपातकाल लागु हुआ था। जनता का स्वाभाविक आक्रोश पलटा लेकिन जनता-शासन भी दीर्घजीवी न हो सकी। कारण हमारे नेताओं के अहम व स्वार्थ का टकराव ही सर्वोपरि था, देश निर्माण की भंवना उन में न थी। वर्तमान दौर में कांग्रेस-प्रशासन में इंदिरा व संजय की - "जी हुजूरी" ही सर्वोपरि देशभक्ति मानी जा रही थी। इसका परिणाम यह हुआ कि प्रजातंत्र में राजनैतिक-अस्थिरता, दुर्व्यवस्था, एवं भांडवलशादी आदि बारंबार बढ़ते गये।

इस आन्दोलन के विषय वस्तु से संबंधित एक अहम घटना यह है कि सन् 1960 में भवानी प्रसाद मिश्र "संपूर्ण-गांधी वाङ्गमय" के प्रकाशन से जुडे थे और हिन्दी विभाग के अध्यक्ष थे। उन दिनों डॉ. राममनोहर लोहिया समर्थक कुछ नवयुवकों द्वारा हिन्दी समर्थन और अंग्रेजी हटाओ को लेकर एक जुलूस निकाला गया था। उस जुलूस पर पुलिस ने निर्ममतापूर्वक लाठी चार्ज किया था। इस संदर्भ पर पुरूषोत्तम दीक्षित ने लिखा है - "कवि हृदय सहज ही आंदोलित हुआ और भवानी भय्या ने एक छोटी सी कविता

---

[40] भवानी प्रसाद मिश्रः त्रिकाल संध्या, पृ. 9

लिख दी" तुम इंदिरा हो, गांधी नहीं हो।" स्वभावतः विपक्ष दलों ने उस कविता का लाभ उठाया। तत्काल प्रधान मंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने सहज ही एक फोन "संपूर्ण गांधी वाङ्गमय" के अंग्रेजी विभागाध्यक्ष डॉ.स्वामीनाथन(जहाँ तक मुझे स्मरण है, यही नाम था) को किया कि-"मिश्र जी से कहिए, क्या करते हैं।" दोपहर की चाय पर स्वामीनाथन ने भवानी प्रसाद मिश्र से पूछा - मिश्र जी, आपने अभी कोई कविता लिखी हैं, इस संदर्भ की? मिश्रजी ने पूछा - क्यों क्या बात है? इस पर स्वामीनाथन ने पूरी बात बताई। मिश्र जी ने चाय का कप वहीं रख दिया और कागज-कलम लेकर तुरन्त अपना त्याग पत्र लिख दिया।"[41] इस से विदित होता है कि भवानी प्रसाद मिश्र राष्ट्रहित चाहते थे, अन्याय को केवल काव्य वस्तु नहीं बनाते बल्कि उस में भाग भी लेते हैं।

आपातकाल में शासन ने एक वर्ष तक उनके दिल्ली से बाहर जाने पर पाबंदी लगा दी थी। यद्यपि उन्हें गिरफ्तार नहीं किया गया था। भवानी प्रसाद मिश्र ने इस बीच नियमित रूप से प्रतिदिन आपात्काल के विषय पर, उसके विरोध में कविताएँ लिखी जो "त्रिकाल संध्या" के रूप में सन् 1975 में पुस्तकाकार प्रकाशित हुई। प्रभुदयाल अग्निहोत्री ने "त्रिकाल संध्या" के विषय वस्तु के संदर्भ में लिखा है कि-"मिश्रजी की इन रचनाओं में भयंकर मंडप है जयप्रकाश के लिए, दम तोडते लोकतन्त्र के लिए।"[42] भवानी प्रसाद मिश्र तत्कालीन राष्ट्रीय गतिविधियों को इस प्रकार कहा है -

> गांधी आये थे तो एक उजाला लाये थे,
> शताब्दियों बाद हमने दस-पांच दिन
> खुशियों में बिताये थे। फिर वो आ गये
> फिर वे आ गई।............
> अब सूरज तो ठीक, दीपक भी मना है,
> क्या यह देश इसी के लिए बना है।"[43]

"भारत-छोडो" आन्दोलन में सुरक्षा बंदी नागपुर केंद्रीय कारावास में सन् 1942 से 1945 के बीच उन्हें दो साल आठ महीने आठ दिन कारावास भुगतना पड़ा। प्रचंड

---

[41] भवानी प्रसाद के आयामः पृ.126
[42] भवानी प्रसाद के आयाम, पृ. 113
[43] भवानी प्रसाद के आयाम, पृ. 113

साहस, आत्मविश्वास के साथ कठिन से कठिन स्थितियों को नजर अंदाज कर, बिना किसी भय के मिश्रजी आगे बढ़ते गये हैं।

2.5 वैचारिक परिप्रेक्ष्य

भवानी प्रसाद मिश्र उन थोडे से कवियों में हैं, जिन्होंने न तो व्यक्तिवाद के झोंक में अपने अस्तित्व की चिंता एवं अभिव्यक्ति में ही अपनी सारी रचनात्मक उर्जा खर्च कर डाली और न ही साठोत्तरी, प्रगतिवादी, छायावादी, इतिवृत्तात्मक दौर की आस्था, कुंठा, निराशा, सूक्ष्मता, छाया, इतिहास-विरोध आदि दर्शन में डूबे-उतरते रहे। अपने समय और समाज के प्रति जैसी जागरूकता इनमें दिखती है, वैसी इन कालखंड के बहुत कम कवियों में देखने को मिलती है। उनकी कविताएँ वैयक्तिकता के अवरण में भी सामाजिकता से ओत-प्रोत हैं। सहज शैली, बोलचाल की भाषा एवं सामाजिक समस्याओं से उद्वेलित काव्यानुभूति उनकी सामाजिक चेतना के स्पष्ट प्रमाण है। सामान्यतः कोई कवि इतिहासकार नहीं होता, पर उनकी काव्यानुभूति में इतिहास की धडकने भी सुनाई देती है। भवानी प्रसाद मिश्र का वैचारिक परिप्रेक्ष्य ऐसा है जिसका काव्यात्म सरोकार का क्षेत्र बहुत व्यापक है। उनके सामने देश का जातीय इतिहास तो था ही, देश की सामाजिक-राजनीतिक समस्याओं के प्रति भी लगातार जागरूक होकर बिना पक्षपात के वैचारिक धरातल पर उन्होंने रचना की। न तो वे छायावाद-प्रयोगवाद के वस्तु-रूप से जुड़े रहे, न ही साठोत्तर से। उनका वैचारिक परिप्रेक्ष्य मूलतः सापेक्ष रहा है। यथा-

"युद्ध से कोई समस्या हल न होगी
आज तक होने न पाई
कल न होगी।"[44]

यदि हम वैचारिक परिप्रेक्ष्य से देखें तो छायावाद के पूर्ण उत्कर्ष काल में भवानी प्रसाद मिश्र का प्रवेश हुआ। उन्हीं के शब्दों में - लगभग सभी कुछ बँधे-बधाए ढ़ंग से बँधी-बँधाई बातें कहते रहते थे। उन दिनों उसे छायावाद कहा जाता था। लेकिन मैंने वह सब कुछ नहीं लिखा और

---

[44] भवानी प्रसाद के आयाम, पृ. 183

उस ढंग से नहीं लिखा।"[45] यह अलगाव उन्हें प्रगतिवाद से भी न जोड सका। उन में प्रगतिशीलता है किंतु उनका सामाजिक यथार्थवादी मार्क्सवाद से संबंध नहीं है। समाज के वैषम्य, शोषण, दैत्य, अनाचार, नारेबाजी आदि से वे क्षुब्ध हैं और उससे मानव की मुक्ति के आकांक्षी हैं किंतु उसके पीछे कोई आयातित विचार धारा नहीं है।

भवानी प्रसाद मिश्र का वैचारिक परिप्रेक्ष्य भारतीय जीवन की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों की उपज है जिसके पीछे मानवीय दृष्टि है। भवानी प्रसाद मिश्र प्रयोगवाद से जुड़े रहने के संदर्भ में डॉ.संतोषकुमार तिवारी का विचार उपयुक्त ही नहीं एकदम सत्य है। यथा-"रही प्रयोगवाद की बात, सो यह स्पष्ट है कि जब उन्होंने सप्तक के लिए रचनाएँ भेजीं तब उन्हें यह जानकारी नहीं थी कि वे प्रयोगवाद के दायरे में जा रहे हैं।"[46] इस तरह वे सप्तक के कारण प्रयोगवाद से जुड़े रहकर भी मूलतः उसके बाहर रहे हैं।

भवानी प्रसाद मिश्र का वैचारिक परिप्रेक्ष्य स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कविता के उन महत्वपूर्ण कवियों से जुड़ा है, जो न किसी काव्यांदोलन में सक्रिय हुए और न किसी विचारधारा विशेष के प्रति प्रतिबद्ध ही हुए। उनके काव्य में एक विचित्र-सी सरलता और निष्कपटता है। वे सहज जीवनानुभव के ऐसे समर्थ कवि हैं, जो देखने में जितने ही साधारण लगते हैं उतने ही असाधारण हैं। प्रयोगवादी माने जानेवाले कवियों में भवानी प्रसाद मिश्र एक मात्र ऐसे कवि हैं, जो बौद्धिक समाज में भी उसी प्रकार समादृत हैं, जिस प्रकार लोक के बीच। उनका काव्य अपनी जिजीविषा, सामाजिकता, उदात्तता एवं युगबोध के विषय-वस्तु के कारण जहाँ नेताओं, शिक्षकों, समाज सुधारकों एवं अन्य मानवता प्रेमियों के बीच चर्चा का विषय बने हैं, वहीं अपने प्रखर अनुभूति, बेलाग इमानदारी, अभिव्यक्ति की सहजता एवं दैनंदिन समस्याओं की अभिव्यक्ति के कारण राह चलते आदमी का भी मन बांधने में असाधारण रूप में सफल हुए हैं। इस का यही कारण है कि मिश्र जी किसी वाद के कवि नहीं हैं वे जीवन के कवि हैं। जैसे-

"घटनाएँ
हम तक आयें
इस से अच्छा है
कि हम घटनाओं तक

---

[45] भवानी प्रसाद मिश्रः बुनी हुई रस्सी(अपनी ओर से), पृ.6
[46] भवानी प्रसाद मिश्र की काव्य यात्रा-पृ.143

जायें।"[47]

2.5.1 गांधी दर्शन :

गौतम बुद्ध की अहिंसा परंपरा में गांधी अतुलनीय हैं क्योंकि ऋषियों जैसा गहन चिंतन, संतों जैसी कोमलता, अवतारों जैसी कर्मठता, भक्तों जैसी सरलता अन्यत्र कहाँ! सिद्धार्थ की श्रृंखला में आबद्ध अभिनव, बिहार की विभीषिका में बुद्ध जैसा साधक करुणा के अतिरेक से विचलित हो गांधी अभय मुद्रा में घूमते रहे। उन्होंने उस प्रबल झंझा में दीप की तरह आशाप्रद प्रेरणाएँ और आस्थामय आलोक प्रदान किया और श्रम शक्ति की महिमा बताई।

समकालीन संदर्भ में गांधी जी के सिद्धांतों का महत्व है। इसी के चलते अनेक कवि तथा लेखकों ने गांधी जी के विचारों को साहित्य के माध्यम से संप्रेषित करने का प्रयास किया है। दुर्भाग्य ही कहें, कई विचारकों ने गांधी जी के विचारों को "वाद" या सिद्धांत में डाल कर वादग्रस्त बना दिया है। जो कि गांधी स्वयं "वाद" के खिलाफ थे। गांधी जी के ही शब्दों में-"गांधीवाद नाम की कोई वस्तु है ही नहीं और न मैंने कोई नये तत्व या सिद्धांत का आविष्कार किया है। न मैं अपने पीछे कोई सम्प्रदाय छोड़ जाना चाहता हूँ। मेरा यह दावा भी नहीं है कि मैंने कोई नये तत्व या सिद्धांत का आविष्कार किया है। मैंने तो केवल जो शाश्वत सत्य है, उसको अपने नित्य के जीवन और प्रश्नों पर अपने ढंग से उतारने का प्रयास मात्र किया है। मुझे दुनिया को कोई नयी चीज नहीं सिखानी है। सत्य और अहिंसा अनादिकाल से चले आ रहे हैं। उस पर मैंने जो कुछ कहा है उस में मेरा सारा तत्वज्ञान यदि मेरे विचारों को इतना बड़ा नाम दिया जा सकता है, समा जाता है। आप इसे "गाँधीवाद" न कहिए इस में वाद नाम की कोई वस्तु नहीं है।"[48]

हालांकि कुछ विचारक गाँधी-तत्वों को वाद के रूप में ग्रहण करना नहीं चाहते। जैनेन्द्रजी के अनुसार- "मेरे लेखे गांधीवाद शब्द अयथार्थ है - जहाँ वाद है, वहाँ विवाद अवश्य है। वाद का लक्षण है कि वह प्रतिवाद को विवाद द्वारा खण्डित करें और इस तरह अपने को प्रचलित करें। गांधी के जीवन में विवाद एक दम नहीं है। इसलिए गांधी को वाद

[47] परिवर्तन जिये-पृ.
[48] गाँधी: हरिजन बन्धु, मार्च 1936, पृ.26

द्वारा ग्रहण करना सफल नहीं होगा।"[49] उपरोक्त कथनों के अनुरूप गांधी स्वयं किसी वाद विशेष को स्वीकार नहीं करते थे। किंतु गांधीजी के जीवन दर्शन के कुछ अनुयायी इसे पूरे दावे के साथ "वाद" रूप में मानने लगे हैं। यद्यपि गांधीजी ने स्वयं गांधीवाद की कोई निश्चित रूपरेखा तथा व्याख्या नहीं की है, फिर भी यह है कि उनकी दृष्टि के मूल में कोई निश्चित विचार धारा अवश्य है। उनका अपना दृष्टिकोण तथा उनके विचारों का आधार है।

आज का युग भौतिक युग है। गांधी के सभी तत्व आज शेष नहीं है। फिर भी यह दावा है कि गांधी तत्व साहित्य में आज भी विद्यमान हैं। जैनेन्द्रजी के अनुसार-"गांधीवाद के परीक्षण का यह बाल कितने दिन चलेगा, यह कहना कठिन है। परीक्षा तीखी होगी। पर गांधी का नाम जिन तत्वों का बोध है, वे तत्व हारेंगे भी नहीं। कसौटी पर वे खरे उतरेंगे और ज्यों-ज्यों कदम बढ़ेगा त्यों-त्यों गांधीवाद की लपटें फैलेगी। मेरी अपनी धारणा है कि वह विश्व के इतिहास में एक नया युगारम्भ होगा एक अध्यात्मिक, दूसरा भौतिक। गांधी-वाद इस समय "वाद" नहीं रहेगा, वह धर्म हो जायेगा।"[50] गांधी दर्शन का विषय-वस्तु समाज और संस्कृति को अधिक प्रभावित किए हुए हैं। आज के विविध वादों के संघर्ष में गांधीवाद के महत्व को गौण करने की चेष्टा की जा रही है, फिर भी उसका साहित्यिक क्षेत्र में महत्व बना रहेगा।

"सप्तक" की बनावट का एक अवश्यक अंग होने के नाते अपने "वक्तव्य" में भवानी प्रसाद मिश्र ने लिखा है-"दर्शन में अद्वैत, वाद में गांधी का और टेकनीक में सहज लक्ष्य ही मेरे बन जायें-ऐसी कोशिश है।"[51] इस में सन्देह नहीं कि कवि की रचनाएँ उसके वक्तव्य के अनुरूप हैं। "दूसरा सप्तक" की- "स्नेह शपथ" रचना में गांधी के मानवतावादी आदर्शों की स्पष्ट छाप अंकित है। दोस्त हो या दुश्मन, परिचित हो या अपरिचित, स्नेह की गहराइयाँ सारी दीवारों और पर्तों को पार कर जाती है। युग कितना भी उत्पीडक और अनाचारी क्यों न हों, प्यास की सत्ता कभी नष्ट नहीं होती। पतित वह है

---

[49] जैनेन्द्र कुमारः अकाल पुरुष गांधी, पृ.61
[50] जैनेन्द्र कुमारः अकाल पुरुष गांधी, पृ. 212
[51] दूसरा सप्तक - वक्तव्य, पृ.5

जो सहज मानवीय स्नेह से दूसरों को न उठा सके। कवि प्रेम पुजारी गांधी के संदर्भ में कहता है-

"है शपथ तुम्हें करुणाकर की
है शपथ तुम्हें उस नंगे की
जो स्नेह की भीख मांग-मांग
मर गया कि उस भिखमंगे की।"[52]

विशेष रूप से गांधीजी के आध्यात्मिक, धार्मिक, नैतिक आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक, आदि में राजनैतिक विचारधारा का भवानी प्रसाद मिश्र पर काफी प्रभाव पड़ा। गांधीजी सत्य, अहिंसा, शांति से काम करने वाले महान व्यक्ति थे। त्याग और बलिदान की प्रतिमूर्ति महात्मा गांधी के विचारों का विश्लेषण और परीक्षण करके भवानी प्रसाद मिश्र ने अपनी कविताओं में गांधी जीवन-दर्शन को एक नये ढंग से अभिव्यक्त किया है। डॉ.संतोष कुमार तिवारी ने ठीक ही कहा है कि-"चाहे बात सह अस्तित्व की हो अथवा साधन और साध्य के पवित्रता की, समूचा गांधी दर्शन भवानी प्रसाद मिश्र जी के जीवन में धुल गया है और व्यक्तित्व से एकाकार होकर कृतित्व में प्रतिफलित हुआ है। अतः कवि के विचार अनुभूतिजन्य सहज और बोधगम्य है। उन में दार्शनिक आवरण या वैचारिक उहापोह नहीं, अतः वह संवेद्य है।"[53] उपरोक्त कथनानुसार भवानी प्रसाद मिश्र गांधी विचार-धारा के कवि हैं। गांधी चिन्तन और दर्शन का जैसा सम्पृक्तिकरण कवि भवानीजी की अनुभूतियों में दिखाई देता है, अन्यत्र नहीं। गांधी तत्व का केन्द्र बिंदु अद्वैतदर्शन ही है। इस पर कवि ने अधिक जोर दिया है। क्योंकि यह दर्शन आपस में भेद-भाव नहीं रखता। सभी को समान देखने की प्रवृत्ति इस में विद्यमान है। इस संदर्भ में भवानी प्रसाद का वक्तव्य कितना उचित है - "मन में यह बात दृढ़ रहनी चाहिए कि हम तो हैं, दूसरों के लिए, सब परस्पर का एक दूसरे के लिए हैं, जब तक ये बात मन में नहीं जमती हैं, तब तक यह लगता है हमारे "गांधीवादी" कहलाने का कोई मतलब नहीं।"[54] जहाँ तक बने कवि प्रेम, मानवता की बात करता है, जन-जन के सुख दुःखों को जानना

[52] दूसरा सप्तक - वक्तव्य, पृ.22
[53] भवानी प्रसाद मिश्र की काव्य यात्रा, पृ. 76
[54] व्यक्तित्व और कृतित्व, पृ. 216

अपनाना चाहता है। वे चाहते हैं कि सच्चाई के लिए संघर्ष हों और शांति से ही अपने अधिकारों को प्राप्त करें।

भवानी प्रसाद मिश्र की सभी रचनाएँ केवल गांधीवाद से सम्बन्धित नहीं है। कई संग्रहों में तो गांधी-तत्व अस्पष्ट-सा दिखाई देता है। दिनकर ने कहा है -"ऐसी कविताएँ काफी हैं जिनका सम्पर्क गांधीजी अथवा उनकी विचार धारा से सीधे जोड़ा जा सकता है। लेकिन ऐसी कविताएँ भी कम नहीं हैं, जो गांधी विचारधारा की लपेट में नहीं आतीं, जिनके बारे में केवल यही कहा जा सकता है कि उनके भीतर जीवन की विभिन्न स्थितियों पर एक गांधीवादी कवि की प्रतिक्रिया व्यक्त हुई हैं।"[55] भवानी प्रसाद मिश्र ने गांधी के कार्य तथा साधना के महत्व को प्रत्यक्ष देखा है। यह तत्व कवि के मन में भीतर रिसते गये। गांधी देश के हित के लिए संघर्ष और सत्याग्रह करने के लिए, पीछे नहीं हटते थे। इसे भवानी प्रसाद मिश्र ने अपनी सूक्ष्म दृष्टि से अभिव्यक्त किया है। अतः इनकी कविता में केवल रूखा उपदेश नहीं है। डॉ. युगेश्वर ने ठीक ही कहा है -"उन्होंने साहित्य में गांधीवाद को स्थापित किया है, उगाया है। औरों ने गांधीवाद को चिपका दिया है। अनुकरण और अनुकरण करनेवालों की कमी नहीं। कुछ नया उपजाने वाले बिरले होते हैं। मिश्रजी बिरले हैं।"[56]

2.5.2 प्रयोगवादी काव्य दर्शन

भवानी प्रसाद मिश्र का वैचारिक परिप्रेक्ष्य प्रयोगवाद से अछूता नहीं है। यद्यपि "दूसरा सप्तक" में सम्मिलित होने वाले महत्वपूर्ण कवि हैं, पर अन्य प्रयोगवादी कवियों की भांति उनके काव्य में प्रयोगवादी प्रवृत्तियाँ उतने सघन रूप में आग्रहपूर्वक उपस्थित नहीं हैं। कुंठा, संत्रास, लघु मानववाद, यौन भावनाओं का निर्व्याज चित्रण जैसी प्रयोगवादी प्रवृत्तियां भवानी प्रसाद मिश्र के काव्य में लगभग अनुपस्थित हैं। इनके अतिरिक्त, अन्य प्रयोगवादियों की भांति उन्होंने न विशिष्ट शौल्पिक प्रयोग किए हैं न ही वक्तव्य दिये हैं। निस्संदेह उनकी कविताओं का विषय-वस्तु में निराशा, मृत्युबोध, अकेलापन, मोहभंग, और पूंजीवादी व्यवस्था का ईमानदार विरोध जैसे प्रवृत्तियाँ हैं। अतः यह कहना अनुपयुक्त न होगा कि प्रयोगवाद का किसी न किसी रूप में उन्होंने

[55] भवानी प्रसाद मिश्र सं. प्रेम रघुवंशी, पृ.211
[56] डॉ. खगेश्वर, भवानी प्रसाद मिश्र, सं. प्रेमशंकर रघुवंशी, पृ.122

प्रभाव अवश्य ग्रहण किया और छायावाद भावभूमि से सर्वथा पृथक भावभूमि की तलाश की। दूसरे शब्दों में कहें तो वे प्रयोगवाद और नयी कविता के अधिक समीप हैं। "दूसरा सप्तक" में उनका यह कथन अत्यन्त महत्वपूर्ण है -"निराला, प्रसाद और पंत फैशन में थे। मेरी कमबख्ती (जिसे कहने में भी डर लगता है) ये तीनों ही कवि मुझे लकीरों में अच्छे लगते थे। किसी एक की कविता बहुत नहीं भा पाई।"[57]

प्रयोगवादी कवियों ने जिस "अभिव्यक्ति की इमानदारी का ढ़ोल जोर-जोर से पीटा, वह ईमानदारी अपेक्षाकृत शांत और संयत रहने वाले भवानी प्रसाद मिश्र की कविता में सबसे अधिक है। वे मूलतः अनुभवों और संवेदनाओं के कवि हैं। वे जिस अनुभव या संवेदना से जितना गुजरते हैं, उतना ही लिखते हैं। उन्होंने स्वयं कहा है - "दूर की कौडी लाने की महत्वाकांक्षा भी मैंने कभी नहीं की।"[58] इसी विषय-वस्तु की अभिव्यक्ति की यही ईमानदारी उनसे खरी-खरी बातें कविता में कहला देती हैं। अपने समकालीन कवियों से जब वे यह कहते हैं कि -

"यदि इतना सोच समझकर
बोलोगे चलोगे, कभी मन की नहीं करोगे
तो मैं तुमसे कहता हूँ कि तुम
बंजर हो जाओगे।"[59]

प्रयोगवादी कविता चमत्कार के प्रति विशेष आग्रह करता रहा है। अज्ञेय ने लिखा है -"काव्य रस कवि में, या कवि के जीवन में, या वर्ण्य-विषय अथवा अनुभूति में या किसी शब्द विशेष में नहीं है, वह काव्य-रचना की चमत्कारिक तीव्रता में है।" उनके विचार में मूलतः अभिधेय अर्थ को मूल आधार के रूप में स्वीकार किया गया है और उसी के साथ नये अर्थ का आग्रह भी है। अप्रचलित शब्दों और नये अर्थ संदर्भों से शब्द को जोड़ने के कारण कविता के समझने में कठिनाई भी उत्पन्न होती रही हैं पर प्रयोगवादी कवि इसे अपनी विवशता समझता रहा है।

[57] दूसरा सप्तक, पृ.4
[58] दूसरा सप्तक, पृ.5
[59]

इसके बाद कविता क्षेत्र में प्रगतिवाद, नई कविता आदि कई आन्दोलन चले हैं। वे किन्हीं कारणों से दीर्घजीवी नहीं हो सके और दुर्भाग्यवश सतत चिंतन प्रक्रिया का भी अभाव रहा है। आज भी कविता सृजन के क्षेत्र में, समीक्षा के क्षेत्र में समस्याएँ बनी हुई है। इस लम्बे इतिहास के साक्ष्य में यह कहा जा सकता है कि सारे प्रश्न अधिकतर विषय-वस्तु को लेकर उठे हैं। अनुभूति, बौद्धिकता, कल्पना की समय-समय पर नई व्याख्याएँ की जा रही हैं। रूप-शैली को लेकर भी पर्याप्त विचार हुआ है, पर उतना नहीं, जितना कि विषय-वस्तु पक्ष को लेकर। इस से यह स्पष्ट होता है कि विषय वस्तु ही विवाद का मुख्य विषय है।

2.5.3 मानवीयतावाद

भवानी प्रसाद मिश्र किसी वाद विशेष के कवि नहीं है और न किसी काव्यान्दोलन के नेता। वे तो सहज मानवतावादी कवि हैं। वैसे तो सभी वादों की झलक उनके काव्य में है। किंतु वे सब में होकर भी किसी में नहीं हैं। छायावाद युग में रहकर भी वे उसकी अतिवादी कल्पना और भाषागत रेशमी झिलमिलाहट में नहीं फँसे। प्रगतिशील होकर भी मार्क्सवादी जीवन-पद्धति पर नहीं अड़े। प्रयोगवादी होकर भी अनगढ़, नितान्त वैयक्तिक प्रयोगों में नहीं फसें। और नयी कविता की सीमाओं के भीतर भी नहीं घिरे। इस संदर्भ में मुक्तिबोध का यह कथन बहुत ही उचित है कि-"उसने समस्त युग की बात कही पर कुछ आँचों और सांचों में ढलकर कि छायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नयी कविता किसी के चौखटे में फिट न हो सकी यों सब उनमें स्वयं को देखने के लिए लालायित हो उठे। नई कविता का नया युगबोध जगाने वालों को नये हस्ताक्षर का नाम दिया गया था, पर भवानी तो उससे भी एक कदम आगे युग की नयी इबारत बनकर आये थे।"[60]

मानवतावादी विचारों का प्रस्थान-बिंदु मनुष्य की मौलिक सद्‌वृत्ति में आस्था है और इसलिए मानवतावादी मनुष्य के नैतिक विवेक को जागृत कर विश्व में प्रेम और बंधुत्व की प्रतिष्ठा का प्रयास करते हैं। सामाजिक वैषम्यों के अंत के लिए वे व्यक्ति की उदारशयता पर निर्भर करते हैं। इस रूप में मानवतावाद एक उदार धार्मिक भावना का पर्याय हो जाता है।

[60] भवानी भाई : मुक्तिबोध-पृ.3

आधुनिक विचार-जगत को गांधीजी की सर्वप्रथम देन है, अहिंसा चेतना का इतना विकास अभी नहीं हुआ है कि न्याय के लिए बल-प्रयोग की आवश्यकता ही न पड़े, इसलिए विशुद्ध अहिंसा का आदर्श व्यवहार्य नहीं है। यह आदर्श चाहे आज फलीभूत न हो, किंतु गांधीजी ने अहिंसात्मक युद्ध-नीति पर वर्तमान विचार जगत को सोचने के लिए मजबूर कर मानवता का अमित उपकार किया है। हर बड़े आदर्श की तरह सत्याग्रह का भी दुरुपयोग किया जा सकता है, किंतु सत्य या न्याय के लिए किसी राजशक्ति या समाज-व्यवस्था से असहयोग विद्रोह का एक शक्तिशाली मार्ग है, क्योंकि उसमें घृणा और रक्तपात को मन से कम अवसर मिलता है। अतः इस मार्ग की संभावना चुकने पर ही हिंसा का आश्रय संगत होगा। गांधीजी द्वारा प्रदर्शित शांतिपूर्ण विरोध का रास्ता दुनिया में अनेक जगह अपनाया भी गया है।

गांधीजी का जीवन-दर्शन मानवतावादी है। मानवतावादी दृष्टि से उनकी सीमाएँ स्पष्ट हैं। वे व्यक्ति की सदाशयता के प्रति विश्वासशील थे, अतः जमींदारों तथा पूंजीपतियों के हृदय परिवर्तन में उनका विश्वास था। नवल किशोर गांधी के इस विश्वास को ध्यान में रखकर कहा है-"उनका दर्शन समाज की वैज्ञानिक और शोषण के आधार को विश्लेषण नहीं कर सके। उनके बहुत से विचारों में अंतर्निहित विरोध मिलता है। लेकिन उनके विचारों की त्रुटियों से उनकी महानता कम नहीं होती।"[61] मूलतः मानवता का सिद्धांत अंततः विश्वास, श्रद्धा, आदर एवं नैतिक मूल्यों, भावों द्वारा प्राणि मात्र के कल्पना की उदात्त भूमि पर टिका है। यह सिद्धांत भारतीय दर्शन में अति प्राचीन है। "मानवतावाद" भाव वाचक संज्ञा वह सिद्धांत है जो मानव की शक्ति पर ही विश्वास करते हुए-देववाद, नियतिवाद अथवा भाग्यवाद को अस्वीकार कर मानव की आर्थिक, सांस्कृतिक, नैतिक, धार्मिक समृद्धि एवं स्वतंत्रता और प्रगति के प्रति प्रबल निष्ठा रखता है। मानवतावाद परलौकिकता को कोई महत्व नहीं देता।

दार्शनिक चिंतन की परंपरा के आरंभ से ही पार्थिव-जीवन को महत्व देनेवाले मनीषी, जिन्होंने मानवीय सुख और समृद्धि को ही जीवन का लक्ष्य घोषित किया, पूर्व और पश्चिम दोनों ही ओर सदा हुए हैं। बहुत लंबे अर्से तक मानव केंद्रित यह चिंतन इतिहास में एक साधारण वैचारिक घटक रहा, किंतु यूरोपीय पुनर्जागरण काल से इसका

महत्व बढ़ा और धीरे-धीरे यह मानवीय कल्याण के संपूर्ण प्रयासों का प्रेरणा-स्त्रोत बन गया। "पारलौकिक मूल्यों के स्थान पर इहलौकिक लक्ष्यों को प्रमुख देनेवाली इस विचारधारा का ही नाम मानवतावाद है।"[62] डॉ.श्वाइत्जर के अनुसार "मानवता" शब्द से तात्पर्य है-"साथी इन्सान के प्रति आदमी की वास्तविक सदिच्छा। इस शब्द से यह संकेतित है कि हमें न केवल इसलिए करुणाशील होना चाहिए कि यह एक नैतिक आदेश है, अपितु इसलिए कि यह (करुणाशीलता) मानव-स्वभाव की स्वयं एक विशेषता है।"[63]

मानवतावादी आदर्शों को मनुष्य ने सभ्यता के विकास में धीरे-धीरे प्राप्त किया है। बुद्ध, जरथुस्त्र, ईसा जैसे धर्मोपदेक हुए, जिन्होंने करुणा और मानव-मैत्री की शिक्षाएँ दीं। युनान के स्टोईक विचारकों ने दासों के प्रति बंधुता की मांग की। भारत में यज्ञों में दी जानेवाली पशुबलि को गौतमबुद्ध और महावीर द्वारा विरोध में पशुओं के प्रति सहभाव के उपदेश में दया, प्राणि मात्र की रक्षा की भावना के सुस्पष्ट उदाहरण मिलते हैं।

2.5.4 नयी कविता-दर्शन :

समाज के विविध मूल्यों को अभिव्यंजना के वस्तु पर नयी दृष्टि से देखते हुए, युग सत्य तथा परंपरागत अनुभूतियों को रूपायीत करना ही परिप्रेषण की नवीनता है। इस नवीनता ने नयी कविता के कवियों का ध्यान वर्तमान सामाजिक तथा राजनैतिक समस्याओं की ओर अधिक केंद्रित किया है। वस्तुतः इन कवियों की वैचारिक विषय-वस्तु प्रदान करने में वर्तमान स्थितियों का सहयोग रहा है।

नयी कविता युगीन परिप्रेक्ष्य और समसामयिक जीवन का यथार्थ के धरातल पर साक्षात्कार कराती है। वह सामान्य मानव के दैन्य, वैषम्य, उत्पीडन आदि का उद्‌घाटन कराती हुई मानव संबंधों को उजागर करती है। उस में विस्तृत जीवन की जटिलताओं का साक्षात्कार है। डॉ.संतोषकुमार तिवारी ने लिखा है-"नयी कविता की एक विशेष प्रवृत्ति है-बौद्धिकता। यह बौद्धिक आग्रह अतिशय भावुकता और कल्पनाशीलता को संयमित और अनुशासित करता है तथा वस्तु स्थिति को विश्लेषित करता है। इसलिए उसमें

---

[61] मानवता और साहित्य-पृ.66
[62] हिंदी साहित्यकोश
[63] दृष्टिव्य :Humanity-Universtas (Vol-51, 1962, No-3)

यथार्थ चित्रण का आग्रह है, पूर्वाग्रह से मुक्ति की लालसा है, जीवन से सीधा संपर्क है।"[64]

वस्तु के अनुसार रूप भी स्थानांतरित होता है। नयी कविता की भाषा गद्यात्मक है, सहज भाषा के समीप है फिर भी उसमें एक लय है और बिंब तथा प्रतीकों की बहुलता के स्थान पर सपाटबयानी है। उस में व्यवहृत पौराणिक प्रतीक नये संदर्भ लेकर आये हैं। आंचलिक तत्वों के अनुरूप कई बोलियों के शब्दों का प्रयोग है। नयी कविता यथार्थवादी धरातल पर व्यंग्यात्मक हो उठी है। समाज का खोखलापन, व्यक्ति मन की रुग्नता, अंतर्बाह्य का असमंजस्य शोषण और अनाचार का बोलबाला कवि को स्वभावतः व्यंग्यात्मक शैली की ओर ले जाता है। इस तरह नयी कविता आधुनिक वस्तु और नये रूप को लेकर अपना यथार्थ रूप-रंग प्रकट करती है। वह आम लोगों की कविता बनती जा रही है।

भवानी प्रसाद मिश्र का आधारफलक विस्तृत है। वे जीवन के वैविध्य को लेकर चले हैं। वे सामान्य जन की आशा-आकांक्षा और दुःख-दर्द के कवि हैं। मानवीय विषय-वस्तु उनके काव्य का मूल उत्स है। जहाँ अन्य कवि नितांत वैयक्तिक भूमिका पर काव्य सृजन से संलग्न रहें वहाँ भवानी प्रसाद मिश्र जीवन की गहराई लेकर सामाजिक दायित्वों का निर्वाह करते चले हैं। इस संदर्भ पर नामवर जी की उक्ति उचित जान पड़ती है कि- "निःस्संदेह किसी कविा का सिरजा हुआ संसार ही उसका मूल्य है किंतु उस मूल्य की प्रासंगिकता इस बात पर निर्भर है कि वह सिरजा हुआ संसार कितना वास्तविक है अथवा वास्तविकता के बारे में हमारी समझ को कितना गहरा और कितना समृद्ध करता है। हमारे आस-पास के संसार को अर्थ प्रदान करने में ही किसी कविता के अपने संसार की सार्थकता है।"[65] निश्चय ही भवानी प्रसाद मिश्र का काव्य यथार्थ की विषय-वस्तु पर गहरी संवेदना और समझ का ठोस प्रमाण देता है। जहाँ अन्य कवि पाश्चात्य विचारधारा से अक्रांत है वहाँ मिश्र जी भारतीय चिंतन की निरंतरता लिए हुए काव्य रचना में समर्थ हुए हैं।

---

[64] नयी कविता और भवानी प्रसाद मिश्र-पृ.145
[65] कविता के नये प्रतिमान-पृ.232

भवानी प्रसाद मिश्र को सहज बोधगम्य और अनायास टपकने वाले शब्दों की, अर्थों एवं ध्वनियों की वास्तविक पहचान है। उनकी काव्य भाषा लोक मानस की भाषा है जो उनकी कविता को एक नयी ताजगी और अपनत्व प्रदान करती है। कांतिकुमार जैन ने लिखा है-"हिंदी काव्य-भाषा को मिश्र जी का सबसे बड़ा दाय यह है कि उन्होंने साहित्यिक भाषा और सामान्य बोलचाल की भाषा के पार्थक्य को मिटा दिया है। उनकी काव्य-भाषा की बड़ी विशेषता यह है कि बोलचाल की भाषा लिखने के लिए कवि को साधु भाषा का परिहार नहीं करना पड़ता और संस्कृतनिष्ठ भाषा लिखने के लिए फारसी से झगड़ा नहीं करना पड़ता।"[66] इसे हम कला की स्वाभाविकता का निर्वाह करेंगे। उन्होंने हिंदी काव्य को एक नया मुहावरा दिया है। अपनी सहज तथा अनौपचारिक अभिव्यक्ति में एक अनुकरणीय मोड़ दिया है। आज के भारत की सांस्कृतिक विपन्नता की चर्चा करते हुए विद्यानिवास मिश्र ने लिखा है कि-"सब से दुःख की बात तो यह है कि हिंदी का प्रबुद्ध लेखक भी छोटे आदमी की बात करने का दावा करता है, भोगी हुई जिंदगी की वकालत करता है और भाषा ऐसी बनाता है जो ऊपरी बेलौसपन, नकली खुरदुरेपन और अतिरंजित तीखेपन के बावजूद छोटे आदमी और यथार्थ भोगने वाले आदमी की पहुंच के बाहर होती है, शायद शब्द वही हों पर बीच में एक दीवार जरूर प्रतीत रहती है जिसके आर-पार की बात सुनाई नहीं पड़ती।"[67] भवानी प्रसाद मिश्र में यह भाषा की प्राचीर नहीं है जो उच्च-वर्ग और आम आदमी के बीच में खड़ी कर दी गयी हो।

नयी कविता के संदर्भ में यह सर्वमान्य है कि मानव-सत्ता या मानव चेतना का अध्ययन और मानव मुक्ति ही साहित्य का लक्ष्य रहा है। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए हर रचनाकार अपनी एक दृष्टि और विचारधारा लेकर जूझता है। यह कहना तो एकदम बेमानी है, एक पाखण्ड है कि कला कला के लिए है। कवि जन जीवन से अछूता नहीं रह सकता और उसका लक्ष्य अंततोगत्वा मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा ही होगा। हर एक क्षेत्र में रचनाकार बंधनों से मानव की मुक्ति के लिए छटपटाता है। भवानी प्रसाद मिश्र भी कविता से प्यारे आदमी को ही अपना केंद्र बिंदु मानते हैं। वे प्रकृति के वैभव को इसलिए दुलारते हैं कि वह आदमी को रूप, स्नेह देने में समर्थ है-

---

[66] कांति कुमार जैनः नयी कविता-पृ.67

[67] पूर्वाग्रह-दिसंबर 1974-पृ.

"पहाड़ों की रेखा, वनों की छाया, फूल के रंग,

सब आदमी में मिलते हैं।

यही सब लेकर आदमी के

रूप स्नेह शक्ति खिलते हैं।"[68]

व्यक्तिगत की समीक्षा लिखते हुए नेमिचंद्र जैन ने कहा है कि-"अधिकांश कविताएँ ऐसी पंक्तियों से भरी पड़ी हैं जिनमें अपनी या बाहरी दुनिया किसी तीखे उत्तप्त स्पर्श की गर्मी या किसी खोज की उत्तेजना नहीं है बस ठंडी दार्शनिकता या निरर्थक वैचारिक मुद्रा है।"[69] इस पर डॉ.संतोषकुमार तिवारी ने लिखा है-यहाँ नेमि जी ने अपने पूर्वग्रह को कविता में प्रक्षेपित किया है, अन्यथा वे ऐसी टिप्पणी न करते। मेरे विचार से यह बात सही है क्योंकि भवानी प्रसाद मिश्र किसी "वाद" से जुड़े नहीं जो प्रत्यक्ष या परोक्ष विदेशी हैं। रही वैचारिक और दर्शन की बात भवानी प्रसाद मिश्र में गंभीरता है इसलिए वे ठंडे लगते हैं। उतावले क्षणिक होते हैं। मिश्रजी का दार्शनिक विचार दो हज़ार साल पुराना है जो आज भी नया है। इसका प्रमाण "कालजयी" में अंकुरित हुआ है।

साठोत्तरी कविता में जब समकालीन काव्य के साथ नये आंदोलनों का दौर आया-युयुत्सावादी कविता, अकविता, अस्वीकृत कविता, ताजी कविता, प्रतिबद्ध कविता, नंगी कविता आदि उनमें भी भवानीप्रसाद मिश्र का कवि रूप किंचित भी नहीं ढल सका। गोया, उनमें किसी मतवाद का आग्रह नहीं है। सामान्य जीवन के यथार्थ की पकड़ और व्यावहारिक बोलचाल का रूप विवेचन उन्हें नये काव्य का सशक्त हस्ताक्षर बनाता है। वे नयी कविता का पूरे युग बोध लेकर उतरे हैं। इस युग बोध को डॉ.विश्वंभर नाथ उपाध्याय के शब्दों में-"समकालीन कविता में जो हो रहा है "बिकमिंग" का सीधा खुलासा है। इसे पढ़कर वर्तमान काल का बोध होता है क्योंकि उसमें जीते, संघर्ष करते, लड़ते, तड़पते, गरजते तथा ठोकर खाकर सोचते वास्तविक आदमी का परिदृश्य है। नयी कविता में काल गत्यात्मक रूप में है, ठहरे हुए क्षण या क्षणांश के रूप में नहीं। यह काल-क्षण की कविता नहीं, कल-प्रवाह अघात और विस्फोट की कविता है।"[70]

[68] गांधी पंचशती-पृ.383

[69] पूर्वग्रह: दिसंबर 1974-पृ.

[70] साहित्यानुशीलन-आधुनिक हिंदी साहित्य-पृ.81

डॉ.रामदरश मिश्र "नई कविता" के संदर्भ में कुछ इस तरह विचार दिखाई पड़ते हैं-"नई कविता भारतीय स्वातंत्र्य के बाद लिखी गई उन कविताओं को कहा गया जिसमें परंपरागत कविता से आगे नये मूल्यों, नये भाव-बोधों और नये शिल्प-विधान का अन्वेषण किया गया है।"[71] जो भवानी प्रसाद मिश्र के रचना-संसार में यह नये भाव और वस्तु एवं रूप का चित्रण कूट-कूट कर भरा है।

निष्कर्ष :

भवानी प्रसाद मिश्र के व्यक्तित्व, रचना और परिप्रेक्ष्य के संदर्भ में निष्कर्ष रूप से कह सकते हैं कि उनके रचना में अनुभूति और चिंतन के स्तर पर जीवन-दर्शन, भाव-बोध, युग-बोध, मानस-बोध इन स्तरों का संश्लिष्ट चित्र प्रस्तुत होता है। अतः रचनाओं द्वारा रचनाकार की सही पहचान हो सकती है। ठीक इसी तरह मिश्र जी के व्यक्तित्व की गवाह उनकी अपनी रचनाएँ हैं। वे विश्वकल्याण की उदात्त भावना लिए है। इसीलिए कवि व्यक्तिगत दायरे में संकुचित नहीं हो पाया।

भवानी प्रसाद मिश्र की काव्य यात्रा सन् 1930 में आरंभ हुई। उनकी लंबी काव्य-यात्रा-छायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नई कविता से लेकर अबाध रूप से गुजरी है, लेकिन यह भी उतना ही सही है कि उन्होंने निजी व्यक्तित्व एवं रचना को समकालीन प्रवाहों में बहने नहीं दिया। हर स्थिति में अपनी अक्षुण्ण विशेषता को हमेशा जीवित रखा। दूसरी विशेषता कह सकते हैं कि उनका काव्य किसी एक परंपरा की मर्यादित सीमा में बद्ध नहीं हो पाया। इसलिए किसी एक काव्यधारा का लेबल चिपका कर मिश्र जी के काव्य को सीमाबद्ध नहीं किया जा सकता। मूलतः मिश्र जी किसी एक वाद से प्रभावित नहीं है, फिर भी गांधी दर्शन के प्रति उनकी आस्था जरूर है मगर यह जीवन-दर्शन मूलतः जीवन दृष्टि को अपने आदर्श अर्थ में उन्नत करने का प्रयास किया है। जीवन के आदर्शों को पुनः प्राप्त करा देने वाले कवि भवानी प्रसाद मिश्र का युगबोध के संबंध में यह विचार है कि कविता में वह शक्ति होनी चाहिए, जो समसामयिक स्थितियों में उलझे सामान्य व्यक्ति को भी सही दिशा निर्देशित कर सके। अनास्था, कुण्ठा, ग्लानी, पलायन

[71] हिंदी कविता के तीन दशक-पृ.97

जैसे रिक्तताओं का विरोध करते हुए आधुनिक संदर्भ में जीवन के विविध आयामों को बदलकर नयी गति, नया विकास, नयी क्रांति के द्वारा नये जीवन-दर्शन का भवानी प्रसाद मिश्र के रचना संसार में विषय-वस्तु बनकर रूपायित होते गए हैं।

* * * * *

अध्याय तीन

भवानी प्रसाद मिश्र का काव्य : वस्तु

3.1 व्यक्तिपरक काव्य

- 3.1.1 पारिवारिक जीवन
- 3.1.2 गांधी-दर्शन
- 3.1.3 धर्म
- 3.1.4 मानवता
- 3.1.5 दलित, पीडित महिलाएँ
- 3.1.6 समन्वयता
- 3.1.7 वर्तमान त्रासदी
- 3.1.8 आशा और आस्था
- 3.1.9 जिजीविषा
- 3.1.10 पीड़ा

3.2 वस्तुपरक काव्य

- 3.2.1 सामाजिक दर्शन
- 3.2.2 राजनीति एवं पूंजीवाद
- 3.2.3 सत्य और अहिंसा
- 3.2.4 ग्रामीण एवं शहरी संस्कृति
- 3.2.5 औद्योगीकरण, यांत्रिक उन्नति और मनुष्य के पारस्परिक संबंध
- 3.2.6 राजनीति आदर्श से पलायन
- 3.2.7 नया जीवन

निष्कर्ष

अध्याय तीन

भवानी प्रसाद मिश्र का काव्य : वस्तु

काव्य में वस्तु की प्रासंगिकता पर डॉ.नगेंद्र का मत है कि-"आधुनिक रचनाकारों की सर्जनात्मक प्रतिभा, युग और विषय के अनुरूप नये से नये वस्तु तंत्र का आविष्कार करने लगी है।"[1] यह वस्तु की वास्तविकता स्पष्ट करती है और इंद्रियबोध के माध्यम से ही मानव, वस्तु की वास्तविकता से जुड़ता है। जिससे मानव इंद्रिय-बोध के माध्यम से न जुड़ सके, वह सैद्धांतिक रूप में उपस्थित होकर भी कला-साहित्यादि की चर्चा में "वस्तु" का पद नहीं प्राप्त कर सकेगी। वस्तु को इंद्रिय-बोध के माध्यम से जानकर ही यह ज्ञान हो सकता है कि "मस्तिष्क की स्थिति" उसके पश्चात परिवर्तित है। वस्तु की सक्रियता ही विचार चेतना चित्त आदि में व्यक्त होती है। विचार, कल्पना, भावना आदि मस्तिष्क के कार्य हैं और मस्तिष्क मूलतः वस्तु है। बिना इंद्रिय-बोध के भी वस्तु विद्यमान रह सकती है। बिना वस्तु के इंद्रिय-बोध का अवकाश ही नहीं होता। दूसरे शब्दों में, वस्तु ही एक मात्र रचना की वास्तविकता है। लेनिन ने अपने दर्शनिक लेख में इस तथ्य को उद्घाटित किया है-"Matter is a philosophical category denoting the objective reality which is given to man by his sensations and which is copied, photographed and reflected by our sensation while existing independently of them."[2]

"वस्तु" मूलतः काव्य का वर्ण्य है। प्रायः काव्य में दो प्रकार की विषय-वस्तुओं का प्रयोग होता है। इन में पहले के अंतर्गत कवि के अपने विचार एवं कल्पना भाव वस्तु बनते हैं। दूसरे में पदार्थ-वस्तु एवं घटनाएँ आदि से लेकर संसार में बिखरी हुई अन्य बातें भी आती हैं। अतः विषय-वस्तु के आधार पर काव्य के दो भाग होते हैं- एक व्यक्तिपरक, दूसरा वस्तुपरक काव्य-वस्तु।

---

[1] भारतीय साहित्य कोश-पृ.116

[2] Colleced works, Lenin-14, p.139

अध्याय एक में बताया जा चुका है कि मनुष्य एक क्रिया है और किसी कारण से नहीं बल्कि अपने मनुष्य होने के कारण।

अतः मनुष्य की, सोचने की आरंभिक भूमि हमेशा मनुष्य ही होगा। ऐसा नहीं है कि मनुष्य किसी मेज या कुर्सी की तरह तैयार-शुदा उत्पाद हो, वह होता चलता है। परिवेश के साथ घात-प्रतिघात करता हुआ मनुष्य परिवेश को भी बदलता गढ़ता चलता है और स्वयं को भी। प्रकृति को मनुष्य मानवीय प्रकृति बनाता है और उसी अनुपात में स्वयं को भी सुशील, मानवीय बनाता है। बर्तोल्त ब्रेख्त ने अपनी दो टूक शैली में कहा है-Man, too, that is to say the flesh and blood Man, can be understood only in the light of the processes in which he is involved and through which he exists."[3] ब्रेख्त ने ठोस, हाड-मांस के मनुष्य की बात की थी और उसका सीधा तात्पर्य यही था कि मनुष्य का चाहे जो अर्थ किया जाए, वह एक जीवन के माध्यम से ही व्यक्त होता है। जीवन जो एक रूप है। प्रकृति का सृजन और मनुष्य के "स्व" का सृजन। मनुष्य एक सृजनात्मक क्रिया है। उसका जीवन इसका प्रमाण है। यदि किसी उदाहरण में ऐसा नहीं है तो वहाँ अ-मानवीकरण (De-humanisation) की समस्या उठती है, जो आधुनिक युग की एक प्रमुख विशेषता के रूप में प्रायः चर्चा का विषय रही है।

मनुष्य और उसका जीवन अर्थात हाड-मांस का ठोस मनुष्य ही साहित्य की एक मात्र विषय-वस्तु हो सकता है। मनुष्य एक जागतिक ताने-बाने में गुँध कर ही अपने मनुष्यत्व को प्राप्त करता तथा खोता चलता है। यह जागतिक ताना-बाना जहाँ एक ओर विराट ब्रह्मांड में मनुष्य की स्थिति को निर्धारित करता है, वहीं दूसरी ओर सामाजिक-राजनीतिक, आर्थिक आदि व्यवस्थाओं में उसकी द्वन्द्वात्मक स्थिति संभावना को संभव करता है। मनुष्य के "वस्तु" न होने के प्रमाण में एक अकाट्य तर्क यह भी रखा जा सकता है कि वह अपने होने के प्रति सचेत रहता है। यही सचेतना उसके मनुष्य होने की पूर्व-शर्त होती है। संपूर्ण चराचर जगत में मात्र मनुष्य ही एक ऐसा प्राणी है, जो अपने होने को पहचानता है। मनुष्य की यह सचेतना यह "सौंदर्य-नियमों के अनुसार रचना करना" और "स्व" को तथा प्रकृति को निरंतर बदलते और नये रूप में गढ़ते चलना वस्तुतः मानवीय क्रिया है। यही मानवीय जीवन-क्रिया स्वाभावतः विषय-वस्तु का पद

[3] Quoted in Maxist esthetic, Henry Arvon, p.-7

ग्रहण करता है। नंददुलारे वाजपेयी ने ठीक ही लिखा है कि-"मानव-जीवन ही साहित्य का उपादान और विषय-वस्तु रहा है और रहेगा।"[4]

3.1 व्यक्तिपरक वस्तु-काव्य :

भवानी प्रसाद मिश्र और उनकी कविता के बारे में जो बात सबसे पहले दिमाग में आती है, वह यह है कि भवानी प्रसाद मिश्र चौबीसों घंटे के कवि हैं। उनके लिए कविता "आठों याम सहज साधना" है। उनके प्रभूत लेखन में स्वाभाविक रूप से कविता के बारे में और अपनी कविता से उनकी अपेक्षाओं के बारे में "कविता" जहाँ-तहाँ मिलती रहती है। यह मानों एक आत्ममंथन की प्रक्रिया है, जिसमें अपने बारे में और अपने लिखने के बारे में संदेह बार-बार सिर उठाते रहते हैं। यह संदेह कविता से एक बहुत गहरे लगाव और गंभीर सरोकार के कारण है, क्योंकि इस कवि के लिए कविता लिखना ही जीवन का पर्याय है। इस आदत में एक पुरानेपन की सैंध है, क्योंकि अपनी पूरी सचेत चेष्ठा और जुड़ाव के बावजूद इस तरह की कवि-प्रजाति अब दुर्लभ हो चली है। यह कोई पुरातन का प्रशस्ति-गान नहीं, बस समय की तकाजे की ओर इशारा है। वैसे भी बहुत लिखना या हर वक्त कविता में जीना अपने-आप में किसी कवि की योग्यता का मापदंड नहीं हो सकता। पर इतना जरूर है कि सिर्फ रचना-कर्म में जीवन के सारे सरोकारों की एकान्विति हर रचनाकार में भवानी प्रसाद मिश्र की जैसी नहीं है। शायद इसलिए अपने कवि कर्म की जाँच मिश्र जी के लिए अपरिहार्य जरूरत है। यूँ तो यह जरूरत हर रचनाकार की है।

मिश्र जी के लेखन के समय का लंबा खिचाव स्पष्टतः अपने कर्म की सार्थकता के बारे में उन्हें बहुत बार प्रश्नकुल करता है-

"चालीस बरस से डालकर कुटिया
शब्दों की प्रवाहमान धारा के किनारे बसा हूँ
लोग तो हँसे ही हैं मेरी इस मूर्खता पर
कभी-कभी मैं भी हँसा हूँ.....।"[5]

डॉ.विजयबहादुर सिंह को लिखे गए आत्मपरिचय पत्र में मिश्र जी ने लिखा है-"शब्द अपने आप और अपने परिवेश को बदलने के सशक्त माध्यम हैं। मेरा परिवेश मेरे शब्दों से

---

[4] नया साहित्य नये प्रश्न-पृ.3

बदला है या नहीं, इसे देखना आसान है। लगभग नहीं बदला।"[6] इस आधार पर कविताएँ बहुत हैं। परिवर्तन जिए में-

"कारे ये शब्द
जरा भी विचलित
नहीं करेंगे उनको
जो लाचारों को पीस रहे हैं
और न ताकत दे पाएंगे उन्हें
जो चुपचाप पिस रहे हैं
तो भी न जाने किस आशा में
मिश्र जी कलम घिस रहे हैं...."[7]

भवानी प्रसाद मिश्र रचना प्रक्रिया में अपने समकालीनों से भिन्न है। कविताओं की प्रकृति, बनावट और बुनावट कुछ ऐसी पृथक सत्ता लिए है कि उन्हें पहचानने में असुविधा नहीं होती। उनकी कविताएँ भावना और अनुभूति प्रधान हैं। फिर भी वे सीमित अनुभूतियों के कवि नहीं हैं। कवि की चिंता के केंद्र में विराट से सूक्ष्म सब समाहित हैं। भाषा में चमक और लचक दोनों हैं। पर भावोच्छवास को सामाजिक भाव उच्छवास से जोड़ने की भी गहरी ललक है। कविता के माध्यम से आत्मरति में लीन होना उनका उद्देश्य कदापि नहीं है। वे अपनी कविताओं में जातीय जीवन को समेटते हैं। प्रभाकर श्रोत्रिय के लेख से संतुष्ठ होकर मिश्रजी ने लिखा है-"मैं मानता हूँ कि उन्होंने मुझे, कविता के सिवा और जगहों से बहुत न पाने वाले आदमी की नस पकड़ ली है। यों मैंने प्रकृति और लोगों में पर्याप्त रहा हूँ, साहित्य धर्म, दर्शन, इतिहास आदि में भी मैंने ठीक ही पढ़ा है, मगर सबसे अधिक मुझे मिला है कविता पढ़कर (और शायद उससे भी ज्यादा निरंतर गुड, बैड, इंडेफरेंट कविता लिखते रहकर) जो यथासंभव हर हालत में लिखते रहने की जिद-सी ठाने हूँ, सो इसलिए कि लिखते रहकर ही मुझे जीने और जानने का सर्वाधिक भान होता है। जब तक हूँ तब तक यह भान चाहिए ही। मैं जानता हूँ कि जैसे मेरी हर सांस मेरे समूचे जीवन का अंश है, आकर और चली जाकर वह मुझे कुछ ऐसा दे जाती है जिसके कारण जीवन

---

[5] भवानी प्रसाद मिश्र: संपादक-विजयबहादुर सिंह-पृ.80
[6] आपके हिंदी कवि-पृ.11
[7] परिवर्तन मिश्र-पृ.

चलता जा रहा है, वैसे ही मेरी हर कविता मेरे जीवन का अंश है। कविता मेरे जीवन का विस्तार या संकोच नहीं है। दैन्य या पलायन नहीं है। वह मेरा अस्तित्व है।"[8] और इस अस्तित्व कर्तव्य को उन्होंने फर्क कविता में यों निभाया-

"मेरा और तुम्हारा
सारा फर्क
इतने में है
कि तुम लिखते हो
मैं बोलता हूँ
और कितना फर्क हो जाता है इससे
तुम ढाँकते हो मैं खोलता हूँ।"[9]

मिश्रजी को जिस स्नेह से परिपूर्ण परिवेश, परिस्थितियाँ उन्हें पनाह दी, दूसरी तरफ उन्हें उद्वेलित करती रही, बनाती रही, उनके साथ जूझता हुआ कवि निरंतर उसे रेखांकित करता रहा-

"तुम देख रहे हो मुझको, जहाँ खड़ा हूँ
तुम देख रहे हो मुझको, जहाँ पड़ा हूँ
मैं ऐसे ही खण्डहर चुनता फिरता हूँ
मैं ऐसे ही जगहों में पला बढ़ा हूँ।"[10]

*   *   *   *   *

मगर मुझे अपनी मौत का
भरोसा क्यों नहीं हो रहा है कितनी बार मैंने
देखा है बे-नकाब मृत्यु सुंदरा को
…   …   …   …
…   …   …   …
मैं उससे जुड़ना सोच रहा था

---

[8] प्रभाकर श्रोत्रिय : संवाद-पृ.147
[9] भवानी प्रसाद मिश्र के आयाम-पृ.10
[10] गीतफरोश-पृ.157

...   .

...   .

"क्या जाने वह कब तक

मुझे मेरे बिना इसी तरह

अकेली मरेगी।"[11]

कवि जिंदगी के घने अँधेरे में चिंतन करता हुआ, सच्चाई को टटोलता है। जीवन की अनुभूतियों का एवं व्यक्तिगत घटनाओं का एहसास करते हुए प्रचंड साहस के साथ जीवन की अपेक्षित स्थितियों से जूझने का निश्चय करता है। इसलिए वे कहते हैं-शरीर, फसलें, कविता और फूल सब एक हैं, शरीर तब बना रहेगा जब हम जीवन से संघर्ष करें, तभी हम जिंदगी जी सकेंगे। ठीक इसी तरह कविता को भी हर स्थिति में रहकर उस स्थिति को आत्मसात करते हुए, जन जीवन की यथार्थ स्थितियों से जूझना होता है। अतः कवि जिन स्थितियों में जी रहा है, उन वस्तु स्थितियों को व्यक्त करता है-

"शरीर, फसलें, कविता और फूल

सब एक हैं

सबको बोना बखरना गोड़ना पड़ता है

सत्य हो, शिव हो, सुंदर हो

आखिरकार इन सबको

किसी न किसी पल तोड़ना पड़ता है

काँटा अचानक पाँव में गड़ता है

ऐसे हर कारण

समय में जाकर पड़ता है।"[12]

"व्यक्तिगत" संग्रह के प्रथम शीर्षक कविता में कवि ने स्वीकार किया है कि इसमें जीवन से संबंधित समष्टि के चित्रों को स्वयं में ढालकर व्यक्त करने का प्रयास किया गया है। वे स्वयं

---

[11] गाँधी पंचशील-पृ.22

[12] गीत फरोश-पृ.36

कहते हैं-"इस तरह जो सारी कविताएँ "व्यक्तिगत" संग्रह में हैं, मुझे व्यक्त के अखिल में से गुजरी हुई कविताएँ हैं। उनके भाव समूचे में से गुजरे हुए भाव हैं।"[13] यथा-

"लगता है
एक नये ढंग का
चक्रवर्ती बनाया जा रहा हूँ
मैं एक व्यक्ति
हर चीज़ के द्वारा
व्यक्तिगत के रूप से मनाया जा रहा हूँ।"[14]

3.1.1 पारिवारिक जीवन :

भवानी प्रसाद मिश्र के कविताओं में पारिवारिक जीवन, संबंधों, रिश्ते-नाते का वस्तुपरक कविताएँ अनेकों ढंग से वर्णित हुए हैं। ये पारिवारिक स्नेहिल दृश्यों के सजीव चित्र प्रस्तुत करती हैं, ये स्मृति चित्र बहुत मार्मिक हैं। वैयक्तिक होते हुए भी इन कविताओं में एक ऐसा भाव स्पर्श है जो उसे सार्वजनिक बना देता है। कवि घर से बाहर है, होली की धूम, हर्ष की बाढ़, फागुन के रंगे दिवस और लाल आँगन देखकर उसका मन मसोस उठता है। त्यौहार पर माँ ने याद किया होगा, बिना मंझले के घर सूना होगा। अतः कवि अन्यमनस्क होकर अपना दुःख मापने लगता है, आँखें भर जाती हैं और हृदय में शून्य छा जाता है। "घर की याद" कविता में आज के विघटन परिवारों के लिए एक आदर्श है जो अपनत्व, ममता ओर सौहार्द्र का जीता जागता चित्र है। भाई-बहनों की भावभीनी याद के विषय वस्तु का विवेचन-

"घर कि घर में चार भाई,
मायके में बहिन आई,
बहिन आई बाप के घर
हाय रे परिवार के घर!"[15]

---

[13] व्यक्तित्व और कृतित्व-पृ.50
[14] व्यक्तिगत-पृ.11
[15] गीतफरोश-पृ.139

बिना पढ़ी ममतामयी माँ की स्नेह धारा, कर्मठ पिता का स्मरण कवि की आँखों में बरबस अश्रुधारा प्रवाहित कर देता है-

"पिताजी का वेश मुझको,
दे रहा है क्लेश मुझको,
देह एक पहाड़ जैसे,
मन कि बड़ का झाड जैसे।"[16]

कवि कभी बादलों की तरफ देखता है कभी टूटते पत्तों और चहकते पक्षियों की तरफ क्योंकि परिवार के स्नेहिल दृश्यों की कोई न कोई कथा इन सब से जुड़ी हुई है। कवि सजीले सावन की बहती हवा से निवेदन करता है कि वह घर के सब सदस्यों को इतना धैर्य दे कि वे घर से बाहर गये सदस्य के अभाव में रोने न पावें-

"हे सजीले हरे सावन
हे कि मेरे पुण्य पावन
तुम बरस लो वे न बरसें
पांचवे को वे न तरसें।"[17]

मिश्रजी के कविताओं में रोमांटिक संवेदन भी यत्र तत्र अभिव्यक्ति पा गए हैं। "लाल टेसू" पुरानी यादों को हरा कर देता है। चाहे "जीवन का सौदा" हो या "पहली बातें" कवि की वैयक्तिक प्रेमपरक संवेदनाएँ उदात्त भावभूमि पर हैं क्योंकि सामाजिक चेतना और कवि दायित्व उनके साथ है।

3.1.2 गाँधी दर्शन :

बोध कोई तैयारशुदा उत्पाद नहीं है। वह जीवन की सापेक्षता में ढलता है और जीवन युग की सापेक्षता में। युग भी कोई अमूर्त प्रत्यय न होकर जीवानुभवों में ही अभिव्यक्त होता है और पूरी तरह से सामाजिक-राजनीतिक आर्थिक आदि स्थितियों से ही बनता है। भारतीय दर्शन ने आरंभ से ही यह प्रयत्न किया कि एक ओर अनेक के बीच दिखाई देनेवाला अंतर्विरोध इस प्रकार से जीवन समर्थक बन जाए कि व्यक्ति एक सोद्देश्य जीवन जी सके। उद्देश्य ऊपर से लदा हुआ न हो कर व्यक्ति का दर्शन हो। वह

[16] गीतफरोश-पृ.144
[17] गीतफरोश-पृ.146

अपनी आत्मा में उसे पहचानें जो एक सर्वोच्च आदर्श होने के नाते समस्त अंतर्विरोधों से ऊपर हो।

आधुनिक युग में देश-काल-गत दबाव ने दृष्टि और सृष्टि दोनों पर ही अपना प्रभाव डाला। अंतर्विरोध पूर्व के कवियों में भी होता था क्योंकि वह जीवन गति का लक्षण है किंतु वह रचना-जगत को खंडित नहीं करता था। उन्नीसवीं शती के पश्चात् तो काव्य-त्रिकोण में जैसे स्टीड द्वारा वर्णित तनाव रेखाएँ ही प्रमुख हो गयीं। इस को प्रमुखता दी जाए अथवा तनाव को यह मात्र साहित्य शास्त्र की समस्या नहीं रह गयी अपितु जीवन की ही बुनियादी आवश्यकता हो गयी। यथा युग के अंतर्विरोध तीव्र होने लगे और उसी अनुपात में व्यक्ति, कवि के अंतर्विरोध भी। ऐसे में काव्य की दर्शन-वस्तु का संदर्भ वह तो यथावत नहीं रह सकता, जो अंतर्विरोधों का अपने में समाहार करती आध्यात्मिक-दृष्टि के प्रभुत्व काल में था। कवि मूलतः दार्शनिक होता ही है-यह उक्ति बदलते हुए परिदृश्य में नयी व्याख्या की मांग करती है। दर्शन और वर्णन का पूर्व सामंजस्य जिस प्रतिभा प्रत्यय को प्रस्तुत करता था, वह अब नष्ट भ्रष्ट हो गया है।

इस नये परिप्रेक्ष्य में विचार करते हुए जब मुक्तिबोध आधुनिक कविता की दार्शनिक पार्श्वभूमि की चर्चा करते हैं तो बदली हुई शब्दावली के बावजूद भारतीय दर्शन प्रत्यय उसमें अपने को अभिव्यक्त कर रहा होता है-"लेखक की विश्व-दृष्टि (भले ही वह संगठित विचारात्मक व्यवस्था के रूप में स्पष्ट मूर्त और सुलक्षित न हो) और उसकी भाव दृष्टि दोनों मूलबद्ध एकता में जहाँ पायी जायें, वहाँ हम यह कह सकते हैं कि लेखक के पास अपनी एक दार्शनिक धारा है।"[18]

उपयुक्त विवेचन से इतना तो स्पष्ट है कि दार्शनिक कविता को अथवा कविता में वर्णित दर्शन वस्तु को मात्र दार्शनिक प्रतिक्रिया भर नहीं होना चाहिए। उसे वर्तमान की मांगों के अनुसार संपूर्णता दर्शन का वर्णन होकर रस-निष्पत्ति का साधन होना चाहिए। इसलिए इसे आवश्यक माना जाना चाहिए कि दार्शनिक सूचनाएँ देने वाली कविता भी पाठक या श्रोता के दार्शनिक बोध का विस्तार करे। दर्शन मूलतः एक सामाजिक स्थिति की उपज होती है। मनुष्य एक सोचने वाला प्राणी है इस अर्थ में सोच का दार्शनिक

---

[18] मुक्तिबोध रचनावली-भाग-5, पृ.198

अनुभूति में रूपांतरण ही दार्शनिक कविता की प्राथमिक शर्त है। कवि और दार्शनिक सोचनेवाले प्राणी से कुछ ज्यादा होने के कारण दार्शनिक प्राणी कहे जायेंगे।

सत्य के साक्षात्कार से समबुद्धि प्राप्त होती है और समबुद्धि से सबके प्रति अहिंसा का भाव उत्पन्न हो जाता है। जैसा कि स्थान-स्थान पर गांधीजी ने स्वयं कहा है- "अहिंसा सत्य का ही दूसरा पहलू है। वास्तव में अहिंसा सत्य का भाव-पक्ष है। अहिंसा का अर्थ केवल हिंसा का अर्थात व्यापक रूप में द्वेष का अभाव मात्र नहीं है। यों तो हिंसा का अभाव अथवा द्वेशहीन स्थिति भी अपने आपमें एक बड़ी सिद्धी है, परंतु यह पर्याप्त नहीं है। वास्तव में यह अभावात्मक स्थिति संभव भी नहीं, क्योंकि चिरंतरंगायित मन अभावावस्था में कैसे रहता है। अतएव अहिंसा का अर्थ प्रेम है। किंतु यह प्रेम स्वार्थ और मोह आदि से सर्वथा मुक्त होता है, क्योंकि स्वार्थमय प्रेम तो वास्तव में दूसरे के प्रति न होकर अपने प्रति ही होता है, वह अहिंसा नहीं है। अहिंसा का महत्व भारतीय दर्शन और आचार शास्त्र में अति प्राचीन काल से प्रतिपादित होता आया है। उपनिषद, दर्शन, महाभारत और बौद्ध ग्रंथों में स्थान-स्थान पर अहिंसा की प्रतिष्ठा की गई है। पतंजली ने अपने योग-सूत्र में अहिंसा के भावात्मक रूप की निभ्रांत शब्दों में स्थापना की है। उन्होंने स्पष्ट लिखा है अहिंसा ही हिंसा का निषेध मात्र नहीं है, उस में सब जीवों के प्रति सद्भाव भी अनिवार्य रूप से अंतर्निहित है। "अहिंसा प्रतिष्ठायां नत्सन्निधो वैरत्यागः" अर्थात अहिंसा की प्रतिष्ठा से वैरभाव का लोप होता है।"[19] गांधीजी ने निश्चय ही उपर्युक्त अर्ष ग्रंथों का मनन किया था। इसके साथ ही उन पर बौद्ध और जैन ग्रंथों, रामचरितमानस, मध्ययुगीन संतों वाणी तथा बाइबिल का भी गहरा प्रभाव था। उनके अहिंसा सिद्धांत पर निस्संदेह इन सभी का प्रभाव है।

"तार सप्तक" की बनावट का एक आवश्यक अंग होने के नाते अपने वक्तव्य में भवानी प्रसाद मिश्र ने लिखा है-"दर्शन में अद्वैत, वाद में गांधी का और टेकनीक में सहज लक्ष्य ही मेरे बन जाये-ऐसी कोशिश है।"[20] इस में संदेह नहीं कि कवि की रचनाएँ उसके वक्तव्य के अनुरूप हैं। दूसरा सप्तक की "स्नेह शपत" रचना में गाँधी के मानवतावादी आदर्शों की स्पष्ट छाप अंकित है। दोस्त हो या दुश्मन, परिचित हो या अपरिचित, स्नेह

[19] "हरिजन" में प्रकाशित गांधीजी के वक्तव्य (सर्वोदय तत्व दर्शन से उद्धत)

[20] दूसरा सप्तकः (वक्तव्य)-पृ.5

की गहराइयाँ सारी दीवारों और पर्तों को पार कर जाती है। युग कितना भी उत्पीड़क और अनाचारी क्यों न हो, प्यार की सत्ता कभी नष्ट नहीं होती। पतित वह है जो सहज मानवीय स्नेह से दूसरों को न उठा सके। कवि नंगे भिखमंगे प्रेम की पुजारी गांधीजी की शपत दिलाता हुआ आग्रह करता है कि हमें स्नेह मैत्री को घर-घर बिखेरना होगा, इस वस्तु का विवेचन यथा-

"है शपथ तुम्हें करुणाकर की
है शपथ तुम्हें उस नंगे की,
जो स्नेह की भीख मांग मांग
मर गया कि उस भिखमंगे की!
हे सखा बात से नहीं
स्नेह से काम जरा लेकर देखो
अपने अंतर में नेह
अरे, देकर देखो।"[21]

"गांधी पंचशती" के संदर्भ में रामधारी सिंह दिनकर ने लिखा है-मेरी यह धारणा पुष्ट हो गयी कि भवानी प्रसाद मिश्र शुद्ध गांधीवादी कवि हैं। एक समय गद्य में गाँधी विचारधारा का प्रतिनिधित्व जैनेंद्र जी करते थे और काव्य में उसके प्रतिनिधित्व स्वर्गीय सियाराम शरण गुप्त थे। आज....शियारामशरण गुप्त का उत्तराधिकार भवानी प्रसाद जी वहन कर रहे हैं।"[22] मिश्रजी की यही विचारधारा "गांधी पंचशती" में शत-शत रूपों से बह उठी है। वास्तव में यह कवि की स्नेह की भाषा में लिखी आकार-प्रकार, विविधता और विचार की दृष्टि से अत्यधिक महत्वपूर्ण कृति है जिसमें गांधीवादी दर्शन सहज काव्य में रूपायित हो उठा है और मानवीय चिंतन संवेदनाओं में घुल मिल गया है। इस में गांधी दर्शन के विविध उपादानों का लेखा जोखा मात्र नहीं है अपितु गांधी दर्शन की अनुभूति जन्य संपृक्ति है। इस दर्शन में कवि का कथन है कि-"गाँधी पंचशती" में मैंने गांधी पर कम गांधी के विचार पर ज्यादा कविताएँ लिखी हैं...गाँधी के विचार में मेरे

[21] दूसरा सप्तक-पृ.22
[22] भवानी प्रसाद मिश्र के आयाम-पृ.75

विचार बनकर कविता में उतरे हैं जो एक बड़ी बात है।"[23] कवि ने गांधी के विचारों को शाश्वत विचार माना है। प्रेम शक्ति, लोक-शक्ति ओर सहअस्तित्व के सिद्धांत ही विश्व को सम्मोहक स्थिति से बचाने में समर्थ होंगे। सारा देश जातीयता, प्रांतीयता, सांप्रदायिकता, भाषावादिता, आतंक, भयोत्पादक आदि के अभिशापों से ग्रस्त है, "वसुधैव कुटुम्बकम" की हमारी आकांक्षाएँ धूल धूसरित हो गई हैं, अतः सर्वोदयी चिंतन को रूपायित करता हुआ कवि दृढ़ आस्था से कहता है कि जब राजनीति, धर्म-पाखंड, अनुपयोगी दर्शन और पाश्चात्य चकाचौंध से ग्रस्त मानव लाचार हो उठेगा तब गांधीवाद-प्रेम, अहिंसा, सत्य, भाईचारा का क्रियात्मक रूप इस विश्व का संबल बनेगा। क्योंकि हम हर समस्या का हल विदेशों से मांग रहे हैं। इस पर कवि कटाक्ष करते हुए लिखता है-

"दूर देखना तो हमें आता ही नहीं,
जो कुछ विदेशों से नहीं आता वह हमें भाता ही नहीं है।"[24]

गांधी जी को पीड़ित, शोषित और दलित वर्गों के उचित भवितव्य की हमेशा चिंता रही। वे निर्धन किसानों की निरीहता, असहायता देखकर कराह उठा। इसी संदर्भ में कवि ने मंत्रियों का स्वागत करने के बजाय, उन मज़दूर किसानों की, भूखे नंगे प्राणों की बात कही है जिन्हें वर्षों से छाया नहीं, ठंड में ताप नहीं। सर्वोदयी कवि ने गरीब की वाणी को स्वर दिया है क्योंकि पागल कवि और युग दृष्टा होने के नाते "मैं पीड़ा लेकर आया हूँ, मैं बहुल दिनों का घायल हूँ।" कवि बड़ी गहरी व्यथा के साथ सत्य का उद्घोष करता है कि चिंतन और क्रिया के बाद उपदेश की वाणी शोभा देती है पहले नहीं। काश आधुनिक नेता इसको समझ सकते। यदि यह पीड़ित, शोषित नर कंकालों पर कुछ मांस बढ़ा सके तो निश्चित ही हमारे नेताओं को मानवता का स्नेह मिलेगा तथा उनका जनप्रतिनिधि और अधिकारी होना सार्थक होगा। यथा-

"इस हड्डी के ढांचे पर थोड़ा सा मांस बढावें यदि
आप कहीं दम तोड़ रहे हों थोड़ी सांस बढ़ा दें
तो आप धन्य हो उठें आपको मानवता का प्यार मिले

[23] नई दुनिया (25 फरवरी, 1973) भवानी प्रसाद मिश्र की काव्य यात्रा-पृ.59
[24] गांधी पंचशती-पृ.1

अधिकार स्वयं हो सो धन्य यदि ऐसों को अधिकार मिले।"[25]

आज के प्रसंग में गांधी जी कहाँ तक सार्थ माने जा सकते हैं। इस विचार पर दिनकर का मत है कि-"विस्मय की बात यह है कि गांधी जी को जो साधना सब से कठिन थी, उसी की सार्थकता आज के प्रसंग में स्वीकार की जा रही है। इस में विस्मय की कोई बात नहीं है। गांधी जी का सबसे बड़ा अवदान सत्याग्रह था, हिंसा का मुकाबला अहिंसा से करना था। यदि यह गुण निरर्थक हो जाय, तो गांधीवाद की अपनी सारी सार्थकता संदिग्ध हो जाएगी।"[26]

गांधीवाद से जो यह शिक्षा निकाली जा रही है कि एक देश जब दूसरे दशे पर चढ़ाई करे तो आक्रांत देश को शत्रु का मुकाबला शस्त्र से नहीं, अहिंसा से करना चाहिए, उसे पंचशती का कवि सही मानता है और अपने अटल विश्वास के बल पर बड़े ही सरल कंठ से गाता है-

"अगर तुम्हें लड़ना है तो लड़ो,
हम नहीं लड़ेंगे।
तुम हमारी सीमा में बढ़ो,
हम नहीं बढेंगे।
मगर अपनी सीमा में हम रहेंगे अचल,
सहेंगे हम, तुम बरसाओ गोलियाँ।
हर एक इंच नयी जमीन पर तुम्हें लाशें मिलेंगी,
लाशें जिन्होंने जिंदा रहते गोली नहीं चलायी।"[27]

गांधीवाद और साम्यवाद के बीच जो विरोध है, उस पर भी कवि की प्रतिक्रिया देखने लायक है। स्वराज्य से आठ-दस साल पहले एक विचार-तरंग उठी थी कि गांधीवाद और साम्यवाद के बीच कोई बड़ा भेद नहीं है। श्री किशोरीलाल मशरूवाला ने कहा था कि साम्यवाद अगर हिंसा को छोड़ दे, तो वह गांधीवाद से अभिन्न हो जाएगा।

---

[25] गांधी पंचशती-पृ.23
[26] भवानी प्रसाद मिश्र के आयाम-पृ.76
[27] भवानी प्रसाद मिश्र के आयाम-पृ.76

15 अगस्त, 1947 को लिखी गई "पत्र साम्यवादी मित्र को" नामक कविता में इसी विचार-तरंग की अनुगूंज सुनाई पड़ती है-

"आओ जरूरत है हमें आज एके की
कम्युनिस्ट, सोशलिस्ट, हिंदु-सिख, मुसलमान,
सब की जरूरत है माता को अपनी।
... ...
... ...
हिंसा या अहिंसा को भी खींचना गलत है
... ...
... ...
झेठ एक झंझट है,
लेकिन सड़ी झंझट है, झटके में टूटेगी।
गांधी बने कम्युनिष्ट,
कम्युनिष्ट बने गांधी।"[28]

पूरे देश में आपसी द्वेश तथा भेदभाव की कालिमा मंडरा रही है। आर्थिक खुलेपन की नीति ने गरीबी, भूखमरी और महंगाई का शाप देश को दिया है। गांधी के सपनों का भारत साकार तो नहीं हो पाया बल्कि गांधी की विचार दृष्टि और नीतियों पर खूब कीचड़ उछाला गया। आज़ादी के तत्काल बाद ही गांधी पर से लोगों की आस्था उठने लगी थी। गांधी के अनुयायी ही उनकी धर्म-दृष्टि, धर्मनिरपेक्षता का विकास न करके सत्ता के दलदल में फंस गए। उन्होंने भी धर्म को सत्ता का हथियार बना लिया। भवानी प्रसाद मिश्र इन घटनाओं से बहुत खिन्न हुए। सत्ता की लूटमार में आज़ादी दिलानेवाले मसीहा की दुर्दशा से कवि अत्यन्त क्षुब्ध हुआ। कमज़ोर और अयोग्य व्यक्ति, एकाकार शिखर पर पहुंच गए और गांधी को अर्थहीन, गैर जरूरी वस्तु बनाकर छोड़ दिया। यथा-

"आज़ादी का हमारा मसीहा
उदास हो गया और अकेला हो गया

कल तक के उसके पिछलगुए

तोप हो गए, वह माटी का ढेला हो गया।"[29]

डॉ.शंभुनाथ ने मिश्र जी के गाँधी संबंधी विचार को ठीक पहचाना है। उन्होंने लिखा है-"गाँधी को जानने का मतलब होता है, विकासशील गांधी को जानना और उसकी सीमाओं को भी समझना। गांधी-विरोधियों तथा गांधी-भक्तों से अलग रास्ता अपनाते हुए अपने देश के इस महान स्वाधीनता-संग्रामी को पूरे एतिहासिक विकास में रखकर देखना होगा। जिस मानवीय अंतर्दष्टि को उन्होंने अपने विचार और कर्म से लगातार प्रक्षेपित किया।"[30] मिश्र जी ने गांधी को एक आवश्यक दूरी से काव्य का विषय नहीं बनाया, क्योंकि वे भक्ति की हद तक गांधीमय थे-"वह पवित्र वह निर्मल निश्चल, हम पंकिम हम पापी।" फिर भी उन्होंने गांधी के विवेक, अंतर्दृष्टि और विश्वास को पकड़ने की सार्थक कोशिशें की। अपनी कविताओं के माध्यम से गाँधी को समझना चाहते थे। विकास की संघठित मौन हिंसा में मानवता के घुटते प्राणों को राहत देना चाहते थे। यथा-

"उससे हटकर कदापि नहीं होगा कुछ,

जो कुछ होगा सो होगा उसके पास जाने से।"[31]

सवाल उठता है कि क्या देश गांधी की ओर लौटेगा। ऐसा कभी नहीं होता कि इतिहास का चक्का पीछे की ओर घूमें। आज न गांव पहले जैसे हैं, न लोगों का रहन सहन पहले जैसा है, न यौन जीवन प्राचीन वर्जनाओं से घिरा है और न ही राजनीति उतनी सरल है। जिन सामाजिक परिस्थितियों में गांधी जन्में थे और उनके विचार ढले थे, अब वे काफी बदल चुकी हैं। गांधी का कोई भी रास्ता हूबहू उसी ढांचे में हमारे काम का नहीं होगा। इसके बावजूद उनके कई विचार और निष्कर्ष मानवता के भावी मार्ग के प्रकाश स्तंभ बनेंगे।

उपरलिखित विवेचना से कह सकते हैं आज संसार में गांधी नहीं है, किंतु समकालीन संदर्भों में गांधी जी के विचारों का महत्व है इसी के चलते कवियों तथा

---

[28] भवानी प्रसाद मिश्र के आयाम-पृ.77

[29] भवानी प्रसाद के आयाम-पृ.240

[30] भवानी प्रसाद मिश्र के आयाम-पृ.272

[31] गांधी पंचशती-पृ.

लेखकों ने गांधी जी के विचारों को साहित्य में पिरोया गया है। अध्याय दो में जैनेंद्र द्वारा लिखित "अकाल पुरुष गांधी" का हवाला देकर स्पष्ट किया गया है कि जहाँ "वाद" है वहाँ विवाद है। गांधी स्वयं वाद को अस्वीकार करते थे।

उन्होंने इसे "हरिजन बंधु" 26 मार्च 1936 पत्रिका में स्पष्ट भी किया है कि- "गांधीवाद नाम की कोई "वस्तु" है ही नहीं और न मैं कोई नये तत्व या सिद्धांत का आविष्कार किया है। न मैं अपने पीछे कोई सम्प्रदाय छोड़ जाना चाहता हूँ। मेरा यह दावा भी नहीं है कि मैं नये तत्व या सिद्धांत का आविष्कार किया है। मैने तो केवल जो शाश्वत सत्य है, उनको अपने नित्य के जीवन और प्रश्नों पर अपने ढंग से उतारने का प्रयास मात्र किया है। ...आप इसे "गांधीवाद" न कहिए इस में वाद नाम की कोई "वस्तु" नहीं है। "[32]

किंतु कुछ अनुयायी गांधी विचार को "वाद" का दावा कर तर्कहीन के शिकार तो हुए हैं और भ्रम में गोते खाँ रहे हैं, हालांकि उनका अपना दृष्टिकोण तथा विचारों का ठोस आधार निश्चित है। इस विचार धारा का संक्षिप्त अर्थ व्यक्ति तथा समाज के सभी तबकों के हित का वह दर्शन एवं विज्ञान है, इसके पुरस्कर्ता तथा प्रयोगकर्ता स्वयं गांधी जी हैं। गांधी-तत्व साहित्य समाज और संस्कृति को अधिक प्रभावित किये हुए हैं। आज के विविध वादों के संघर्ष में कह सकते हैं कि गांधी-विचार के महत्व को गौण करने की चेष्ठा की जा रही है, फिर भी उसका साहित्यिक क्षेत्र में महत्व निर्विवाद बना रहेगा।

3.1.3 धर्म :

धर्म पुराना होते हुए भी धर्म शब्द हर युग में एक नया अर्थ देता रहा है। प्राचीन समाज में ज्ञान का हर रास्ता धर्म से होकर जाता है। इसलिए हर ज्ञान धर्म के माध्यम से लोगों तक पहुंचाया जाता था। आचरण और व्यवहार की शुद्धता, मूल्यबोध, सामाजिक संरक्षण आदि सारी बातें धर्म के दायरे में ही पढाई-सिखाई जाती थीं। इस तरह वर्तमान दौर तक धर्म ने लंबी यात्रा तय की है। इसकी यह यात्रा रंग-बिरंगे कपड़ों में कई दिशाओं से गुजरी है। दुनिया के सभी धर्मों में एक विचार, नियम या पद्धति नहीं है। इससे यह प्रमाणित होता है कि धर्म के अनेक रूप और अनेक पद्धतियाँ हैं। फिर भी उनमें

[32] भवानी प्रसाद मिश्र: व्यक्तितत्व एवं कृतित्व-पृ.109

कई समानताएँ हैं, जिनसे हम उन्हें धर्म की विस्तृत कोटि में रखते हैं। वैसे हमारे देश में धार्मिक विचारकों की एक लंबी कतार है। इसके बावजूद इस समाज को कभी सांप्रदायिक संघर्ष से गुजरना पड़ा तो कभी धार्मिक कट्टरपंथ से जूझना पड़ रहा है। सामाजिक विकास के मार्ग में धर्म कई बार एक नासूर बन रहा है। औपनिवेशिक शासन की राजनीति ने धर्म का अपने मकसद के लिए उपयोग किया और भारतीय समाज में फूट पैदा की। उसने देश की कमज़ोर तबके को दबोच लिया। तभी से धार्मिक मामलों में राजनैतिक अवसरवाद की घुसपैठ शुरू हो गई। शुद्ध राजनैतिक मामलों का हल भी धर्म की छाया में खोजा जा रहा है। इन्हीं के चलते दुष्परिणाम यह हुआ कि धर्म के आधार पर देश का विभाजन।

स्वतंत्र भारत की बुनियाद धर्मनिरपेक्षता के सिद्धांत पर आधारित थी। पर स्वतंत्र भारत में रह-रहकर धार्मिक चिंगारियाँ सुलग उठ रही थी, विद्वेश बढ़ता गया। इसकी त्रासद परिणाम नौवे दशक में सामने आई। देश ने ऐसे सांप्रदायिक आंदोलन देखे, जिनके मूल में राजनैतिक अवसरवाद था। शशि पोद्दार ने ठीक ही कहा है-"एक संप्रदाय अवसरवाद से धर्मांधता की ओर बढ़ा तो दूसरा धर्मांधता से अवसरवाद की ओर। धर्म का वास्तविक सार खो गया।"[33]

विश्व का हर धर्म प्राणी मात्र के शोषण, अन्याय, अत्याचार के खिलाफ है। वह किसी की तरह के हिंसा विरोधी हैं। सच्चा धार्मिक व्यक्ति कभी भी पारस्परिक वैमनस्य और द्वेष नहीं फैलाता। धर्म सदा इंसानियत को बड़ा मानता है, उसकी रक्षा करता है। आधुनिक युग में धार्मिक सुधार भी हो रहे हैं। धर्म के नाम पर पनपी रूढ़ियों और अंधविश्वासों को दूर करने के प्रयास हुए। कट्टरवाद की जगह उदारतावाद आया। रूढ़ियाँ जड़ परंपरा की वाहक होती हैं, उनके अनुपालन से गौरव बोध करना विवेकशीलता नहीं, कायरता होती है। समाज की जड़ परंपराएँ विकास को अवरुद्ध करती है और रूढ़ीवाद तथा कट्टरपंथ को बढ़ावा देती हैं। यही वजह है कि नवजागरण काल में जड़ परंपराओं को चुनौती मिली और धर्म के सार की विभिन्न व्याख्याएँ सामने आईं। जो अध्याय एक में आदर्शवादी एवं यथार्थवाद में बताया जा चुका है कि जीवन की पुनः सृष्टि समझकर कवि इस वस्तु जगत को स्थापित करता है।

धर्म के बारे में महात्मा गांधी ने जो कुछ कहा है, उस पर आज काफी विवाद हो रहा है। उन्हें कुछ विचारक सेक्यूलर मानते हैं तो कुछ कट्टरपंथी। उन्हें कट्टरपंथी धार्मिक माननेवालों का एक वर्ग उन्हें सांप्रदायिक और वर्ण व्यवस्था का पोषक भी करार देता है। इस तरह गाँधी का धार्मिक चिंतन बहस का विषय है। भवानी प्रसाद मिश्र की कविता में गांधी के विचारों की स्पष्ट छाप है। अतः अप्रासंगिक न होगा, यदि हम गांधी की धार्मिक मान्यताओं की और इन मान्यताओं के पीछे निहित उनके बुनियादी इरादों का अवलोकन करें।

डॉ.शशि पोद्दार के अनुसार-"हम जब स्वेच्छापूर्वक कष्ट सहन करते हैं और किसी पुरस्कार अर्थात फल की अपेक्षा नहीं रखते, तब हमारी दुखभरी पुकार ऊँची उठती है और ईश्वर उसे सुनता एवं उसका उत्तर देता है। धर्म का पथ यही है। यदि इस पर एक भी मनुष्य पूरे मन से चलता है तो उसे उसका फल मिलता है।"[34] ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास और स्वच्छ मन से की गई प्रार्थना में अखंड आस्था के कारण गांधी को धार्मिक ठहराया जा सकता है। दूसरी ओर निस्वार्थ कर्म भाव परस्पर सम-भाव और प्रेम उनके धार्मिक दृष्टिकोण को उदार, व्यापक और विकासोन्मुख सिद्ध करते हैं।

वर्तमान समाज में धर्मांधता, सांप्रदायिकता और रूढ़िवादिता बलपूर्वक सिर उठाए घूम रही है। इस से समाज, देश की हानि हो रही है और विकास का मार्ग अवरुद्ध हो रहा है। वस्तुतः धर्म का अंधा समर्थन और उसके सभी नियमों का पालन करना पड़ता को आमंत्रित करना है। मिश्र जी का काव्य धर्म के इस वस्तु पर तीखी टिप्पणी है। धर्म, दर्शन तथा ज्ञान के विभिन्न विषय जीवन की उन्नति में सहायक की भूमिका तो निभा सकते हैं, लिकिन एकमात्र इसी भरोसे बैठे रहना कोरी मूर्खता है। धर्म जीवन की दिशा निर्धारित करनेवाला एक उपकरण भर है। कवि ने धर्म को ऐसा तिनका माना है, जिसके मजबूत सहारे से मनुष्य जीवन में आगे बढ़ता है। यथा-

"धर्म और दर्शन और विचार और शास्त्र
ये सब सहारे हैं
मगर याद रखो ये सब तुम्हारे हैं

---

[33] भवानी प्रसाद मिश्र के आयाम-पृ.232
[34] भवानी प्रसाद मिश्र के आयाम-पृ.233

तुम इनके प्रवाह में बहते हुए तिनके नहीं हो।"[35]

समाज में श्रम के स्थान पर पूंजी की महिमा बढ़ी है। यहाँ तक कि धर्म में भी पूंजी का व्यापक प्रवेश हुआ है। शशिपोद्दार ने ठीक ही लिखा है-"पैसे का दानव इनके मन पर इतना ज्यादा हावी है। श्रम के स्थान पर भोग और धर्म के स्थान पर धार्मिक शोर का बोलबाला बढ़ रहा है। ऐसे समाज में सांप्रदायिकता एक "सेलेबल गूड्स" की शक्ल अख्तियार कर चुकी है।"[36] भवानी प्रसाद मिश्र की अनेक कविताएँ सांप्रदायिकता के खिलाफ हैं। उनकी दृष्टि में औचित्य का निर्धारण धर्म या जाति के आधार पर नहीं किया जा सकता, वहाँ केवल व्यक्ति केंद्र होता है। इसलिए जब मनुष्य का नजरिया हिंदु और मुसलमान के आधार पर अलग हो जाता है तो कवि उसके दुर्भाग्य पर तरस खाता है-

"हिंदू कुछ अलग सोचे मुस्लिम कुछ अलग सोचे
एक के नहीं तब भाग दोनों के पोचे।"[37]

जिस तरह माँ की गोद शिशु के लिए सबसे सुरक्षित स्थल है, उसी तरह आदमियता या इन्सानियत के सुरक्षा घेरे में ही मनुष्य की रचनात्मकता विकसित होती है। जाति, देश, धर्म और संप्रदाय का गौरव तथा अभिमान आदमीयत में ही समाया हुआ है-

"अगर हमने
आगे नहीं रखा हर चीज़ से
आदमीयत को
तो और जो चाहें कर लें
जाति धर्म कौम देशाभिमान
सब छुएँगे पशुता के छोर।"[38]

---

[35] भवानी प्रसाद मिश्र के आयाम-पृ.234
[36] भवानी प्रसाद मिश्र के आयाम-पृ.235

[37] भवानी प्रसाद मिश्र के आयाम-पृ.235
[38] संप्रति:पृ.27

अब सांप्रदायिक एकता, स्वावलंबन और आत्मनिर्भरता की आवश्यकता एक बार पुनः महसूस की जा रही है। मिश्र जी इस वस्तु को मार्मिक ढंग से विवेचित किया है। यथा-

"हम ये जो हिंदु हैं, हम जो मुसलमान हैं
पहले ये सोचे हम कमकर हैं किसान हैं
और फिर किसान और कमकर किस देश के
बापू के मन के और बापू के देश के।"[39]

*　　*　　*　　*　　*

"कितने सादे शब्द धर्म और देश हैं
किंतु आज खूंखार कि उनके वेश हैं।"[40]

3.1.4 मानवता :

भवानी प्रसाद मिश्र की संवेदना और उनकी भाषा शैली उनके काव्य-वस्तु को प्रासंगिक, उन्मुक्त और मानवीय बनाने में समर्थ है। उनकी कविता स्वयं के मनोभावों की अभिव्यक्ति होते हुए भी "जन मन की सर्वधारण मनस्थिति" की परिचायक है। इसे ही हम "जन मन का साहित्य" कहते हैं। न उनमें एकदम आक्रोश मुद्रा है, न क्रांतिकारी शब्दों का जमघट और न सिद्धांतों के विशेष चौखटे। उस में एक मानवीय गरिमा है। उनका काव्य लोक-प्रेरित सादगी लेकर सांस्कृतिक मानसिक परिष्कार का काव्य कहा जाएगा। कवि जीवन से सम्पृक्त सामाजिक दायित्व को लेकर चला है। उसमें न तो व्यष्टि और समष्टि का द्वन्द्व है और न व्यक्तिवादी तथा अहंवादी कवि की निराशा, पराजय, घुटन एवं कुंठाओं की अभिव्यक्ति है। उसमें स्वयं सामाजिकता है। जितना शैली-रूप आकर्षक और नवीन है उतना महत्वपूर्ण वस्तु भी। अध्याय एक में बताया जा चुका है यदि वस्तु का संवेदनाओं के साथ पूरी तरह से अंतरिकीकरण न हुआ हो तो रचना का उस विषय वस्तु से संबंध कामचलाऊ होगा। डॉ.संतोष कुमार तिवारी ने लिखा है-"भवानी प्रसाद मिश्र पूरे आत्मविश्वास के साथ "जीभ और जाँघ के चालू भूगोल" से एकदम कटकर अपनी भाव-संवेदना और गहरी समझ के कारण अपने वक्तव्यों के अनुसार काव्य सृजन

[39] भवानी प्रसाद मिश्र के आयाम-पृ.240
[40] भवानी प्रसाद मिश्र के आयाम-पृ.241

में समर्थ हो सके हैं। बँधी-बँधाई परिपाटी से दूर वस्तुपरक दृष्टि लेकर एक विराट केनवास पर अपनी कलम साध सके हैं।"[41] मिश्र जी आत्माभिव्यक्ति और युगबोध के नाम पर संकीर्ण और धूमिल दृष्टि के शिकार नहीं हुए। उनकी बौद्धिकता और उनका चिंतन अनुभूति में घुल-मिल गया है और बोलचाल की ताकत लेकर एक सर्वसामान्य भारतीय नागरिक की सहजता में पूर्ण आशा-आस्था के साथ व्यक्त हुआ है। वे समाज या देश तक नहीं बल्कि जागृतिक भावभूमि पर उच्च है। उनमें आधुनिक भाव-बोध है, यथार्थ के साक्षात्कार हैं किंतु आधुनिकता के नाम पर "दूर की कौड़ी" लाने का प्रयास नहीं। भवानी प्रसाद मिश्र में जीवनानुभव की व्यापकता है और उनकी कविता सार्थक जिंदगी का पर्याय बनकर संघर्ष की दीप्ति से अनुप्राणित है। संक्षेप में मुक्तिबोध के अनुसार-"काव्य में जीवन के व्यापक चित्र चाहिए न कि छिटपुट। व्यापक चित्रों में जीवन के विवध क्षेत्रों और अनुभव का सामान्यीकरण निष्कर्ष आवश्यक है। यह न होने से तृप्ति नहीं होती, मार्ग-दर्शन नहीं होता। जिंदगी को जीने और उसे ले चलने का उत्साह और उसकी दीप्ति हमें काव्य से मिलनी चाहिए। जीवन के विविध अनुभवों के सामान्यीकरण से उत्पन्न जो निष्कर्ष रूप दीप्ति है वही दे सकता है।"[42] यह वैशिष्ट्य कवि भवानी का अपना प्रदेय है।

भवानी प्रसाद मिश्र किसी वाद के कवि नहीं हैं और न किसी काव्यांदोलन के नेता। वे तो सहज मानववादी कवि हैं। वैसे तो सभी वादों की झलक उनके काव्य में हैं किंतु वे सब में होकर भी किसी में नहीं है। छायावादी युग में रहकर भी वे उसकी अतिवादी कल्पना और भाषागत रेशमी झिलमिलाहट में नहीं फँसे। प्रगतिशील होकर भी मार्क्सवाद जीवन-पद्धति पर नहीं अड़े। प्रयोगवादी होकर भी अनघढ़, नितांत वैयक्तिक प्रयोगों में नहीं फंसे। और नयी कविता की सीमाओं के भीतर भी नहीं घिरे। इस संदर्भ में या कथन उचित जान पड़ता है कि-"उसने समस्त युग की बात कही पर कुछ आँचों और साँचों में ढलकर कि छायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नयी कविता किसी के चौखटे में फिट न हो सकी। यों सब उसमें स्वयं को देखने के लिए लालायित हो उठे। नयी कविता

[41] नये कवि एक अध्ययन-पृ.142
[42] नये साहित्य का सौंदर्यशास्त्र-पृ.50

का नया युगबोध जगाने वालों को नये हस्ताक्षर का नाम दिया गया था पर भवानी प्रसाद तो उससे भी एक कदम आगे युग की नयी इबारत बनकर आये थे।"[43]

मानवीय मूल्यों का विघटन हो रहा है। हमारी सामाजिक मान्यताएँ मटियामोट हो रही हैं। क्रमशः ह्रास की दयनीय स्थिति का कारण अर्थ के प्रति तीव्र आसक्ति है। हर व्यक्ति अस्मिता केंद्रित है। प्रलोभन ने व्यक्ति को बौना बना दिया है और हमारी चेतना को खोखला। गुनाहों की कमाई ने आदमी की सही ऊँचाई (आदमवाद) खत्म कर दी है। अनर्थ और आशंकाओं से भरी जिंदगी में दूध का धोया कोई नहीं है। मिश्र जी की स्वस्थ सामाजिक, मानवतावादी चेतना अक्खड कबीर के लहजे में ललकार उठी है जिस में फटकार के साथ ही सत्य का उद्घाटन घोष है-

"न निरापद कोई नहीं है
ठीक आदमकद कोई नहीं है।"[44]

मानवतावादी-चेतना स्नेह का सबल चाहती है। जिस में इस चेतना का अंश नहीं वह मानवता के लिए लज्जा का विषय है। प्यार की चेतना ही लड़की की आँख का सौंदर्य है, हमारी वाणी का माधुर्य है। धरती और आसमान सब जगह इसका अस्तित्व है। कवि प्यार की भाषा जानता है इसलिए महसूस करता है कि समुद्र का लहराना, हवा का इठलाना, पौधे का फूल को जन्म देना-सब प्यार की चेतना का परिचायक है। यही जीवन संगीत है, आदर्श और आनंद का प्रदाता। दुनिया को बदलने के सपने इसी चेतना के प्ररिणाम हैं यह मानवीय स्नेह ही जीवन मूल्यों की प्रतिष्ठा कर सकता है। यथा-

"क्या चीज़ है यह
जिसे हम प्यार कहते हैं
जिसमें पैदा होते हैं हम
और जिसमें रहते भी हैं
जिसके मूल में छंद है
स्वभाव में आदर्श
बांटने निकलता है जो

---

[43] भवानी भाई-पृ.3
[44] चकित है दुःख-पृ.25

सुख और हर्ष

और यहाँ तक की आनंद।"[45]

दूसरा सप्तक में "स्नेह शपत" कविता में गांधी के मानवतावादी आदर्शों को अंकित किया है। दोस्त हो या दुश्मन, परिचित हो या अपरिचित, स्नेह, प्रेम की गहराइयाँ सारी दीवारों को पार कर जाती है। युग कितना भी उत्पीड़क, भयोत्पादक, अनाचारी भले ही हो प्यार की सत्ता कभी नष्ट नहीं होती। पतित वह होता है जो सहज मानवीय प्रेम से दूसरों के काम न आये। कवि प्रेम रूपी वस्तु के चलते प्रेम पुजारी गांधी की शपथ दिलाते हुए हमें स्नेह, प्रेम को घर-घर पहुंचाने की अनिवार्यता पर बल देता है-

"है शपथ तुम्हें करुणाकर की

है शपथ तुम्हें उस नंगे की,

जो स्नेह की भीख मांग-मांग

मर गया कि उस भिखमंगे की।

हे सखा बात से नहीं

स्नेह से काम जरा लेकर देखो

अपने अंतर में नेह

अरे, देकर देखो।"[46]

मानवीय दायित्व के संदर्भ में मिश्र जी ने अपने लेख में लिखा है-"यही दायित्व कवि को समग्रता से जोड़ता है, लोकोपयोगी कला की या लोकमंगल की साधना कराता है, अलौकिक के नाम पर, रहस्य के नाम पर भ्रमपूर्ण भटकाने वाली कृतियाँ हमें भयाक्रांत, निष्क्रिय और कायर बनाती है जिससे अतृप्ति और वासनाओं को प्रश्न मिलता है। अतः लोकहित कला का लक्ष्य होगा, उसे लोकोपयोगी होना चाहिए।"[47] मिश्र जी मानववादी कवि हैं। वे जिन क्षणों में आधुनिक औपचारिकताओं में फँसकर सामान्य मानव से कटकर भ्रमित स्थिति में कदम रखते हैं उनके लिए वे क्षण मानवीय दायित्व के विपक्ष में महसूस करते हैं। मानवीय मूल्यों के प्रति इतनी सहजगता और ईमानदारी हम

[45] अंधेरी कविताएँ-पृ.12

[46] दूसरा सप्तक-पृ.22

[47] व्यक्तिगत-पृ.21

बहुत कम कवियों में पाते हैं। कवि ने इस सत्य को भलीभांति समझ लिया है कि आदमी ही सुंदरतम, महानतम, कोमलतम है। आध्यात्म की उड़ानों से कुछ भी संभव नहीं, मानव ही सबसे अधिक सहानुभूति का पात्र है। यथा-

"कई बार भूल गया हूँ मैं
यह सहज सत्य
कि आदमी
सब से बड़ा है
सब से कोमल है
सबसे अधिक विचारणीय है
भाई क्षमा कर देना मुझे।"[48]

भवानी प्रसाद मिश्र की आस्थामय मानवतावादी दृष्टि उनके काव्य "गीतफरोश" की एक बड़ी संपत्ति है। इन रचनाओं में उत्तम मानसिक स्वास्थ्य है। उन्हें मंगल विधाता की सृष्टि में पूरा विश्वास है। सुख और दुःख का एक ही उद्‌गम है, एक ही लय है अतः कवि आशा के गीत गाता है। वह आश्वस्त है कि वेदना शाश्वत नहीं होती। हिंसा और दमन चक्र की विषय स्थितियों में भी वह पशुता के विनाश की आकांक्षा करता है। "नववर्ष" रचना में कवि ने मंगल विधाता से याचना की है कि वह विचारों की चिंगारियाँ सुलगा दे ताकि असमय ही अपना अस्तित्व नष्ट न करना पडे, भाग्य के अधीन होकर रोना न पड़े। यथा-

"उठे हम और उठ जाए जगत से भाग्य का रोना,
सुलग उठे हमारे प्राण की भट्टी की तब तक जाए यह सोना
कि जिसकी नींव पर पशुता
खेली बांध सिर ताने खड़ी है।"[49]

अपने कैदी जीवन में भी मिश्र जी ने निराशा को कभी स्थान नहीं दिया क्योंकि उनके सामने भूखों नंगों की दर्द भरी इबारत हमेशा झूलती रही और उकनी मानवीय करुणा विद्रोह तथा क्रांति की ज्वाला धधकती रही। उन्हें विश्वास है कि "व्यर्थ जाता ही

[48] व्यक्तिगत-पृ.49
[49] गीतफरोश-पृ.46

नहीं जग में कहीं विद्रोह कोई" किंतु विद्रोह करना ही कवि का मकसद नहीं है, वह तो गंतव्य तक राह है-

"ये नहीं मकसद,
कि ये तो राह की कुछ मंजिलें हैं,
मंजिलें हैं और तय करना हमारा काम है री,
जो बढ़ा जाए कि बस इनसान उसका नाम है री।"[50]

भवानी प्रसाद मिश्र का विश्वास है कि श्रम, परिश्रम एवं संकट ही मनुष्य का निर्माण करते हैं, कष्टों के बीच ही मानव-प्रकृति की रचना होती है। यही उसका भाग्य है और यही उसकी बडाई है। मनुष्य की परिभाषा प्रस्तुत करते समय भी कवि की दृष्टि में यही वस्तु-तथ्य रहा है। यथा-

"सीधी बात समय पर सूझे
कठिनाई से बढ़कर जूझे
दिशा समझकर चले बराबर
उसे आदमी कहो सरासर।"[51]

आधुनिक औद्योगिक सभ्यता का एक मात्र उद्देश्य है-मुनाफा, लाभ अथवा स्वार्थ सिद्धी। यहाँ प्रत्येक वस्तु खरीद-बिक्री की वस्तु है। मनुष्य, उसके आदर्श, साहित्य एवं कलाएँ सभी वस्तुएँ हैं, जो खरीदी एवं बेची जा सकती हैं। ऐसी स्थिति में मानव-गरिमा का लोप स्वाभाविक है। कवि की "गीतफरोश" नामक प्रसिद्ध कविता में इस सभ्यता का ही यथार्थ चित्रण है जिसके लिए स्वार्थ ही एकमात्र सत्य है, ऊँचे आदर्श एवं मानव-मूल्य व्यर्थ और निस्सार हैं। कवि के स्वर की तिक्तता वस्तु का दृष्टव्य है-

"जी, पहले कुछ दिन शर्म लगी मुझको,
पर बाद-बाद में अक्ल जगी मुझको,
जी लोगों ने तो बेच दिये इमान,
जी, आप न हो सुनकर हैरान-
मैं सोच समझ कर आखिर

---

[50] गीतफरोश-पृ.131
[51] गीतफरोश-पृ.151

अपने गीत बेचता हूँ

जी हाँ हुजूर, मैं गीत बेचता हूँ।[52]

दिग्विजय करने के लिए निकला था किंतु आज वह अश्व अनियंत्रित हो रहा है, आवश्कयता है उस अश्व की वल्गा को अपने हाथ में रखने की। वैज्ञानिक प्रगति के प्रवाह में मानव-विवेक को बह जाने से रोकना है। मानव-अस्तित्व की रक्षा हेतु यह परमावश्यक है। इस वस्तु-विधान को "दैनिक", "नये गीत" के आलावा "मधुमास" कविता में यथा-

"असहनीय है यह कि काल से हार रहें धरती के बेटे,

सोंचे-भर अपना अभाग कर आँख बंद, चुप लेटे-लेटे,

अभी काल-रथ अपने आगे, इसको पीछे छोड़े तब है,

जैसे भी हम मुडे कि इसको वैसा-वैसा भोडें तब है।"[53]

इस युग में मानव सहानुभूति का क्रमाशः तीव्र गति से लोप होता जा रहा है। व्यक्ति "स्व" के कोटर में समटता जा रहा है। किंतु ऐसा करके वह अपने लिए एक कारागार निर्मित कर रहा है। जब तक वह दूसरों के सुख-दुख से संबद्ध न होगा तब तक उसका अपना जीवन भी सुख एवं उल्लास से रहित होगा। कवि मानव व्यक्तित्व के विस्तार की बात कहता है। "माघ की पूनों" कविता देखें-

"चार सिक्के प्यार के फेंको

तुम्हें मस्ती मिलेगी

और मुंह पर हँसी हो

तो और भी सस्ती मिलेगी।"[54]

भवानी प्रसाद मिश्र प्रयोगवाद-काल के कवि होते हुए भी परंपरा के जीवंत तत्वों से संबद्ध हैं। मानव-सहानुभूति एवं करुणा का प्रसार संतों ने जिस युग में किया था वह युग भी धर्मांधता, राजनीतिक कट्टरता, पारस्परिक घृणा एवं शक्ति के अहं से परिपूर्ण था। मानवमूल्य वहाँ भी तिरोहित थे। आज की स्थिति वैज्ञानिक प्रगति के बावजूद

---

[52] गीतफरोश-पृ.74
[53] गीतफरोश-पृ.95
[54] गीतफरोश-पृ.91

मध्यकालीन स्थिति से किसी भी रूप में भिन्न नहीं है। मिश्र जी की तरह आधुनिक युग के अन्य कवि भी प्रेम, करुणा एवं सहानुभूति के प्रचार की आवश्यकता अनुभूत करें तो आश्चर्य नहीं। इस संबंध में रवींद्र एवं गांधी की परंपरा से बहुत कुछ सीखा जा सकता है। मिश्र जी मानव-गरिमा की स्थापना को आधुनिक-युग के संकट-बोध के संदर्भ में आवश्यक मानते हैं। "तेरा जन्मदिन" में वर्णित-

"वृक्ष जितनी सरलता से वृक्ष बनता है
या कि जितनी सरलता से फूल खिलता है
उस सरलता से नहीं संभव कि हम भी आदमी हों
... ...
किंतु अपना तो दुःखों के बीच से ही प्राण आता
भाग्य मानव का यही है,यही है उसकी बड़ाई
कष्ट ही के बीच से उसने की अपनी प्रकृति पाई,
श्रम, परिश्रम, अश्रु, संकट ही बनाते आदमी को
ये कि दुर्दिन ही वृहत में खींच लाते आदमी को।"[55]

मानवीय संवेदना ही करुणा और पीड़ा को स्वर देती है। सूखी धरती दुख के उर्वर आँसुओं से सिक्त होकर रसमय बनती है। शिष्टाचार व्यक्ति को सीमित करते हैं। ओठों की हँसी और नयनों के चमक छल है। वे उसे सही रूप में प्रकट नहीं होने देते। जीवन प्रकृत प्रवाह में मानवीय भूमिका पर गतिशील होना चाहिए। जब समुद्र सिसकियाँ लेता है तब सावन के बादल तेज़ी से बरसते हैं और तपी धरती को सरसता प्रदान करता है। दुख मनुष्य को मनुष्य के निकट लाता है और हमें "पराई पीर" का एहसास होता है। कृत्रिम जीवन खोखला होता है। यथा-

"प्रबल दुख यदि मनों का ठीक न फूटे ठीक न बरसे
तो धरती की रूपहीनता कैसे सरसे?"[56]

कवि वर्तमान की विभीषिकाओं से अछूता नहीं है। उन्हें आज की आग का पूरा अंदाजा है। गणतंत्र दिवस पर वह सोचता है कि हज़ारों साल पहले आदमी की आदमी

[55] गीतफरोश-पृ.111
[56] गांधीपंचशती-पृ.73

पर कोई सत्ता नहीं थी। न राज्य, न प्रजा, न कोई तंत्र व्यवस्था किंतु विभिन्न आवश्कताओं ने एक दूसरे को निकट ला दिया और बंधनों में लोग बंधते गए-परिवार, समाज, राज्य आदि। एक दूसरे के कंधे पर जुआ रखते गये और स्वतंत्रता मर गयी। आदमी कराहने लगा या तो हम किसी धर्म के गुलाम बने या किसी तंत्र व्यवस्था के और दूसरों के हुक्म पर नाचते रहे। इस अमानवीय वस्तु का विवेचन मिश्र जी की विवेशता है। यथा-

"इस तरह आदमी हज़ारों बरसों से गुलाम हैं अब
स्वतंत्रता एक नाम है अब
सबसे बड़ा धर्म तंत्र भक्ति, तंत्र के रूप से अनुरक्ति
वह चाहे जैसा वैसा करना
वह जिस ढब से चाहे उस ढब से भरना।"[57]

मिश्रजी वादों और सिद्धांतों के बघार से दूर मानवीय विवेक के भी कवि हैं। चाहे शोर हो या चुप्पी, कवि के चेतना के "गहरे से गहरे" विश्लेषण के साथ समान रूप से शब्दों को पकड़ने में समर्थ हैं। उन्होंने सन्नाटे के स्वर भी सुने हैं। पंछी केवल आकाश में ही बहुत समय तक नहीं रह सकता। पंत ने भी लिखा है-

"कितनी चिडियॉ उड़े आकाश
दाना धरती के पास।"

अपनी धरती या आधार से जुड़कर ही याने धरती के रिश्ते निभाकर ही जीवन जिया जा सकता है। सामाजिक सरोकार या इंसानी सरोकार भवानी प्रसाद मिश्र के काव्य की रीढ़ है क्योंकि वे मानवतावादी कवि हैं और हर जगह धरती के रिश्ते को रेखांकित करते हैं। इस वस्तु का विवेचन इस तरह हुआ है-

"अलग-अलग खड़े रहकर भी वृक्ष
अलग-अलग नहीं है
विन्ध्या के वन में
वे उसके हैं
उसमें पैदा हुए हैं

और बढ़े हैं

सूखेंगे और कटेंगे

तो भी इसी में सूखेंगे और कटेंगे।"[58]

3.1.5 दलित, पीड़ित एवं महिला :

अध्याय एक में भरतमुनि का हवाला देकर बताया गया है कि जगत में ऐसा कोई ज्ञान, विद्या, कर्म, कला नहीं है जिसमें संसार की गतिविधियाँ समाहित नहीं हुई हैं। अतः कविता भी समग्र जीवन को रूपायित करती है। उसका स्वरूप न तो सांप्रदायिक होता है और न विघटनकारी। कवि की अनुभूति विराट होती है। वह विघटन नहीं संघटन करता है। महाभारत और रामायण लिखनेवाले व्यास और वाल्मीकि व्यापक जीवन की विराट अनुभूतियों के माध्यम से ही मानव की अंतरात्मा के दर्शन कर सके हैं। मिश्र जी परिवेश के प्रति जागरूकता और लोक जीवन से गहरी आसक्ति के कारण आसपास की मरजी से अपनी मरजी जोड़ी है। वे हर छाया को समझना चाहते हैं, हर तिरस्कृत और उपेक्षित का साथ देना चाहता हैं और अंतस के अव्यक्त सुख-दुख को पहचानना चाहते हैं। इसका विवेचन लगभग उनके सभी रचनाओं में दृष्टिगत होता है।

सबसे बड़ी विशेषता है, समाहार शक्ति की। इसलिए मिश्र जी साम्यवाद तथा गांधीवाद दोनों के श्रेष्ठ तत्वों के समाहार की चेष्टा में रत हैं। कवि चाहता है कि गांधी की प्रेम और अहिंसा की नीति अपनाकर साम्यवादी अपनी उग्र क्रांति एवं हिंसा का परित्याग करें और गांधीवादी शोषित वर्ग के उन्नयन हेतु उसी तीव्रता और निष्ठा से यथा शक्ति से चेष्टा करें जैसे साम्यवाद उसे प्राथमिकता देता है। हमें पौरुष किंतु सय्यम से काम लेना है। आज का साम्यवादी महज झूठी सहानुभूति देना जानता है, कवि के माध्यम से किसान और मजदूर के दुखडे रोता है किंतु श्रम के पसीने की बूँदें गिराना नहीं जानता। कविता उसके लिए एक फैशन है। भव्य अट्टालिका पर खड़े होकर निरीह भिखारी और दलित मज़दूर को देखनेवाला व्यक्ति तादात्म्य स्थापित नहीं करता। शब्दों में सच्ची व्याकुलता तभी उतरेगी जब उन किसान मजदूरों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर काम किया जाए। केवल नारे बाजी से उद्देश्य पूर्ति संभव नहीं है। गांधीवाद पराई पीर

---

[57] गांधीपंचशती-पृ.73

[58] परिवर्तन जिएः पृ.120

भोगता है, वह जैसा कहता है वैसा जीता है। वह केवल चिंतनात्मक नहीं, क्रियात्मक है। कवि ने दोनों का अंतर बतलाते हुए स्पष्ट संकेत दिया है कि साम्यवाद एक मोर्चा है जो अभारतीय तत्वों से अनुशासित है। उसकी शब्दावली अलग है और जीवन की एकरूपता अलग। इसका यथाउचित विवेचन मिश्र जी ने किया है-

"रोना किसान के मजदूर के दुखडे को
शीशे में हजार बार देखना मुखडे को
काम से पसीने से कोई पहचान नहीं
उतरेगी कैसे उन शब्दों में व्याकुलता
जिनका दुख गाना है उनका दुख जानो तो।"[59]

किसान पहली किरण के साथ जागते हैं, हल लेकर खेत जाते हैं, वस्त्रों के भूख के अभाव में भीषण शीत से ठिठुरते हैं। उकनी तरुणियाँ गोबर के कूड़े-कचरे से भरी जीवित शव जैसे दिखलाई देती है। निश्चित ही यह सब उनके घोर दारिद्रय का प्रमाण है। यथा-

"सुबह की ठंडी हवा कपड़े नहीं हैं
पाँव रखते हैं कहीं पड़ते कहीं हैं
पाँव जिन में गति नहीं कम्पन बहुत है
प्राण में जीवन नहीं तडपन बहुत है
धूल गोबर और कचरे में भरी सी
देवियाँ निकलीं वहाँ जीवित-भरी सी।"[60]

मन बहलाते हुए गांव के चरवाहे, मुरझाए उदास शिशु और पनघट पर आती हुई वधुएँ मानो अपनी दुख से सनी हंसी में जीवन यापन करती हैं। आदमी तो ठीक, पेड़ पौधे एवं इतर प्राणियों को कोई आघात न पहुँचे, भेद न हों बशर्ते इस में जाति हो या धर्म। इस विराट चेतना का विषय-वस्तु मिश्र जी के काव्य में देख सकते हैं। यथा-

"आदमी का आदमी से भेद

---

[59] गांधी प्रचशती-पृ.116
[60] गांधी पंचशती-पृ.24

आधार चाहे जाति हो या वर्ग हो या रंग हो

धर्म हो या देश हो या सोचने का ढंग हो, तुमको नहीं है सहा

सृष्टि में तुम आदमी हो आदमी।"[61]

आदमी के मिली जुली ऐश्वर्य और दारिद्रय की झांकियों के सिवा कवि इस एक पंक्ति में ही सामाजिक यथार्थ का नग्न चित्र प्रस्तुत कर देता है। निश्चित ही मिश्र जी यथार्थ के धरातल पर वस्तु सत्य को पकड़ सके हैं। "अनावरण" की स्थिति में सब चीजें अपना यथार्थ भीतरी रूप प्रकट करने लगते हैं। वास्तव में भीतर की आभा से ही हमारे अस्तित्व प्रतिष्ठा पाता है, क्योंकि आभा जो है वह उनके भीतर के प्राणों की है। यही प्राणों की आभा "एक व्यक्ति पंछी" में मृत्यु के समय जीवन की ऐसी बेदर्द कहानी कह देती है जो हमें सहसा झकझोर कर हतप्रभ कर देती है। एकांत, निर्जन में रात की ओस में पेड़ के नीचे चुप बैठा एक निराश्रय वृद्ध अपने प्राण-पखेरू को आकाश में उड़ता हुआ मानो समाज की व्यवस्था, जीवन के खोखलेपन और करुण दुर्दशा को अपनी खुली आँखों से मुखर गया हो। यथा-

"मैं सन्न रह गया देख कर वे आँखें

लगा जैसे बूढ़ा उनके मारफत

मुझे पार करके उड़ गया है

वृक्ष के नीचे नहीं है वह

अगाध किसी नीलिमा में जुड़ गया है।"[62]

गांधी को समाज के दलित पीड़ित शोषित वर्गों के प्रति गहरी सहानुभूति थी। कन्हैयालाल कोचर ने लिख है कि-"गांधी जी इस युग के महान सुधारक थे। वे हमारे पिछड़े हुए राष्ट्र को आर्थिक सामाजिक और राजनीतिक दृष्टियों से ऊपर उठाना चाहते थे।"[63] इन्हीं विचारों को लेकर सर्वोदयी कवि मिश्रजी ने अनेक समाजोपयोगी कार्य किए हैं। कवि देख रहा है कि कभी वर्ग को लेकर कभी धर्म को लेकर तो कभी भाषा को लेकर आदमी-आदमी को ही अपने से हेठा मान रहा है। यह भेद दृष्टि, विषमता, नष्ट होना

---

[61] गांधी पंचशती-पृ.15

[62] खुशबू के शिला लेख-पृ.138

[63] कन्हैयालाल कोचर : गांधी दर्शन -पृ.17

चाहिए। क्योंकि कवि जानता है कि इस विषमता के चलते ही मानव विकास कुंठित हो रहा है। अतः इस विषमता को सूक्ष्म ढंग से प्रस्तुत करता है।

"वह अछूत, वह काला गोरा
यह हिंदू वह मुसलमान
वह मज़दूर और मैं धनपति
यह निर्गुण, वह गुणविधान है
ऐसे सारे भेद मिटेंगे जिस दिन अपने।"[64]

भवानी प्रसाद मिश्र अतियथार्थवादी विचारधारा के समर्थक कभी नहीं थे। उनका काव्य इस बात का साक्षी है कि नयी कवि कहलाने की आकांक्षा से उन्होंने कहीं भी यथार्थ के लिए कोरा यथार्थ का चित्रण नहीं किया है। इस सत्य को वे अनेक स्थलों पर रेखांकित करते हैं कि कोरा यथार्थवाद आत्मघाती होता है। "श्रम का महत्व" कविता में मिश्र जी भारतीय उस समाज की ओर संकेत करते हैं कि सदियों से जात के नाम पर असंख्य लोग सभ्य समाज से प्रताडित जीवन यापन कर रहे हैं। जाति, धर्म की व्याख्या मिश्र जी बड़े सरल ढंग से करते हैं-

"एक आदमी घड़ी बनाता
एक बनाता चप्पल
इसीलिए यह बड़ा और वह छोटा
इस में क्या बल।"[65]

"सन्नाटा" कविता में आत्मकथा के रूप में सन्नाटा भी असफल प्रेम की मार्मिक कहानी का साक्ष्य प्रस्तुत करता है। सन्नाटा जिसे लोग निस्तब्ध और मौन कहते हैं कभी-कभी मुखर हो उठता है। सर-सर खड़-खड़, मानो उसकी ध्वनियाँ हैं जिनके द्वारा वह अपने रहस्यों को खोल देता है। किले की दीवारों के ऊपर नीचे तलघर और खंडहर इसके निवास स्थान हैं। सन्नाटा जिस में स्त्री की करुण चीत्कार और पागल के गीतों के प्रति उसकी आसक्ति व्यक्त हुई है। कवि की व्यंजना यह है कि समाज में पूंजीपतियों,

[64] गांधी पंचशती-पृ.15
[65] भवानी प्रसाद मिश्र के आयाम-पृ.20

सामंतों और शासकों द्वारा कितने अलक्षित और अज्ञात जीवन इसी तरह नष्ट हुए हैं। यथा-

"रानी बोली पागल को जरा बुला दो,
मैं पागल हूँ, राजा, तुम मुझे भुला दो,
मैं बहुत दिनों से जाग रही हूँ राजा,
बंसी बजाकर मुझको जरा सुला दो।"[66]

आधुनिक जीवन को मिश्र जी भ्रम के दायरे में रखते हैं। जहाँ मानव सभ्य समाज के प्रति आकर्षक तो है लेकिन उसके पीछे "कैन्सर" जैसी मानसिकता बनती जा रही है। मनुष्य आज के परिवेश में अंजान का शिकार हो रहा है। उसे ज्ञात नहीं कि कब हंसता है और कब नहीं हँसता। इस मोहमयी जीवन को मिश्र जी भलीभांति जानते हैं। इसी के चलते आज सुख और दुख को अलग करके देखना असंभव हो गया है। यथा-

"मेरा ख्याल है तुम्हारा बुरा हाल है
नहीं तो इतना क्यों हस रहे हो
आखिर खुशी ही कौन सी है इतनी हँसी के लायक
....
खाये जा रहा है कैंसर का रोग माँ की रत्नगर्भ कोख को।"[67]

इस महंगाई के जीवन में स्त्री अक्सर दहेज के कारण या तो खुदखुशी कर रही है या अनब्याही रह जाती है। इस गंभीर समस्या को मिश्र जी ने भलीभांति जाना है। मंडप में सजकर बैठी दुलहन का अभी तक निश्चित नहीं है कि वह चार आँखें करने में सफल भी होगी-

"गलता का लहँगा पहने ऐसे में बैठे हो तुम मेहंदी लगा रखी है पाँव में
जीवन से अब छांव में आँखें चार करने की आस बेअकली है,
इसीलिए कहता हूँ तुम्हारा बुरा हाल है।"[68]

---

[66] गीतफरोश-पृ.19
[67] गांधी पंचशती, जून 1967-पृ.3

[68] गांधी पंचशती, जून 1967-पृ.3

परिवेशगत उथल-पुथल, एक नयी अनुभूति का सूचक है। क्योंकि जीवन में घटित हर घटना व्यक्ति को सोचने के लिए विवश कर देता है। अक्सर व्यक्ति आवेश में सन्निवेश का विवेक खो देते हैं जिसके चलते परिवार के सदस्यों को कई कठिनाइयाँ सहन करनी पड़ती हैं। जब शराबी नशे में अपनी अर्धांगिनी को केवल वस्तु के रूप में निखरता है, तब उस महिला की मानसिक वेदना की सीमा सीमाहीन हो जाती है। मिश्र जी ने इस नारी की दयनीय विषय-वस्तु को यूँ अंकित किया है-

"जैसे तूफान थम जाने के बाद
समुद्र सोचता है
अपने पानी की उथल-पुथल और
उसकी खराबी
या जैसे नशा उतर जाने के बाद
पत्नी को सोचता है शराबी।"[69]

कवि वंदनीय रूपी स्त्री की प्रशंसा करता है। कवि की दृष्टि में स्त्री अप्सरा है। अतः उसके दर्शन करने लालायित है। यथा-

"उधेड डालता हूँ कई बार यादों के अवरण
खड़ी हो जाती है वे मेरे सामने
निकलकर सरोवर के पानी से
निरावरण अप्सरा की तरह।"[70]

3.1.6 समन्वय :

जाहिर है प्रत्येक कार्य निष्ठा के बाद ही कर्तव्य बनता है। आत्मा की आवाज़ ही सबसे बड़ी है। अहं के सिलाखंड को हमें तोड़ना होगा। अपने सुख की इच्छाएँ ही दुखदायी होती हैं। जो ठीक-ठीक जीवन जीता है, समझ और क्षमता उसी की बढ़ती है। व्यक्ति की एक सरल चितवन ही बिखराव को जोड़ सकती है। जो अपने प्रति कठोर होगा वही दूसरों के प्रति नरम क्योंकि जो दूसरों को समर्पित हो गया वही महान है। "हम

[69] अनाम तुम आते हो-पृ.17
[70] अनाम तुम आते हो-पृ.16

केवल हम नहीं दूसरे भी हमारे हैं" यही सच्चा आत्मज्ञान है। यही व्यक्ति की सामाजिक चेतना समन्वय कहलाती है। कवि स्वयं "मैं" के बजाय "पर" पर बल देता है। यथा-

"बूंद बूंद उमगा था धारा हूँ अब
न बूंद मेरी थी न यह धारा
दूसरों का हूँ समूचा सारा।"[71]

बनावटी जीवन एक छल है, सीधा-साधा जीवन प्रकृति और गतिशील है। संकल्प में बल है। श्रम ही पूजा है, अकर्मण्यता से जीवन एकांगी हो जाता है। इस जीवन में चारों तरफ मैं मैं और तू तू का द्वन्द्व है जिसके चलते इंसान अपनों से भी दूर होता जा रहा है। कारण हर व्यक्ति अपने को ही सही मान रहा है और दूसरों को झूठ। इस अज्ञान और अहं के चलते इंसान समन्वय से कटता जा रहा है। यथा-

"अपने ही सही होने का दावा
दावानल है
फल है चारों तरफ धू-धू
चारों तरफ मैं-मैं
चारों तरफ तू-तू।"[72]

आदर्श मनुष्य भेद-नीति से ऊपर उठकर समस्त जीवन सृष्टि से प्रेम भाव स्थापित करने वाला आदमी उस सृष्टि में नित नई चेतना पैदा करने का प्रयत्न करता है। कवि प्रेम के इस समन्वयवादी अर्थ को यों करने लगता है-

"आदमी का आदमी से भेद
आधार चाहे जाति हो, या वर्ग हो या रंग हो,
धर्म हो या देश हो या सोचने का ढंग हो तुमको नहीं है सत्य।
सृष्टि में तुम आदमी तो आदमी
हर जीव पत्ती पेड़ तक की आत्मा का ध्यान रखते हो
उस दिशा में सदा जागृत भावनाएँ कार्यरत मनप्राण रखते हो।"[73]

---

[71] गांधी पंचशती-पृ.386
[72] गांधी पंचशती-पृ.394
[73] गांधी पंचशती-पृ.100

मिश्र जी का मूल उद्देश्य सारे संसार में एकता और शांति को स्थायी बनाना है। इसलिए पीड़ित शोषितों के उद्धार के लिए कार्यरत रहे। गांधीजी का सर्वोदय तले मिश्र जी मन प्राण से उन्होंने सब के हित की ओर "एकता की बात" अर्थात समन्वय पर जोर दिया है। यथा-

"विश्वव्यापी आग का मतलब मानव एक है रे
अछूत अब की बदी से नहीं वह जो नेक है रे
हर बदी में नेक का हिस्सा है मेरे नेक समझो
मौत के इस उजाले में आदमी को एक समझो।"[74]

"त्रिकाल संध्य" कविताओं में व्यक्त भाव एक कवि के मन की पीड़ा है। इस संकलन की कविताएँ उस राष्ट्रीय परंपरा का अंग हैं जहाँ राष्ट्र के प्रति राष्ट्रहीन के प्रति कवि की गहन चिंता झलकती है। इसी प्रकार "कालजयी", "गांधी पंचशती" में तथा अनेक अन्य संकलों की स्फुट कविताओं में व्यक्त कवि की इतिहास-संवेदना को देखकर लगता है कि उनकी इतिहास-संवेदना में किसी प्रकार की रूढ़िवादिता नहीं, बल्कि व्यावहारिकता है, मानवता, समन्वयता की संपृक्त आवश्यकता पर बल है। अपनी व्यावहारिक समन्वयवादी इतिहास संवेदना के ही कारण, मिश्र जी के बारे में "अर्जुन ठाकुर" ने ठीक ही लिखा है कि-"वे गांधीवाद के अंधभक्त नहीं बने रहे, बल्कि व्यावहारिक धरातल पर मार्क्स का भी समर्थन किया। समाज के सम्यक अभ्युत्थान के लिए उन्होंने गांधीवाद एवं मार्क्सवाद के ऐक्स की कामना की।"[75] इसी के अनुसार प्रस्तुत है कुछ पंक्तियाँ-

"आओ जरूरत है आज हमें एक की
कम्यूनिस्ट, सोशलिस्ट, हिंदु-सिक्ख, मुसलमान,
सबकी जरूरत है माता को अपनी।
हिंसा या अहिंसा को भी खींचना गलत है
गांधी बने कम्यूनिस्ट

[74] गांधी पंचशती-पृ.100
[75] भवानी प्रसाद मिश्र के आयाम-पृ.185

कम्यूनिस्ट गांधी बने।"[76]

कवि ने जहाँ एक ओर प्रगतिशील चेतना को व्यक्त किया है, वहीं दूसरी ओर नव निर्माण की इच्छाएँ, शोषितों के प्रति सहानुभूति तथा हार्दिक लगाव जो समन्वयता पर केंद्रित है, पर इसके साथ-साथ इस संसार सागर को एक गागर बनाकर पूर्ण शक्ति से ऊपर उठाकर पटकना चाहते हैं, ताकि उसकी ठिकरियाँ बिखर जाए औरपानी (जीवन सत्य) इस प्रकार बहे कि सारा सत्य बहते पानी के समान आ जाए। इसलिए कवि अपनी वाणी में ऐसी शक्ति निर्माण करना चाहता है, जिससे झूठ का अनावरण हो और सत्य सर्वसम्मान हो जाए। यथा-"त्यौहार घट पटकन" कविता में-

"छंद की लेकर शपथ
निर्माण के नव-गीत गाकर
हार रे संसार सागर
मैं बनाने जा रहा हूँ आज
तुझको एक गागर।"[77]

3.1.7 वर्तमान त्रासदी :

बताया जा चुका है कि-भवानी प्रसाद मिश्र स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कविता के उन महत्वपूर्ण कवियों में हैं, जो न किसी काव्यांदोलन में सक्रिय हुए और न किसी विचारधारा के प्रति प्रतिबद्ध ही हुए। उनके काव्य में एक विचित्र-सी सरलता और निष्कपटता है। वे सहज जीवनानुभव के ऐसे समर्थ कवि हैं, जो देखने में जितने ही साधारण लगतेहैं उतने ही असाधारण हैं। प्रयोगवादी माने जाने वाले कवियों में मिश्रजी एक मात्र ऐसे कवि हैं, जो बौद्धिक समाज में भी उसी प्रकार समृद्ध है, जिस प्रकार लोक के बीच। उनका काव्य अपनी जिजीविषा, सामाजिकता, उदात्ता एवं युगबोध के कारण जहाँ नेताओं, शिक्षकों, समाज सुधारकों एवं अन्य मानवता प्रेमियों के बीच चर्चा का विषय रहा है, वहीं अपनी प्रखर अनुभूति, बेलाग ईमानदारी, अभिव्यक्ति की सहजता एवं दैनंदिन जीवन, समस्याओं की अभिव्यक्ति के कारण राह चलते आदमी का भी मन बांधने में असाधारण

[76] भवानी प्रसाद मिश्र के आयाम-पृ.185
[77] गीतफरोश-पृ.157

रूप में सफल हुआ हे। इसका यही कारण है कि मिश्रजी किसी वाद के कवि नहीं हैं, वे जीवन के कवि हैं।

भवानी प्रसाद मिश्र ने समकालीन जीवन की त्रासदी का चित्रण बखूबी से किया है। "सारा शहर" कविता में त्रासदी का संकेत है। लगता है जैसे सारा शहर अपनी ही मौत का सपना देख रहा है। सब ओर चिताएँ जल रही हैं, सब राख की ढेरी हो रहे हैं और बच्चे अपनी कब्रे स्वयं खोद रहे हैं। कोई करुण स्वर हमारी संवेदनाएँ नहीं उभारता और न मानवीय मूल्यों पर हमारा ध्यान केंद्रित होता है। ये सारी विस्फोटक स्थितियाँ कवि की प्रमुख दृष्टि से ओझल नहीं है, मानवता मौत का शिकार हो रही है। अतः

"चारों तरफ चिताएँ जल रही हैं
साँय-सन्न हवाएँ चल रही हैं
होते जा रहे हैं राख की ढेरी
बूढे और जवान
बच्चे अपनी कब्रे खोद रहे हैं
और बैठ रहे हैं जा-जाकर
अपनी खोदी हुई कब्रों में
अपनी ही खोदी हुई मिट्टी
अपने ऊपर समेट रहे हैं
और फिर उनमें लेट रहे हैं।"[78]

कवि का आशय है कि विदेशी-अनुकरण पर आधुनिकता का नशा हमारी बुद्धि का दिवालियापन है। वह हमें कृत्रिम जीवन में फँसाता है जो इन दिखावी औपचारिकताओं से संबद्ध नहीं होते। हमारी भर्त्सना और अपमान के पात्र होते हैं और हम कहते हैं, अच्छा नहीं है वह आदमी। हम फैशन और आधुनिकता के नाम पर क्लबों में डांस करते हैं, सुरा-सुंदरी में डूबते हैं और जो बस्ती के किसी कोने में दिन भर के कठोर परिश्रम के बाद सोते हैं उन्हें गिरा हुआ समझकर उनका उपहास करते हैं। किंतु ऐसा व्यक्ति हमारे बारे में क्या सोचता है, इस त्रासदीक मनोस्थिति का चित्रण यथा-

"ओर जब हम लौटते हैं

मनाकर जश्न

वह हमारी तरफ

ऐसे देखता है

जैसे हम लौटे हों

किसी को दफनाकर

अच्छा नहीं है वह आदमी।"[79]

भवानी प्रसाद मिश्र समूचे भारतीय संदर्भों से अद्‌भुत जीवंत तत्वों के हिमायती हैं, वे अवचेतन या कुंठाओं के द्वारा हाँके जानेवाले विदेशी अनुकरण के शिकार नहीं हुए। उनमें चेतना की विकासशील चिनगारियाँ हैं जो हमारी स्वस्थ परंपराओं से जुड़कर ठोस जीवन दर्शन की महती भावनाओं को हममें उन्मुख करती है। उनका युगबोध इसी प्रगतिशीलता से जुड़ा हुआ है। कवि जहित और समिष्टि चिंतन से विमुख नहीं हुआ इसलिए वह करता है, दो सूखी डाल को एक पत्ता, नंगे बदन पर एक लता। कवि व्यक्तिगत जीववन में समस्त अवरोधों को स्वीकार करने तैयार है, चाहे उसकी वाणी अवरुद्ध हो जाए, चाहे शब्द अस्थिर हो जाएँ या उसके जीवन बसंत में मुरझाये फूल दिखलाई दें किंतु इन प्रतीकों को वह सार्वजनिक रूप देना नहीं चाहता। उसकी कामना है कि ये प्रतीक समष्टि रूप धारण न करें, क्षणिक और जर्जर हों। यथा-

"प्रतीक हों अगर ये

किसी सार्वजनिकता के

तो प्राणपण से मांगता हूँ

मैं इनकी क्षणिकता

टांगता हूँ मैं अपने को सूली पर

कि बने ये प्रतीक

मेरी आस्था के

सार्वजनिकता के प्रतीक

---

[78] बुनी हुई रस्सी-पृ.130

[79] बुनी हुई रस्सी-पृ.86

न बनें।

स्वतंत्र भारत की पहली बार कांग्रेस ने शासन की बागडोर संभाली थी। मध्यप्रदेश के मंत्रिमंडल का बैतुल के पास खेडी-सांवलीगड गाँव में स्वागत हुआ था। इस समय कवि स्वागत को स्वागत समारोह नहीं समझ रहे थे। क्योंकि देश की भयानक स्थिति उसे बेचैन कर रही थी। इस शुभ अवसर पर वह स्वागत गीत गा नहीं पा रहा था, चूँकि उसके पास केवल दुखी जनता की कराहें शेष थीं। वह उन्हीं को अलापना चाह रहा था, अतः मिश्रजी ने गरीब जनता की आशा-आकांक्षा को ही प्रतिध्वनित करना चाहा। यथा-

"सब सोच रहे होंगे स्वागत के समय बात रोने की क्यों
जब हमने इतना पाया है तब यह चर्चा खोने की क्यों
सब मुझे क्षमा कर देना मैं कवि हूँ द्रष्टा हूँ पागल हूँ
मैं पीड़ा लेकर आया हूँ मैं बहुत दिनों का घायल हूँ।"[80]

आज के प्रजातंत्र युग में बढ़ते हुए भ्रष्टाचार तथा पूंजीवाद के प्रति कवि ने तीव्र व्यंग्य किया है। समाज की दयनीय स्थिति तथा जीवन की त्रासद समस्या आज हर व्यक्ति को बेचैन कर रही है। ऐसे पीड़ित समाज को सत्ताधारी लोग भूलते जा रहे हैं। कवि इस भयानक त्रासद स्थिति को अपनी आँखों से देख नहीं पा रहा है। उसके विरोध में पुकार उठता है-

"आओ इसे समझो और
देखो और चक्कर खाओ
याने यहाँ गाओ प्रजातंत्र की
वहाँ समाजवाद को
भूलो वह सारा
जो सचमुच था तुम्हारा।"[81]

---

[80] गांधी पंचशती-पृ.22
[81] परिवर्तन जिए-पृ.39

कवि ने सामाजिक और व्यक्तिगत सार के जीवन के वास्तविक संदर्भों को व्यक्त किया है। कवि इस सत्य से भी भली भांति परिचित हैं कि एक व्यक्ति की कर्म-तत्परता से कोई परिवर्तन नहीं आता है। यहाँ तक कि स्थितियाँ बेजान हो चुकी हैं। अब कवि के कलम घिसने से भी सुप्त त्रासदी में नयी चेतना जागृत होने की आशा नहीं है-

"जो चुपचाप घिस रहे हैं
तो भी जाने किस आशा में
मिश्र जी कलम घिस रहे हैं
और कविताएँ होती जा रही हैं।"[82]

कवि प्रगतिशील चेतना के स्वरों में अपने स्वर मिलाकर राजनीतिक यथार्थ का वर्णन किया है। वह देख रहा है कि अधिकार लिप्सा दिन-ब-दिन बढ़ती जा रही है और इसके फलस्वरूप शोषण की प्रवृत्ति को बढ़ावा मिल रहा है। सत्ताधारी अपने ही भाइयों के रक्त का शोषण कर स्वयंभू के चमन खिला रहे हैं। सत्ता और अधिकार रूपी चक्की के पाटों में निम्नवर्गीय लोग बराबर पिसे जा रहे हैं। निम्नवर्गियों की चिंता उन्हें तनिक भी नहीं अतः इस त्रासदी पर कवि ने तीखा व्यंग्य किया है। यथा-

"क्या तुमने लोगों को
अपनी ही लोगों के खून में
बादल की तरह तैरते देखा है
नहीं देखा तो आओ
भारत में आकर देख जाओ
यह दृश्य आजकल यहाँ आम है
आराम मिलता है इस दृश्य से
यहाँ की कुछ आंखों को
उन आंखों को भी देख जाओ
सत्ता के नशे में लाल
विकराल और खुश।"[83]

---

[82] परिवर्तन जिए-पृ.125
[83] त्रिकाल संध्य-पृ.120

देश प्रेम की धारा भवानी प्रसाद मिश्र के हृदय में प्रारंभिक काल से ही भरा हुआ है। वर्तमान देश की सामाजिक, आर्थिक, धर्मिक आदि बोझिल त्रासदी पर विभोर प्रकट किया है। क्योंकि आज देश में स्वार्थ लोलुप-सत्ता और साम्राज्य का जोर है। इस व्यवस्था का शिकार होकर आज का मानव पूर्णतः संतुलन खोता जा रहा है। अतः कवि इस देश के आतंकित स्थिति का चित्रण यूँ करता है-

"मेरे देश के जंगलों में
पंछी हिरन चीतल नील गाय
सांभर नहीं है अब
दरिंदे ही दरिंदे हैं इसमें
अब जगह-जगह
धधका नहीं पाता मैं अब
अपने मन की चिनगारियों को
कि सब जगह दरिंदे ही दरिंदे हैं
कैसे जला दूँ समूचे अपने देश को।"[84]

*   *   *   *   *

"कि हम
जो यंत्र हो गये हैं
फिर आदमी हो जायें
यंत्र न चलाएँ हमें।"[85]

3.1.8 आशा और आस्था :

कवि भावना और वैचारिकता की घुली-मिली स्थिति में आशावादिता के प्रेरक स्वरों में निरंतर गाता है। जब कभी निराशा की काली छाया उसे घेरती है और उसे लगता है कि "रात खत्म नहीं होगी" तब संघर्षशील बीते हुए समय से वह उत्साह और प्रेरणा ग्रहण करता है। इसी को मुक्तिबोध ने बाह्य का आंतरिकृत और आंतरीकृत का

[84] संप्रति-पृ.100-101
[85] संप्रति-पृ.56

बहिकृत कहा है। अतः उसका हृदय पुनः धैर्य और विकास से भर उठता है। वह खिडकी से भीतर आनेवाले भविष्य के लिए कमर कस लेता है। विपरीत परिस्थितियों के झोंके उसके व्यक्तित्व को विचलित नहीं कर सके इसलिए वह उन भयाक्रांत व्यक्तियों को ललकारता है और अपना व्यंग्य-लक्ष्य बनाता है जो मरने के पहले आकांक्षाओं के कारण कई बार मरते हैं। फिर भी मिश्र जी अहं के शिकार नहीं, मान-अपमान से परे एक संत की तरह कर्तव्य कर्मों में संलग्न रहने को वे सही जीवन बोध मानते हैं। मिश्रजी की व्यक्ति के प्रति महती संभावनाएँ कभी तिरोहित नहीं हुईं। वे जानते हैं कि विवेकहीन संसार की अप्रगति और दुर्गति दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है और सब विध्वंस की कगार पर खड़े हैं। भाईचारा और एकता केवल शब्दों में है फिर भी कवि का मन हार नहीं मानता। मनुष्य की दुर्दे जिजीविषा पर उन्हें पूरा भरोसा है और व्यक्ति की कर्मशक्ति एवं संकल्प शक्ति पर गर्व है। अतः वे मानते हैं कि इन विडंबनाओं से संसार बच निकलेगा।

भवानी प्रसाद मिश्र आत्मबल और संघर्ष के कवि हैं। उन्हें इस बात का बोध है कि व्यक्ति अपने जीवन में उजाला सिर्फ अपने दम पर ही पाता है, दूसरों की लकीरें पीटने से अंधेरा ही घना होता है। अंधानुकरण से आलोक नहीं मिलता। दूसरों की शक्ति पर केवल भटकाव मिलता है। यह बोध ही कवि को भौतिक चिंतन की शक्ति प्रदान करता है। जीवन की सही पहचान का विषय-वस्तु यथा-

"ऐसा ही बना है शायद जीवन
कि किसी और के बल पर
उसका कुछ नहीं बनता
उसके पास उजाले की
अपनी सीकें हैं
दूसरे जो देते हैं
सो तो लीकें हैं
और भटका देती हैं
अच्छे खासे

चलते हुए पावों को।"[86]

"खुशबू के शिलालेख" में शब्द और अर्थ के ऊपर ध्वनियों में खो जानेवाला कवि "व्यक्तिगत" में ध्वनियाँ सुनकर उनके साकार होने की संभावना व्यक्त करने लगता है। कवि के इस उक्ति पर हर्ष है कि-"कविता में ही कह पाता हूँ मैं कुछ"। वास्तव में उनकी जिंदगी कविता में ढली है वे कविता में जीते हैं। जब तक कविता है तब तक जिंदगी है। वे कविता के प्रति समर्पित हैं और उनमें कवि कर्म निरंतर सृजनशील होता है जो आशा और आस्था का सूचक है। इस विषय-वस्तु को कवि साधे ढंग से व्यक्त करता है-

"लिखने से नहीं ऊबता
यह अजीब एक तारा है
जब तक दिखता है
मैं नहीं डूबता।"[87]

कवि की जीवंत आस्था और संकल्प शक्ति स्तुत्य है क्योंकि पैताने बैठा है जिसके जीवन और सिरहाने बैठा है मरण फिर भी मौत की चुनौती स्वीकार करते हुए वह हर्षपूर्णक गीत गा सका हे। जब बुद्धि और कल्पना की लहरें स्थिर हो जाती हैं तब सत्य अपने आप सिर पर सवार हो जाता है। जब हम सामने उगते सूरज को देखते हैं तब पीछे का अंधेरा क्रमशः छूटता जाता है। इसी संधिकाल में कवि लगता है जैसे निकल रहा हूँ अंधेरे से प्रकाश में। कवि नये क्षितिज पर भावी महती संभावनाओं की ओर संकेत दे रहा है-

"लाओ अपना हाथ मेरे हाथ में दो
नये क्षितिजों तक चलेंगे
हाथ में हाथ डालकर
सूरज से मिलेंगे।"[88]

---

[86] व्यक्तिगत-पृ.155
[87] व्यक्तिगत-पृ.48
[88] बुनी हुई रस्सी-पृ.112

कवि जीवन परिस्थितियों के अनुसार ढलना जानता है क्योंकि जीवन किसी भी तरह का इशारा दे और नाये नहीं आदमी उस पर तो यह आदमी की कमी मानी जाती है। सच यह है कि वे आशावादिता है। झूठ हमें निराशा से भले ही क्षणिक मुक्ति दिला दे किंतु वह स्वस्थ आशाएँ नहीं दे सकता। अतः हम अपनी उदासी और रिक्तता को उसी तरह एक दूसरे पर व्यक्त होने दें जैसे वह यथार्थ में अनुभूति होती है तभी तो वह सब में बँटेगी। इमानदार अनुभूति, यथार्थ की अभिव्यक्ति और आशावादिता की भावभूमि कम कवियों में होती है। इस विषय-वस्तु को मिश्र जी ने इस तरह कहा है-

"कहें हम एक-दूसरे से
कि हम उदास हैं और दुखी हैं
मेरी समझ में
यही आशावादिता है
झूठ तो न निराशा है
न आशा।"[89]

भवानी प्रसाद मिश्र के हर काव्य-संग्रह में आस्था के स्वर मुखरित हुए हैं। कवि जीवन में निराशा तथा पलायन से हार नहीं मानता। वह आनेवाले हर नये संघर्ष से प्रतीकार करने के हेतु शक्तिशाली बना हुआ है। यथा-

"अजीब छाती है मेरी
जो इतने सन्नाटों
और इतने दरारों के बाद भी
फटती नहीं है।"[90]

जब कवि चिंता में डूब जाता है तब संवेदनशील मन की अभिव्यक्ति यथार्थ को लेकर होती है, दूसरी ओर कवि की आस्था को उद्‌घाटित करती है। यथा-

"वह टिकेगी
क्योंकि वह समय है
भय नहीं है वह

[89] बुनी हुई रस्सी-पृ.118
[90] मानसरोवर दिन-पृ.20

मेरे भीतर का

विश्वात्मा का अभय है।"[91]

*   *   *   *   *

हर चीज़ से

ऊब गया हूँ

लिखने से नहीं ऊबता

यह अजीब एक तारा है

जब तक दिखता है

मैं नहीं डूबता।"[92]

देश की दुर्व्यवस्था और वर्तमान जीवन की विडंबनाएँ कवि को इस बात के लिए विवश करती हैं कि सूर्योदय देखने की कामना व्यर्थ है, अतः वह अंधेरी रातों में अंधेरा ही जीना चाहता है, ज्ञान उसे बोझ बन गया है। भवानी प्रसाद मिश्र आधुनिक जीवन के चोचलों से भली-भांति परिचित थे। अतएव उन्होंने अपने आशा को निराश नहीं होने दिया। यथा-

"रात को सूरज माँगना

दिन को तारे

हाय रे, चेतना के ये चोंचले

हमारे!"[93]

यह जानकर भी कि किसी से कुछ नहीं मिलना है, कवि बार-बार चेतना का तकाजा पूरा कर रहा है। यह भरोसा ही कवि की चेतना का सब कुछ है। मिश्र जी यथार्थ जीवन का साक्षात्कार करते हुए भी अपनी आस्था को टूटने, बिखरने नहीं देते। कवि कहता है-

"जिसे करने के खयाल से

बड़े से बड़े लोग जिये

हो नहीं पाया वह आज तक

---

[91] इदं न मम-पृ.64

[92] व्यक्तिगत-पृ.54

[93] चकित है दुःख-पृ.117

इसलिए

आज नहीं होगा

ऐसा मत जानों

अपने आप को पूरा ब्रह्मांड जानो

और जानो ब्रह्मांड का

बनाने वाला तक।"[94]

3.1.9 जिजीविषा :

मिश्र जी की कृतियों में मुख्यतः जीवन और मरण के राग विवेचित हुए हैं। वृद्धावस्था के जीर्ण-शीर्ण शरीर की स्थिति में वे कबीर की तरह मस्ती से कह उठते हैं अब सब कुछ "इदं न मम" हो गया है। अस्वस्थ हालत में बंद कमरे में भी कवि अपने शेष क्षणों को पूरी तरह जीने के लिए लालायित है। वह एक-एक ढंग से पूरे लोक का विस्तार नापना चाहता है, यह है कवि का वामन रूप, सीमा के भीतर भी सीमा का अतिक्रमण यह जो विषय-वस्तु साहित्य की बड़ी कसौटी है।यथा-

"सीखूंगा

पूरी तरह जीना

अपने कमरे में ही संसार भर

की हवा को पीना

कहना अपर्याप्त शब्दों में

मन की पूरी बात

नापना एक-एक डग में मानो

एक एक लोक का विस्तार।"[95]

मिश्र जी मृत्यु का साक्षात्कार कर कविता लिखनेवाले व्यक्ति हैं। कविता के लिए हवा, पानी, किरण, फूल, प्रकृति सौंदर्य ही आवश्क नहीं, मौत के मुंह में बैठकर भी कविता लिखी जा सकती है। कोई मृत्युंजय कवि ही ऐसा कह सकता है-याने मौत का भी एक मजा है। कवि जीवन को सांसों का एक छन्द मानता है और जानता है कि शरीर से

---

[94] अनाम तुम आते हो-पृ.83

[95] व्यक्तिगत-पृ.108

परे होकर वही दिव्य संगीत की स्थिति पा जाएगा। इसलिए उसे देह की आशा नहीं, वह मरण को वरण करने के लिए तैयार है लेकिन वह कहीं निराश से आक्रांत नहीं है। उस में जिजीविशा है। वह जूझने वाला आस्था का कवि है। अतः मौत को भी चुनौती देता है। मौत की लपेटें उतनी ही दूर है उसके शरीर से, जितना शीत से वसंत या फूल या फल। अभी उसका विसर्जन संभव कहाँ। यथा-

"शीत से
बसंत जितना दूर है
बूंद से है जितना
मोती
या कहो
दूर है जितना फूल से फल
उतनी ही दूर है अब
मेरी देह से आग
आग से राख
राख से गंगा जल।"[96]

मौत से जूझता हुआ कवि कई बार इस बात का अनुभव करता है कि धरती उसे ऊपर उछाल रही है, आकाश उसे गोद में लेने के लिए इच्छुक है किंतु धरती उसे वापस अंक में ले लेती है, आकाश को नहीं देती। मरणोपरांत व्यक्ति पुनः इस धरती पर आ जाता है जो अदम्य जिजीविशा का सूचक है और पुनर्जन्म का चक्र जो आशा-आस्था का चलता रहता है। यथा-

"यों कि धरती उछाल तो रही है मुझे ऊपर
मगर फिर से अंक में लेने के लिए मुझे
आकाश की गोद में
देने के लिए नहीं।"[97]

---

[96] अंधेरी कविताएँ-पृ.100
[97] बुनी हुई रस्सी-पृ.69

वास्तव में कवि को अपने शरीर की जीर्णता-शीर्णता का कोई पश्चाताप नहीं है क्योंकि उसके व्यापक अनुभवों ने उसे एक परिपक्वता या परिपूर्णता दी है। उसे इस ख्याल से बहुत आशा और शांति मिलती है कि "तन बदलने पर कितना बहुत सा और नया जीवन सौंदर्य मिलेगा। उसने सब कुछ खुली आँखों से देखा है, समझा है इसलिए वह अधीर नहीं होता बल्कि आशातीत होता है। यथा-

"न जागता है कोई पश्चाताप
जीर्णता के जीने का
शरीर के इस या उस वसंत के बीतने का
दुःख नहीं होता
उल्टे एक परिपूर्णता-सी मन में उतरती है।"[98]

3.1.10 पीड़ा :

भवानी प्रसाद मिश्र की रचनाओं में विशेषतः व्यक्तिगत पीड़ा का वर्णन मिलता है किंतु वह व्यक्तिगत न होकर समष्टिगत हो जाता है। कवि भिन्न पीड़ाओं में उलझा हुआ विदित होता है। अतः यह रचनाएँ कवि की मनस्थिति को बिंबित करती है परंतु मानसिक तनाव शारीरिक पीड़ा में उलझकर भी कवि भीतर ही भीतर प्राकृतिक सुख का अनुभव करता है। अध्याय एक में मार्क्सवादी दृष्टि के अंतर्गत, प्राकृतिक सौंदर्य की महत्ता मानव जीवन के संदर्भ में ही प्रमाणित किया गया है। अतः प्रकृति काव्य का सौंदर्य मानव-जीवन के परिप्रेक्ष्य में ही विवेचित व्याख्यायित हो सकता है। उदाहरणतः

"इतना कठिन नहीं होना चाहिए था,
तुम्हारे लिए जितना कठिन होता है,
शरीर की लाचारी में
नगरों गाँवों जंगलों पहाड़ों
खेतों बगीचों को सोचना
चाहो तो निबाहो मन की खिडकी से
सारे मौसमों को।"[99]

---

[98] बुनी हुई रस्सी-पृ.120
[99] बुनी हुई रस्सी-पृ.117

इसके अतिरिक्त "जैसे ही रात घिरती है" कविता में कवि शारीरिक असमर्थता के बावजूद भी प्रकृति सौंदर्य को अपलक नेत्रों से निहारता है, जबकि पातहीन डालियाँ भी उसे सुशोभित लग रही हैं। अतः जैसे भी हो प्राकृतिक दृश्य कवि मन को सुखद, अनुभूति कराते हैं। यथा-

"पातहीन डालियाँ और तने
लगते हैं शोभा के बने अच्छा लगता है, जी को
कटें-छंटें आकारों का एकाकार हो जाना
आकाश का पहाडों में
पहाड़ी का आकाश में खो जाना।"[100]

प्रकृति के प्रति कवि का दृष्टिकोण पीड़ा के कारण एक-सा नहीं रह पाता। क्योंकि मानसिक संप्रास शारीरिक पीड़ा कवि के भावों में परिवर्तन होता है। वह कभी प्रकृति से रागात्मक संबंध स्थापित करता है, तो कभी तटस्थ भाव से देखता है। "मैं क्या करूँगा" इस रचना में रूग्णावस्था से घिरे घर की चार-दीवारी में भी प्रकृति को देखकर व्याकुल हो जाता है। साथ ही अपनी पीड़ा को दर्शाते हुए प्रकृति के प्रति उसके आत्मीय भाव के विषय-वस्तु का विवेचन हुआ है। यथा-

"हवा बैसाख की
राशि-राशि पत्ते
पेड़ों के नीचे के राशि-राशि अरे बिखरे सूखे फूल
लेकर चलेगी चल देगी
मुझको तो यह भी मुयस्सर नहीं है
मैं क्या करूँगा बैसाख की दुपहिया में।"[101]

*   *   *   *   *

"और तक
दर्द की उस घड़ी में
अंधेरे से लदी किसी गीत की कड़ी में

---
[100] बुनी हुई रस्सी-पृ.25
[101] चकित है दुःख-पृ.40

गूँथ दूँगा

बुझती हुई चिनगारी से

निकलती हुई किरण।"[102]

व्यक्ति की सही रुचि वह है जो दूसरों के मन की पीड़ा को समझे, आदमी की प्रकृति को समझे क्योंकि ये रुचियाँ ही कालांतर में संस्कृति का निर्माण करती है। जो अपने सुख-दुख अपनी विवशता, क्षमता आदि से ऊपर उठकर सहज जीवन जीता है, वही अपनी रुचियों को परिष्कृत करता है और दया, ममता, करुणा आदि मूल्यों को समझता है। ये मूल्य व्यक्ति के स्वभाव के अंग होते हैं जो आवश्यकतानुसार प्रकट होते रहते हैं और इस बात का लेखा जोखा नहीं करते कि उन्होंने कितने लोगों का कल्याण किया अथवा कितने जीवन को सहेजा। इस पीड़ादायक वस्तु को मिश्रजी ने व्यक्त किया है। यथा-

"जीना चाहिए सहज

बनना चाहिए मगर बड़ा नहीं

आदमी का बनना असल में

उसकी रुचियों का बनना है

दया और करुणा और ममता

कोई ऐसी चीज़ें नहीं हैं

जिन्हें हम मुट्ठी में धरे

या जेबों में भरे फिरें

और फेंके जहाँ-तहाँ लोगों पर।"[103]

3.2 वस्तुपरक काव्य :

3.2.1 सामाजिक दर्शन :

अध्याय एक में विश्लेषित किया गया है कि-संपूर्ण मानव जीवन तत्कालीन सामाजिक एवं राजनीतिक गतिविधियों से प्रभावित होता है। अतयव राजनीति से कला

---

[102] चकित है दुःख-पृ.29

[103] खुशबू के शिलालेख-पृ.97

को पृथक नहीं किया जा सकता। भवानी प्रसाद मिश्र की काव्य चेतना सामाजिक दर्शन और जनजीवन को आधार बनाकर चली है। उसमें एक जीवंत संवेदनशीलता है जो बाह्य वस्तु को ग्रहण करती हुई कवि की मानसिकता को सजाती है। इस अभ्यांतरीकरण के बाद ही अभिव्यक्ति की स्थिति आती है। काव्य में "चूँकि अभ्यांतरीकरण जीवन दृष्टि प्रकट होती है, इसलिए जब तक कि रचनाकार बाह्य अनुरोधों और आग्रहों को स्वीकार करके उनमें प्राप्त सत्यों के अनुसार जीवन का अभ्यंतरीकरण नहीं करता तब तक वह जीवन दृष्टि से अर्थात उन अनुरोधों और आग्रहों को अंतर में स्थान देकर उनकी क्रियाशील शक्ति से अनुभूति जीवन को काव्य में लयात्मक रूप से प्रकट नहीं कर सकता।"[104] मिश्रजी एकांत वैयक्तिकता के विरोधी हैं। वे व्यक्ति को एकांतिकता, निराशा और अनास्था से निकालकर समाजोन्मुख और व्यापक धरातल पर प्रतिष्ठित करने के आकांक्षी हैं। मुक्तिबोध ने मिश्र जी की कविताओं के लिए लिखा था-"मिश्र की शैली अभ्यांतर को बाह्य बनाकर चलनेवाली शैली है।"[105] उनके काव्य में चतुराई का वितान नहीं है। उनकी "वाणी की दीनता" व्यक्ति के जीने की लालसा और क्षमता को पहचानती है तथा यथार्थ से प्रेरणा लेकर युगानुरूप स्वस्थ विषय-वस्तु को समेटकर व्यक्त होती है। वे वस्तुतत्व को प्रमुखता देते हैं और साथ ही लोकतत्वग्राही हैं। कवि ने अनुभवों को निचोड़ा है इसलिए उनका काव्य जनसामान्य का काव्य है। मिश्र जी जीवन में पूरी तरह उतरते हैं-"घाट से हाट तक, हाट से घाट तक" क्योंकि निष्क्रियता उन्हें पसंद नहीं। उनका मत है कि-"समस्टि को जीने से, सहने से जीता है आदमी।" इसलिए वे हर पीछे आने-जाने वाले का सम्बल बनकर एक तीर्थ यात्री का उत्साह निभाना चाहते हैं। वे कई रचनाओं में आत्मस्थ दिखलाई देते हैं किंतु सामाजिक वैषम्य, शोषण, युद्ध संकट आदि स्थितियों से अनभिज्ञ नहीं। उनका कवि-कर्म अपने सामाजिक दायित्व को भली-भांति जानता है। वे सामाजिक चेतना की प्रशस्त भूमियों की ओर हमें उन्मुख करते हुए यह सिद्ध करते हैं कि समष्टि से जुड़कर ही व्यक्ति की सत्ता है। प्रेमशंकर रघुवंशी ने ठीक ही लिखा है कि-"मिश्र जी की संपूर्ण साधना एक ऐसे समन्वय की खोज है जिसमें व्यक्ति समष्टि के लिए समर्पित होकर भी अपनी इयता को सुरक्षित रखता है और सबके

---

[104] फिलहाल:अशोक वाजपेयी-पृ.18

[105] भवानी प्रसाद मिश्र के आयाम-पृ.223

लिए जीते हुए भी अनासक्त रहता है। गीता की भाषा में कहा जाए तो यह "कर्म में अकर्म" की साधना है।"[106] मिश्र जी की काव्य चेतना कहीं भीड का अंग नहीं बनती और भीड़ की उत्तेजनाओं में अपना संतुलन ओर चिंतन नहीं खोती। उन्होंने स्पष्ट कहा है "मेले में अभी नहीं संभव है कभी नहीं।" निस्संदेह विविध रूपों में सामाजिक आशय और व्यापक मानव दृष्टि उनके काव्य में विषय-वस्तु बनकर प्रतिफलित हुई है। यथा-

"कलम अपनी साध,
और मन क्की बात बिलकुल ठीक कह एकाध।
... ...
जिस तरह हम बोलते हैं उस तरह तू लिख,
और इसके बाद भी हमसे, बड़ा तू दिख।
... ...
तू जिसे छू दे दिशा कल्याण हो उसकी,
तू जिसे गा दे सदा वरदान हो उसकी।"[107]

3.2.2 राजनीति एवं पूंजीवाद :

राजनीति एक युगीन सच्चाई है। मिश्र जी के काव्य को युगीन माना जाता रहा है। राजनीति को एक सांस्कृतिक सच्चाई मानने की स्थिति आजकल विलुप्त हो गई है। मिश्र जी के लिए राजनीति जहाँ आवेगात्मकता का आश्रय रही है, वहीं विचारपरकता के लिए भी उसे सराहा गया है। राजनीति को राज्य से जोड़कर ही देखा जाना चाहिए। राज्यों का पारस्परिक संघर्ष ही वर्तमान में तनाव पैदा करता है। रसेल का कहना है-"राज्य का यह स्वभाव है कि जहाँ वह भीतरी हिंसा का प्रतिरोध करता है, वहाँ बाहर उसका प्रसार होता है। अपनी सीमा के भीतर राज्य, व्यक्तियों को संघर्ष तथा हिंसा करने से रोकता है, किंतु जब बाहर युद्ध करने का प्रश्न आता है तो उसे विशेष हिचक नहीं होती।"[108]

अध्याय एक में मार्क्सवादी वस्तु विवेचन में स्पष्ट किया गया है कि-साहित्य का राजनीति से घनिष्ठ संबद्ध रहा है। यह संबंध स्वतंत्रता के पूर्व भी घनिष्ठ रहा और

---

[106] भवानी भाई-पृ.60
[107] गीतफरोश-पृ.1
[108] संस्कृति का दार्शनिक विवेचनःडॉ.देवराज-पृ.403 पर उद्धृत

स्वतंत्रता के बाद भी। राजनीति प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों प्रकार से व्यक्त और समाज को प्रभावित करती है। बहुत बार राजनीति के प्रभाव से व्यक्ति और समाज के मूल्य भी परिवर्तित होते जाते हैं। शशि सहगल के अनुसार-"नये कवियों के एक बहुत बड़े वर्ग ने स्वतंत्रता आंदोलन को करीब से देखा और झेला था। फलस्वरूप ब्रिटिश सत्ता के अमानवीय अत्याचारों तथा राजनैतिक दमन चक्र को वे भूल नहीं पाये। समय की आवश्यकता के साथ-साथ राजनीतिक मूल्य बदले। नये कवियों ने इन्हें पहचाना, स्वीकारा और कविता में ढाला।"[109]

भवानी प्रसाद मिश्र स्वतंत्रता पूर्व तथा बाद की राजनैतिक गतिविधियों को न सिर्फ देखा है, बल्कि भोगा भी है। परतंत्रता से लेकर स्वातंत्र्योत्तर युग तक की स्थितियों को चित्रित करने में कवि सफल रहा है। हम में पश्चिम से राजनीति आदि उधार लेकर जीने की प्रवृत्ति मूलतः प्रबल होती गई है। यहाँ तक कि हमने जीवन-दर्शन भी वहीं से उधार लिए हैं। ऐसा करते हुए हमने यह नहीं सोचा कि आरोपित जीवन दर्शन हमारे जीवन के अनुकूल नहीं है। यही नहीं जब-जब कवि ने शासन को लोक कल्याण की भूमिका से विलग होते देखा तब-तब रद्दी और कमीने शासन के प्रति आवाज़ उठाई है। आज आज़ादी और प्रजातंत्र के बाद भी शोषण की प्रक्रिया कम नहीं हुई। ऐसे शासन के प्रति कवि निर्भीक होकर विषय-वस्तु को विवेचित करता है-

"यह पूंजीवादी जगत और ये साम्यवाद के दीवाने
सौ-सौ ढंगों से उसे चूसते चलते हैं
हर रोज़ नये नारे उठते हैं जोरदार
हर रोज उसे नये ढंग से छलते हैं।"[110]

*　　*　　*　　*　　*

"कितने ख्याल हैं सब के सिर पर हुक्काम का आसन है
जो जितने अच्छे शब्दों से था शुरू हुआ
वह उतना रद्दी और कमीना शासन है,
हर अच्छे और बुरे शासन ने फौजों के अम्बर लगाकर रखे हैं

---

[109] नयी कविता में मूल्यबोध: शशि सहगल-पृ.115
[110] गांधी पंचशती-पृ.162

...   .

इन हुक्कामों के मुंह में बेशक राम बगल में छुरिया है।"[111]

वस्तुतः कवि अपनी कविता के माध्यम से स्वार्थांध व्यवस्था की पोल खोलना चाहता है। क्योंकि वे धीरे-धीरे साहित्य, समाज और संस्कृति को भी विकृत कर देते हैं। बहुत बार साहित्यकार व्यवस्था के दबाव में अपनी कलम बेचता है। कलाकार की इस लाचारीपन जैसे विषय-वस्तु को कवि यों व्यक्त करता है-

"ग्राहक की मर्जी, अच्छा जाता है,
या भीतर जाकर पूछ आइए आप,
है गीत बेचना वैसे बिलकुल पाप,
क्या करूँ मगर लाचार
हार कर गीत बेचता हूँ।"[112]

आज प्रजातांत्रिक युग में भी नेताओं द्वारा विस्थापितों को छला जा रहा है। अतः आधुनिक युग की इस चेतावनी भरी वसतु को व्यक्त करते हैं। यथा-

"पांवडे की तरह बरत कर
प्रजा को तब भी उन्होंने अपने को
प्रजातंत्रीय माना था और धूल झाड़ते हुए उसकी
कालीनों की तरह अब भी मान रहे हैं अपने को
प्रजातंत्रीय।"[113]

भारतीय राजनीति को विद्रुपताओं से कवि हमें परिचित करना चाहता है, क्योंकि प्रजातंत्र के युग में भी प्रजा का अधिकार छीना जा रहा है। सत्ता के विरोध में आवाज़ उठायी, कि सजा दी जा रही है या किसी आतंकवादी संघटन से जोड़कर जेल में बंद किया जाता है। शासन प्रेम से अनुशासन की स्थिति नहीं उत्पन्न करता बल्कि आतंक के माध्यम से अनुशासन को हम पर आरोपित करता है ताकि विद्रोह न कर सकें। यथा-

"कैसा मजा है

---

[111] गांधी पंचशती-पृ.162
[112] गीतफरोश-पृ.119
[113] त्रीकाल संध्य-पृ.119

मुंह खोल भर कि तैयार कोई सजा है।

दुःशासन को अनुशासन-पर्व कहो तो ठीक

पुलिस और सेना की क्रूरता पर गर्व करो तो ठीक।"[114]

एक दिन मिश्रजी को "साप्ताहिक हिंदुस्तान" के विभागीय संपादक शुभा वर्मा ने बच्चों के लिए कविता मांगी थी। निड़र कवि बाल कविता में भी तत्कालीन राजनीति के भ्रष्टता पर तिखा व्यंग्यात्मक कविता लिख कर भेजा था। मिश्रजी अपने आपको इस कविता के ऋणी महसूस करते हैं ताकि इस कविता की विषय वस्तु के चलते मिश्र जी बुलंदी पर पहुंच गये थे। यथा-

"बहुत नहीं थे सिर्फ चार कौए थे काले

उन्होंने यह तय किया कि सारे उड़नेवाले

उनके ढंग से उडें, रुकें, खायें और गायें

वे जिसको त्यौहार कहें सब उसे मनायें।

... ...

हंस मोर चातक गौरयें किस गीनती में

हाथ बांधकर खडे हो गये सब विनती में

हुक्म हुआ, चातक पंछी रट नहीं लगायें

पिऊ-पिऊ को छोडें कौए-कौए गायें।"[115]

भवानी प्रसाद मिश्र की कविता में मानवीय आस्था और जिजीविषा के तत्व तो हैं ही। "ऐसा भी समय था" कविता में लोकनायक जयप्रकाश नारायण के विराट व्यक्तित्व को बिना नाम लिए रूपायित करते हुए तत्कालीन राजनीति एवं भारत के दुर्दशा को "अनाम तुम आते हो" में विश्लेषित किया है। यथा-

"विश्लेषण से परे

तुम्हारे व्यक्तित्व को

सोचता हूँ

तो सामने

---

[114] त्रीकाल संध्य-पृ.120

[115] त्रीकाल संध्य-पृ.9

क्षीण देह में

विराट खड़ा हो जाता है

तुम्हारे रहते हुए

क्या-क्या हो रहा है

इसे घुमाता हूँ मन में

तो मेरी आँखों में

देश का दुर्भाग्य

पहले से भी बड़ा हो जाता है।"[116]

आधुनिक युग में जीवन की भौतिक सुख-सुविधाओं का सर्वोपरि महत्व हो गया है। इन्हें पाने के लिए अंधाधुंध दौड़ मची है। भौतिक सुख समृद्धि की खातिर आम आदमी की बलि भी दी जा रही है। स्वयं राजनीतिक वर्ग यदि इस शोषण की राह से स्वयं को विमुख कर कर्म की राह पर अग्रसर होने पर ही समाज सही दिशा को अपना सकेगा। इसी प्रसंग पर मिश्र जी राजनीतिक विषमताओं का विषय वस्तु बनाकर अभिव्यक्त किया है। यथा-

"हे राजपुरुष, ऐसी सुविधा संभव कर दो

आलस्य झूठ रिश्वतखोरी की गति हर दो

ये आज छलांगे भरते हैं

और इनकी अंधाधुंध गति में पथचारी केवल मरते हैं

हंसिया खुरपी चरखा चक्की हल और बखर

हथियार विषमता खोने को लाचार न हो

हे रामपुरुष गद्दी तकिये टेबल कुर्सी दवात कलम

इन स्नेह भरे आदानों पर ही भार न हो।"[117]

वर्तमान शासन के प्रति कवि तीव्र असंतोष व्यक्त करता है। क्योंकि यह शासन व्यवस्था जनता को और अधिक निर्बल बनाता जा रहा है। यथा-

"मैं सोच रहा हूँ उदयाचल से अस्ताचल तक

[116] अनाम तुम आते हो-पृ.43

[117] गांधी पंचशती-पृ.203

फैली हुई भयंकरता पर कैसे नाजिक नूर करूँ
कितने खयाल हैं सब के सिर पर हुल्लडों का आसन है
जो जितने अच्छे शब्दों से था शुरू हुआ
वह उतना रद्दी और कमीना शासन है।"[118]

सौंदर्य यौवन, ऐशो आराम हर राजसत्ता से जुड़े हुए हैं। किंतु इन सभी का महत्व अशोक ने गौन माना है। मिश्र जी इमानदार और निर्मल राजनेता की विशेषताओं को इस तथ्य के द्वारा स्पष्टीकरण कवि क्षण के माध्यम से किया है। यथा-

"यौन बेला में वसंत के
मधुमय क्षण सिमटे आते थे
सुरभित शतदल कुंज
भ्रमर दल उनके आस-पास गाते थे।"[119]

इन सारी स्वच्छंद स्थितियों का राजा अशोक पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। अतः कवि राजा अशोक के माध्यम से अन्य सत्ताधारी शासकों को तीखी चुभन और मीठी चुनौती देना चाहता है। इस चुभन का मूल कारण है-सामाजिक राजनीतिक प्रतिबद्धता। वे कहते हैं-

"अन्नहीन पेटों में दाने
वस्त्रहीन देहों पर धागे
हमने नहीं जुटाये तो हम
राजा होकर निपट अभागे।"[120]

राजनीतिक जीवन की कुत्सित गतिविधियों पर भी कवि की दृष्टि केंद्रित हुई है। माँ का मुकुट हिमालय कहना तो सरल है किंतु उसे हमने सही वैभव दिया नहीं। नेता बनकर माँ के चरण पखारने की बात केवल शाब्दिक है क्योंकि भूखमरी, कंगाली, दरिद्रता अपना नग्न रूप दिखला रही है। हमारे लाखों कंकाल एक कलंक है शश्य श्यामला माँ के लिए, गीत गाने से कुछ नहीं होता क्योंकि ये तो बिके हुए गीत हैं, मरने

---

[118] गांधी पंचशती-पृ.12
[119] कालजयी-पृ.56
[120] कालजयी-पृ.61

वालों की आहों को पहले समझना होगा। भ्रष्ट राजनैतिक वादों के वाद में केवल सपने दिखाकर गुल हो जाते हैं। अतः इस वस्तु का विवेचन-

"मेरी शस्य श्यामला माँ के,
बेटे भूख लिए बैठे हैं,
कभी संजीवन मूर मिली थी,
अब तो जहर पिए बैठे हैं।"[121]

राजनेताओं के इस ऐशोआराम जीवन एवं उनके पाखंडता पर कवि यथार्थ को विश्लेषित करता है। यथा-

"बैठकर खादी की गादी पर ढलती हैं प्यालियाँ
और अब चढ़ जाता है नशा
भाषण होते हैं अंग्रेज़ी में गांधी पर
जोर-जोर से बजती हैं तालियाँ।"[122]

3.2.3 सत्य और अहिंसा :

सत्य और अहिंसा तत्वों का मूलाधार, संसार के सभी मानव तथा प्राणियों से प्रेम तथा इमानदारी की भावना है। जैनेंद्र ने "अकाल पुरुष गांधी" पुस्तक में लिखा है-"उस ध्येय को मानने से जो व्यवहार धर्म प्राप्त हो जाता है उसी का अंगीकरण है, अहिंसा।"[123] अध्याय दो में युगीन परिप्रेक्ष्य के अंतर्गत गांधी दर्शन का विवेचन किया गया है। यथा- गांधी जी चाहते थे कि सत्य के लिए यदि संघर्ष करना पडे तो भी करना चाहिए, किंतु शांति से। "उन्होंने अहिंसा को सदाचार न मानकर संपूर्ण जीवन का आदर्श माना है। अब तक अहिंसा धर्म का एक अंग मानी जाती थी। गांधी जी ने इसका प्रयोग राजनीति में करके तथा अपने इस हथियार से ब्रिटिश शक्ति को झुकाकर एक नई दिशा दी। यही उनकी सबसे बड़ी विशेषता थी।"[124] अतः गांधीजी ने अहिंसा को अपनाकर राजनैतिक विजय तो पायी, साथ ही सामाजिक दायित्व भी निभाया है। "गांधी दर्शन का यह प्रबल

---

[121] गीतफरोश-पृ.60
[122] भवानी प्रसाद मिश्र के आयाम-पृ.255
[123] भवानी प्रसाद मिश्र : व्यक्तित्व एवं कृतित्व-पृ.110 पर उद्धृत
[124] कन्हैयालाल कोचर : गांधी दर्शन-पृ.66

सिद्धांत है कि सत्य अहिंसा और न्याय का आधार आध्यात्मिक ज्ञान और तजन्य प्रेरणा है। मनुष्य जीवन का उद्देश्य सांसारिकता से मुक्ति पाकर आध्यात्मिक सुख को प्राप्त करना है। इसी उद्देश्य को दृष्टि में रखकर गांधी विचारधारा समाज की आर्थिक सामाजिक और राजनैतिक अव्यवस्था का संतुलित रूप तैयार करना चाहती है।"[125] इसी उद्देश्य को लेकर गांधी ने समाज के हित के लिए विविध कार्य किए-सर्वोदय, ग्रामीण उद्योग, खादी, चरखा, गोरक्षा, सांप्रदायिक एकता, दलित उद्धार, अन्य अनेक कार्यों में वे सहभागी हुए। इन सारे क्षेत्रों में वे आये और गए, केवल देशप्रेम और राष्टप्रेम के कारण।

आज का युग भौतिक युग है। गांधी के सभी तत्व आज शेष नहीं है। फिर भी यह दावा है कि गांधी तत्व साहित्य में आज भी विद्यमान है। जैनेंद्र ने "अकाल पुरुष गांधी" पुस्तक में लिखा है-"गांधीवाद के परिक्षण का यह काल कितने दिन चलेगा यह कहना कठिन है। परीक्षा तो तीखी होगी। पर गांधी का नाम जिन तत्वों का बोधक है, वे तत्व रहेंगे भी नहीं। कसौटी पर वे खरे उतरेंगे और ज्यों-ज्यों दमन बढ़ेगा त्यों-त्यों गांधीवाद की लपटें फैलेंगी। मेरी अपनी धारणा है कि वह विश्व के इतिहास में एक नया युगारंभ होगा। एक आध्यात्मिक दूसरा भौतिक। गांधीवाद इस समय वाद नहीं रहेगा, वह सत्य धर्म हो जायेगा।"[126] गांधी तत्व साहित्य समाज और संस्कृति को अधिक प्रभावित किए हुए हैं। आज के विविध वादों के संघर्ष में गांधीवाद के महत्वपूर्ण तत्वों को गौण करने की चेष्ट की जा रही है, फिर भी उसका साहित्य क्षेत्र में महत्व निर्विवाद बना रहेगा। गांधी के इस सत्य हिंसा तत्वों के विषय वस्तु की उपेक्षा किए जाने पर बढ़ते सामाजिक विषमताओं की ओर मिश्र जी ने इशारा किया है। यथा-

"चारों तरफ से उठनेवाली
भ्रष्टाचार की आँधियाँ
चरित्रहीनता के आकर्षण
तनिक भी नहीं हिला पाये उसके अस्था-वटवृक्ष को
लोग गांधी को भूलते जा रहे हैं यह जानते हुए भी

[125] डॉ.अरविंद जोशी : हिंदी साहित्य पर गांधी विचारधारा का प्रभाव-पृ.57
[126] भवानी प्रसाद मिश्र : व्यक्तित्व एवं कृतित्व-पृ.111 पर उद्धृत

वह गांधी गांव-गांव सुना रहा है प्रेम की सहज बानी।"[127]

कवि सत्य अहिंसा को जीवनोपयोगी बनाने पर जोर देता है। उनका आशय है कि इन्हें दो आंखों के रूप में देखें तो मानव-जीवन में खुशियाँ नाचने लगेगी। यथा-

"सबल प्राण मन निर्मल आँखें
सत्य अहिंसा हो दो पाँखे
तो आकाश नीड़ बन जाये
झंझा नाचे गर्जन गाये।"[128]

भवानी प्रसाद मिश्र ने स्टालीन के जन्मदिन पर हिंसा से संबंधित खरी खोटी सुनाई है, जिसने आज भी कई देशों पर अपना असर छोड़ रखा है। हिंसा के डर से आज भी दुनिया रो रही है। कवि के निगाह में मानवता का जितना हाल हुआ है वह हिंसा के कारण वे कहते हैं इतने पर भी कुछ स्वार्थी तत्व आज भी तुम्हारी कीर्ति गाते हैं। कवि को आश्चर्य होता है कि गौतम बुद्ध, गांधी के देश में स्टालीन की हिंसात्मक विचारधारा के लोग समर्थक कैसे हुए। अतः इस हिंसात्मक वस्तु पर कवि एतराज जताता है। यथा-

"मेरे देश में भी आज तुम्हारी कीर्ति कई तरह से गाई जा रही है
और मैं हैरान हूँ कि जहाँ गांधी पैदा हुआ
वहाँ एक भी आदमी स्टैलिन पर कैसे शैदा हुआ।"[129]

भवानी प्रसाद मिश्र के अहिंसा परक चिंतन पक्ष पर डॉ.संतोष कुमार तिवारी ने ठीक लिखा है कि-"मिश्रजी की रचनाओं में निश्चित ही बौद्धिक संतुलन है, वे आदर्श की बोझिल बातें नहीं कहते बल्कि एक संवेदनशील कवि के नाते जो मर्म को सहज स्पर्श करता है उसे अभिव्यक्ति देते हैं।"[130] वर्तमान जीवन की भयावह विषमताएँ जीना दूभर कर दिया है। कवि वर्तमान परिप्रेक्ष्य का सही विश्लेषण अपनी रचनाओं में दे सका है। आज हवा में हिंसा का जलन है, आसमान की बुलंदी खत्म है, स्वयं प्रकाश सत्य के अभाव में अंधेरे में डूब रहा है। हृदय की कलुषताओं, शोषण की प्रवृत्तियों और छल प्रपंचों के आघातों ने उत्पीड़न और दैन्य की स्थिति पैदा की है। जीवन की अहिंसात्मकता

[127] दिनकर सोनवलकर:गांधीमार्ग-पृ.15
[128] गांधी पंचशती-पृ.395
[129] गांधी पंचशती-पृ.205
[130] भवानी प्रसाद मिश्र की काव्य-यात्रा-पृ.82

नष्ट हो गई है, सवेरा होकर भी पक्षियों का चहकना बंद है। देश स्वतंत्र है, सत्य, अहिंसा और पंचशील के सिद्धांतों की दुहाई दी जाती है किंतु यह हवा वृक्षों तक को उदास किए हुए हैं। इस वर्तमान के "आज" के हिंसात्मक परिवेश के वस्तु को अभिव्यक्ति दी है। यथा-

"आज हवा यों चल रही है
जैसे किसी से जल रही है
पत्ते उसे छूकर
खुश नहीं लगते!
यह कैसा सबेरा हो रहा है आज
कि पंछी
किरण और हवा के जगाये नहीं जगते।"[131]

भवानी प्रसाद मिश्र ने अहिंसा को विषय-वस्तु बनाकर "कालजयी" खंड काव्य की रचना की है। राजा अशोक के द्वारा अपनाए गये अहिंसात्मक सिद्धांत उनका अंग बन गया है। मिश्र जी आज के युद्ध परक भयानक पार्श्व भूमि की स्थिति देख कर आशा की है कि राजा अशोक ने चतुर बुद्धि से बिना रक्तपात के मात की थी। बिना किसी हिंसा के बातों ही बातों में तक्षशिला का विद्रोह दमन किया था। अतः मिश्रजी ने इसी अहिंसात्मक आयाम को विश्लेषित किया है। यथा-

"शासन की बागडोर
उसने संभाली और
भाव विद्रोह का
भड़का नहीं, चुका रहा।
चमत्कार ऐसा अगर
संभव है सुमति के बल पर।
कौन जाने क्यों नहीं
रुकते हम ऐसे फल पर।"[132]

[131] गांधी पंचशती-पृ.75
[132] कालजयी-पृ.56

संस्कृति और समाज के प्रति कवि ने तीव्र आत्मीयता दर्शायी है। क्योंकि इस संस्कृति ने अहिंसा शांति को ही धर्म माना है। इस भव्य संस्कृति के जनक सम्राट अशोक बने। अतः कवि ने इस अहिंसात्मक धर्म को वस्तु बनाकर लिखा-

"भारत के लोग
गये बाहर
लेकिन सेना लेकर न गये
वे जहाँ गये इसलिए
प्रेम के पौधे
पनपे नये-नये।"[133]

3.2.4 ग्रामीण, शहरी संस्कृति :

दैनिक व्यवहार में ऐसे कई शब्द होते हैं जो व्यहृत होते हुए भी किसी निश्चित अर्थ को संप्रेषित नहीं करते। वे भव्य प्रतीत होते हैं, सरल भी लगते हैं किंतु वे वस्तुतः क्या है? पूछने पर कोई उत्तर नहीं मिलता। मिलता भी है तो अस्पष्ट भ्रम उत्पन्न करनेवाला। संस्कृति शब्द भी ऐसे ही शब्दों में गिने जाना चाहिए। दिनकर का एक लेख- "संस्कृति क्या है? इस में वे आरंभ में ही एक अंग्रेज़ी कहावत को अपनी बात के समर्थन में उद्धृत करते हैं-"सभ्यता वह चीज़ है जो हमारे पास है, संस्कृति वह गुण है जो हममे व्याप्त है।"[134] साहित्य-क्षेत्र के विद्वान सीधे-सीधे प्रकृति से संस्कृति को जोड़ने का प्रयास करते हैं। डॉ.देवराज के अनुसार-"संस्कृति मानव जीवन की वह अवस्था है जहाँ उसके प्राकृत राग द्वेषों में परिमार्जन हो जाता है।"[135]

वस्तुतः संस्कृति अवधारणाएँ हैं। ठीक-ठीक कहा जाए तो वे मानव-व्यवहार और जीवन को समझने के लिए बनाई गयी है न कि संस्कृति कोई चीज़ है, या इंद्रियगम्य वस्तु। वह कुछ है (is) नहीं, किसी तैयार माल की तरह, कि उनका वर्णन निर्द्वंद्व से किया जाए।

[133] कालजयी-पृ.14
[134] रेती के फूल-पृ.121
[135] संस्कृति का दार्शनिक विवेचन-पृ.147

एक तरीका होता है शब्द की व्युत्पत्ति द्वारा उसे समझना। हिंदी में संस्कृति शब्द का अर्थ इस प्रकार से बताया गया है-"संशोधन करना, सुधारना, उत्तम बनाना, परिष्कार करना आदि कहा जाएगा।"[136] "अंग्रेज़ी के कल्चर शब्द में भी "एग्रीकल्चर" की धातु ही अनुस्यूत है याने वहाँ भी पैदा करना या सुधारना"[137] परिलक्षित होता है। इस प्रकार डॉ. गुलाबराय संस्कारों तक पहुंचकर, निष्कर्ष रूप से कहते हैं कि-"संस्कार व्यक्ति के भी होते हैं और जाति के भी, किंतु जातीय संस्कारों को ही संस्कृति कहते हैं। भाव वाचक होने के कारण संस्कृति एक समूह वाचक शब्द है।"[138] संस्कार बाह्य के आभ्यंतरीकरण द्वारा ही संभव होते हैं और इस प्रसंग में हजारी प्रसाद द्विवेदी की परिभाषा सर्वाधिक सटीक जान पड़ती है-"सभ्यता का आंतरिक प्रभाव संस्कृति है। सभ्यता समाज की बाह्य व्यवस्थाओं का नाम है, संस्कृति व्यक्ति के अंतर के विकास का।"[139]

संस्कृति को मूल्य रूप में मानकर ही यह जाना जा सकता है कि वह भौतिक अस्तित्व की रक्षा के लिए आवश्यक न होते हुए भी मानवीय व्यक्तित्व को समृद्ध बनाती है। मानव जाति के सृजनात्मक क्षेत्र में भाग लेने के लिए आवश्यक क्रिया समूह संस्कृति के अंतर्गत आते हैं। सृजनात्मक क्रिया-कलाप ही मानवीयता को समृद्ध बनाते हैं।

डॉ.बैजनाथ प्रसाद शुक्ल ने दो टूक शब्दों में संस्कृति की व्याख्या की है जो मिश्र जी के संदर्भ में अनुकूल जान पड़ती है। उनके अनुसार-"यह संस्कृति मानवीय या प्राकृतिक वातावरण से प्रभावित समुदाय विशेष के जीवन चिंतन और व्यवहार की आंतरिक प्रवृत्ति है, जो समाज द्वारा एक पीढ़ि से दूसरी पीढ़ि को हस्तांतरित होती रहती है और सामाजिक सदस्यों द्वारा अर्जित भी की जाती है।"[140]

भवानी प्रसाद मिश्र ने सांस्कृतिक विघटन की स्थितियों को तीव्रता से महसूस किया था। आज हमारे देश में भारतीय संस्कृति को धूमिल करने की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है, तथा जितनी यह प्रवृत्ति बढ़ रही है, उतना ही विदेशी संस्कृति का अंधानुकरण करने की प्रवृत्ति बलवती हो रही है। इसका एक तो कारण यह है कि भारतीय संस्कृति

[136] कल्याण-हिंदी-संस्कृति अंक-पृ.24
[137] गुलाब राय: भारतीय संस्कृति की रूपरेखा-पृ.1
[138] भारतीय संस्कृति की रूपरेखा-पृ.1
[139] अशोक के फूल-पृ.181
[140] भगवती चरण वर्मा के उपन्यासों में युग चेतना-पृ.266

भौतिकता पर टिकी है। वैज्ञानिक युग के पदार्पण से इस गरीब देश की गरीब जनता में आध्यात्म पर आधारित संस्कृति के प्रति आस्था का कम होना और भौतिकवादी पाश्चात्य संस्कृति के प्रति आकर्शन का बढ़ना परिस्थिति सापेक्ष्य ही कहा जाएगा। लेकिन भारतीय समाज, विशेषकर शहरों में रहनेवाले, समाज ने बदलते संदर्भों में अपने आप को भौतिकवादी बनाने का प्रयास तो किया, पर इस दिशा में वह पूरी तरह सफल नहीं हो सका। वह पूरी तरह तो, आध्यात्म को छोड़ सका, न पूरी तरह भौतिक ही बन पाया। एक प्रकार से उसका जीवन विसंगत बन गया। मिश्र जी इस अंधी दौड में अपने को शामिल नहीं कर पाया। भारतीय संस्कृति के प्रति कवि आस्थावान है।

शहरी सुविधाभोगी जीवन के प्रति आकर्षण बढ़ता जा रहा है। सुविधाओं में ही शांति की तलाश हो रही है। भौतिक सुख की चाहना बिना अर्थ के पूरी नहीं होती। शहरी आदमी इसीलिए बेतहासा पैसे के फेर में पूरी तरह फॅस गया है। लेकिन यही बात उसमें अधिकाधिक असंतोष बढ़ा रही है। अपने असंतोष को भूलने का अब उसके पास सिर्फ एक ही माध्यम रहा है, व्यवसाय में लगे रहो, हमेशा व्यवसाय की सोचो और खूब-धन बटोरो। इसमें फॅसकर अब उसका न मन स्वस्थ है, न तन। क्योंकि उसके जीवन में सार्थकता की गुंजाइश ही नहीं रही है। कवि इन्हीं परिस्थितियों के विषय-वस्तु बनाकर निम्नलिखित पंक्तियों में स्पष्ट करता है-

"इस बड़े मकान में मरके क्या होगा
बैंक में रुपया धर के क्या होगा
क्या होगा। सुबह शाम बगीचे की हवा से
क्या होगा इतनी महंगी दवा से
क्या होगा उड़ते रहने से
क्या होगा तुम्हारे आंगन में मेरे जुड़ते रहने से,
मारे मारे फिरते रहना व्यर्थ है।"[141]

कवि शहर की जिंदगी को जीते हुए स्वयं को अजनबी महसूस कर रहा है। गांव से दूर रहकर भी वह स्वयं को गाँव में ही महसूस करता है। शहरी संस्कृति की आपाधापी

---

[141] चकित है दुःख-पृ.82

में जब-जब वह संत्रस्त होता है, तब-तब कवि को अपने गाँव की याद सताने लगती है। अब उसे महसूस हो रहा है कि गाँव में कीचड़, धूल के रूप में गंदगी जरूर दिखाई देती है शहर में इस तरह की गंदगी भले ही न हों, यहाँ के लोग साफ-सुथरे दीख पड़ते हो और सड़कें धुली-धुली साफ-सुथरी, लेकिन इस शहरी आदमी में मानसिक स्तर पर वैसी निर्मलता नहीं जो ग्रामीण व्यक्ति में होती है। सच तो यह है कि इस आदमी का मन स्वस्थ नहीं है। यहाँ हर आदमी केवल अपने हित की बात करता है। कहीं कोई मानवीय संवेदना नहीं। भीतरी संसार मात्र छल-कपट से भरा पूरा है। इसीलिए गाँव की जिंदगी कवि को शहरी जिंदगी की तुलना में कहीं अधिक मूल्यवान प्रतीत होती है। इन सारी विषय वस्तु को कवि सहज ढंग से विवेचित करता है। यथा-

"फाइलों की धूल, दोस्तों का उछला हुआ कीचड़
बसों का धुआँ, न यह ठीक नहीं हुआ
मुझे अपने गाँव में रहना था
वहाँ का धुआँ धूल कीचड सहना था।"[142]

*   *   *   *   *

रात गाँव की
गाँव के दिन की तैयारी का नाम है
शहर की रात जिंदगी विकीर्ण करने का
मुकाम है उन लोगों के लिए
जो दिन-भर कुछ न करके भी
बड़ा काम करने वाले माने जाते हैं।
सरताज जाने जाते हैं जो
शहरी संस्कृति और शहरी विकृति के।"[143]

इसी संदर्भ में उसे फिर गांव की याद आती है, जहाँ हर कर्म में मन का जुड़ाव होता है। बेमन से किया कोई भी कर्म वास्तव में निरर्थकता ही पैदा करता है। भारतीय संस्कृति मात्र कर्म का संदेश ही नहीं देती है। इसी संदर्भ में गाँव की गृहिणी की स्मृति में

---

[142] गांधी पंचशती-पृ.325
[143] अनाम तुम आते हो-पृ.107

कवि अनायास डूब जाता है, जो संध्या की बेला में मंदिर के घंटानाद को सुनकर बड़ी ही एकाग्रता से सांझबाती प्रज्वलित करने का प्रयास करती है। इस कर्म में कवि तन्मयता के वस्तु-तथ्य को लक्षित कर जीवन की सार्थकता को देखता है। यथा-

"गृहिणी संझा-बाती में लग जाती है
जरा और देर मंदिर घंटा ध्वनि
जग जाती है तब ठीक रात आती है
सूरज तब तक काली नीचे चला आता है
स्निग्ध एक वातावरण मन के भीतर
और बाहर छा जाता है।"[144]

इसके विपरीत शहरों में इस तरह की तन्मयता, स्नेह और शांति कवि को कहीं भी दिखाई नहीं देती। वही शाम है, जो गाँव की तरह शहर पर भी उतरी है, किंतु दोनों में विषय-वस्तु का कितना अंतर है। इसको कवि ने यूँ बताया है-

"शहर ही शाम से
इसका क्या वास्ता है रास्ता यहाँ का तो अब
दिन से भी ज्यादा व्यस्त है क्योंकि दलों में अब
पंछी नहीं आदमी लौट रहे हैं
और अब आकाश नहीं सड़क भी व्यस्त है
प्रकाश भी यहाँ उस क्षण से
ज्यादा ज्यादा बढ़ता जा रहा है
जब से सूरज अस्त है।"[145]

गांव की जिंदगी में परस्पर सौहार्द्र की भावना दीख पड़ती है। जबकि शहर में हर कहीं अपरिचय और अजनबीपन दीख पड़ता है। इस वास्तविकता का विवेचन यथा-

"भले है
मेरे गाँव की संकरी गली जहाँ लोग मिलते हैं
एक दूसरे से तो कहते हैं

---

[144] अनाम तुम आते हो-पृ.105
[145] अनाम तुम आते हो-पृ.106

भैया राम-राम विस्तृत पथों को

उन पर दौडते हुए रथों को क्या कहिए?

... ...

... ...

न हिचकते हैं वे

न लजाते हैं पदातियों को धूल से ढंककर

फेंक कर अपमान के उनपर फूल आगे निकल जाते हैं।"[146]

आज हम भारतीय अपनी आर्थिक उपलब्धियों के नाम पर लोगों को नगरों-महानगरों की ऊंची-ऊंची भव्य अट्टालिकाएँ दिखाते हैं। नगरों और महानगरों में क्या है। यहाँ लोगों को चीजें चाहिए, चीजें यानी पदार्थ। जड़ तो जड़ है ही, लेकिन चेतन भी जड़ पदार्थ की तरह, एक चीज़ की तरह जीकर ही रह सकता है। मिश्र जी इस वस्तु को बड़ी गंभीरता से कहते हैं-

"नगरों में

जहाँ के रहने वालों को सिवा चीजों के

कुछ नहीं भाता

जहाँ सिवा चीजों के

और कुछ नहीं आता

जहाँ का आदमी

सिवा चीजों के

और किसी चीज को

नहीं गाता।"[147]

नगरों में संवेदनहीनता और सोचने की गुंजाइश कहाँ कवि कहता है-

"क्योंकि रचनेवालों ने नगर

सोचने के लिए

रचे जो नहीं हैं

---

[146] परिवर्तन जिए-पृ.25

[147] भवानी प्रसाद मिश्र के आयाम-पृ.211 पर उद्धृत

मजे उड़ाने के लिए

रचे हैं।"[148]

अतः गांव की हैसियत को भवानी प्रसाद मिश्र बताते हैं-

"गांव तो पीढ़ी दर पीढी

उनके (शहरों) बंधुआ मजदूर हैं।"[149]

3.2.5 औद्योगीकरण, यांत्रिक उन्नति और मनुष्य के पारस्परिक संबंध:

भारत वर्ष को यंत्र क्रांति ने एक नया मोड़ दिया है। फलस्वरूप शहरों में उद्योगों की स्थापा हुई ज्यों-ज्यों उद्योगों का प्रसार होने लगा त्यों-त्यों ग्रामीण क्षेत्रों के लोग शहरों की ओर आकर्षित होने लगे। परिणामतः सामाजिक विघटन की विविध समस्याओं ने जन्म लिया। श्रमिक और पूंजीपति दो वर्ग बने। पूंजीपति के हाथों श्रमिक और नौकर वर्ग खिलौना बन गया। अतः मानवी मूल्यों का लोप धीरे-धीरे होता गया। कदाचित इसीलिए डॉ.शिवकुमार शर्मा ने कहा है-"आधुनिक विज्ञान ने मनुष्य की आस्था, विश्वास, करुणा और प्रेम जैसी चिरंतन भावनाओं को जोरदार अघात पहुंचा दिया है।"[150] अतः अधिकांश नये कवियों ने औद्योगीकरण तथा वैज्ञानिक उन्नति के विपरीत परिणामों का निषेध किया है, क्योंकि वैज्ञानिक आविष्कारों की उपयुक्तता के साथ-साथ अनेक विविध समस्याएँ भी उभरती हैं।

आधुनिक युग में मानव से अधिक शक्ति मशीनों की है। शशि सहगल के अनुसार-"मशीन संस्कृति से पूर्ण शक्ति, शौर्य, पराक्रम आदि मानव के लिए मूल्य थे, लेकिन सभी शब्द, सभी मूल्य उसके लिए अर्थहीन हो गये। क्योंकि वैज्ञानिक उपकरणों एवं मशीनी संस्कृति के सामने मनुष्य असहाय हो गया है।"[151] भवानी प्रसाद मिश्र जी मशीनी संस्कृति के प्रभुत्व को अस्वीकार करते हैं, क्योंकि औद्योगिक उत्पादनों की ओर मनुष्य आकर्षित होता जा रहा है। जबकि यह एक शोषण की प्रक्रिया है। आधुनिक मनुष्य

---

[148] भवानी प्रसाद मिश्र के आयाम-पृ.211 पर उद्धृत

[149] भवानी प्रसाद मिश्र के आयाम-पृ.211 पर उद्धृत

[150] हिंदी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ-पृ.528

[151] नयी कविता में मूल्य बोध-पृ.62-63

जिसे प्रगति कहता है, वह वर्तमान स्थितियों को समझ नहीं पा रहा है। इस तथाकथित प्रगति के संबंध में मिश्र जी के विचार हैं-"यह प्रगति नहीं है, आभास है प्रगति का।"[152]

औद्योगीकरण के जो भी प्रयास विश्व में हुए, उनका प्रयोजन तो यही था कि इसके माध्यम से मानव जीवन की समस्याएँ सुलझ सकें। यानी औद्योगीकरण और वैज्ञानिक उन्नति मात्र माध्यम थे और लक्ष्य था मानव। परंतु समय का चक्र उल्टा घूमता रहा, जिसके चलते लक्ष्य माध्यम बन गया और माध्यम अर्थात साधन लक्ष्य। मानवी जीवन एक ओर संवेदनाओं से सहित होता गया और दूसरी ओर यांत्रिक। कवि ने इस यांत्रिक विषय वस्तु को व्यंग्यात्मक ढंग से विवेचित किया है। यथा-

"वे इस हथौडे से
चाहे जैसा रूप देते रहते हैं चीज़ों को ही नहीं
तथ्यों और तमीजों को।"[153]

*   *   *   *   *

"इसलिए रात को इनका
यह हाल है जैसे सुबह उठे हैं खोकर ताज और खिले
चलेंगे अब इनके खेल और तमाशे के
सिलसिले सोये हुए गाँव की छाती पर।"[154]

भवानी प्रसाद मिश्र जी ने अपने काव्य में आधुनिक युग में औद्योगीकरण के बदलते तेवर तथा अनावश्यक चीजों के उत्पादकों का तीव्र निषेध करते हुए कहा है- "यह लोगों के शोषण हैं।"[155] मिश्र जी ने औद्योगीकरण, विज्ञान तथा टेक्नोलॉजी को मनुष्य की शक्ति से गौण माना है। क्योंकि इनके प्रादुर्भाव से, सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक समस्याएँ द्रुत गति से बढ़ रही है। आज का आधुनिक मान इस समस्याओं में अधिक उलझता जा रहा है। इस वस्तु को कवि कहता है-

"वह समाज को पूरी तरह
भूल जाता है

---

[152] व्यक्तित्व एवं कृतित्व-पृ.9
[153] अनाम तुम आते हो-पृ.107
[154] अनाम तुम आते हो-पृ.107
[155] भवानी प्रसाद मिश्र :व्यक्तित्व एवं कृतित्व-पृ.28

अपने लिए कारखाने खोलता है

दवाइयों में जहर घोलता है

अंबार लगाता है

अपने लिए पैसे के

बड़े-बड़े घर बनाता है

जो सचमुच में गमी है

उसे जश्न की तरह मनाता है।"[156]

वस्तुतः मिश्र जी एक मात्र औद्योगिक उन्नति में देश का विकास नहीं देखते, भले ही मशीनों के आविष्कार से मनुष्य की शक्ति गौण हो गयी हो, किंतु मशीनी शक्ति मानव के संकेतों पर ही चल सकती है। मानव निर्मित ये वस्तुएँ मनुष्य से बढ़कर नहीं हो सकतीं। कवि इस वस्तु को साधे ढंग से विवेचित किया है। यथा-

"कोई भी देश कोई भी समाज अपने घरों के बल पर टिकता है

कलों और कारखानों के बल पर नहीं

क्या बतायें हमारे गांव अब हमारे घर नहीं रहे

न हमको उनकी खबर है, न उनको हमारी

शहर हमारे घर हो गये हैं और ये हमारे घर

असंस्कृत हैं, भोंडे हैं, भद्दे हैं और इन में

न शील है, न समय न सादगी।"[157]

* * * * *

"कि हम

जो यंत्र हो गये हैं

फिर आदमी हो जायें

यंत्र न चलायें हमें हम चलायें उन्हें

आदमी को विवश करने की दिशा में नहीं

उसे एक प्रभुसत्ता देने की दिशा में।"[158]

---

[156] परिवर्तन जिए-पृ.39

[157] गांधी पंचशती-पृ.284

विज्ञान के आविष्कारों के मूल में अनेक प्रसंगों में आतंक की प्रवृत्ति काम करती देखी जा सकी है। इसके साथ-साथ एक और दुष्प्रवृत्ति व्यापक पैमान पर फैल रही है, वह यह कि मनुष्य समाज अपनी आज की जरूरतों की खातिर प्रकृति को नष्ट करता जा रहा है। ऐसा करते हुए वह यह नहीं सोचता कि प्रकृति का संतुलन बिगड़ रहा है। अनेक समस्याएँ उठ खड़ी हो रही हैं, आधुनिक मनुष्य भावी परिणामों का विचार न कर सिर्फ वर्तमान के प्रश्नों को सुलझाने में संलग्न है। अतः कवि इस विषय-वस्तु पर चिंता जताता है कि-

"सुनाई नहीं पड़ रही है तुम्हें
फैले हुए पेड़ों की आवाज़ कि हमें कोयला और कागज
बनाये जाने के लिए काटा जा रहा है
और अवर्षण की जीभ से इसलिए हमारा तुम्हारा समूचा प्राण
चाटा जा रहा है सुनाई क्यों नहीं पड़ते तुम्हें
कुल्हाडियों से हमें काटे जाने के खटके
ख़ुद तुम्हें अवर्षण की जीभ से
चाटे जाने के चटके
निरर्थक कारखानों की जगह अच्छे खासे खेतों का ख्याल
क्यों नहीं भाता तुम्हें।"[159]

कवि का विश्वास है कि प्रकृति मानव की रक्षा के लिए खड़ी है। उसे नष्ट करके जो वैज्ञानिक आविष्कार किये जा रहे हैं, वे अंततोगत्वा मानवी सभ्यता के लिए भयावह संकट सिद्ध होंगे। कवि कहता है-

"चंद्रमा शुक्र और मंगल
तो क्या रहेंगे हमारे इतने विज्ञान को
बेचारे मंगल वगैरा क्या सहेंगे सूरज का जरूर
कुछ नहीं कह सकते मगर तब तक कम से कम
तुम और हम तो नहीं रह सकते।"[160]

---

[158] संप्रति-पृ.30
[159] अनाम तुम आते हो-पृ.44

3.2.6 राजनीति : आदर्शों से पलायन :

"स्वातंत्र्योत्तर भारत में प्रथम आम चुनाव सन् 1952 ई. में हुआ। परंतु इस समय तक भारतीय राजनीति में पूंजीवादी प्रवृत्ति का सर्वव्यापी प्रचार हो चुका था। फलतः क्रय-विक्रय का धंधा चुनाव में भी प्रारंभ हुआ।"[161] इन्हीं परिस्थितियों का प्रभाव आज उत्कृष्ट ऊंचाई पर हुआ है। जन सेवा के नाम पर आज वोट मांगे जाते रहे हैं किंतु वास्तव में जनता के प्रति इन्हें कोई लगाव नहीं। धमकियों से आतंकित कर आज घटिया व्यक्ति भी चुनाव जीत रहा है। इस स्थिति को विषय-वस्तु बनाकर कवि व्यंग्यात्मक शब्दों से कह उठता है-

"यह ऐसी कहाँ की बड़ी थी कि वोट माँगने लगी
खिदमत की झाड़ू सब को दिखा-दिखाकर
नाक पर टाँगने लगी।"[162]

चुनाओं में झूठे नारे लगाकर जनता को आकर्षित किया जाता है। लेकिन चुनावों में विजयी हो जाने पर नेता वर्ग स्वार्थ में पूरी तरह डूबकर सामाजिक दायित्व की पूरी तरह उपेक्षा करने लगता है। और यही उसकी विद्रुपता का परिचय धीरे-धीरे जनता को होने लगता है। कवि इस स्थिति को सर्वत्र देख रहा है। साथ ही जनहित के नाम पर स्वहित में डूबे हुए इस वर्ग के स्वार्थों पर कवि व्यंग्य से कहता है-

"कोई पाँच साल बीते
बेचारे बेईमानी करके चुनावों में जीते
अब क्या जाने कभी चुनाव करवायेंगे या नहीं
अपने को चुनावों में हरवायेंगे या नहीं
सच्ची अपनी तसवीर दुनियाँ के सामने
धरवायेंगे या नहीं
फल गप कर लिए मीठे-मीठे
अब कभी खायेंगे कि नहीं फल तोते।"[163]

---

[160] परिवर्तन जिए-पृ.11
[161] गांधी पंचशती-पृ.
[162] त्रीकाल संध्या-पृ.122-123

चुनाव का तो मात्र नाटक किया जा रहा है। इसलिए कवि जनता को वर्तमान राजनीतिक स्थिति के प्रति सावधान करना चाहता है। क्योंकि वे प्रतिद्वंदी के आरोप-प्रत्यारोप के जाल में खोपड़ी खा रहे हैं झोपडियाँ यथावत हैं। इस वस्तु का विवेचन मिश्र जी इस प्रकार करते हैं-

"खोखले कुछ शब्द
ठोस कुछ धमकियाँ क्यों मियां इन्हीं को थामें हुए
घूमते रहोगे?
चूमते रहोगे अपनी
खाली और खस्ता खोपड़ी को यों कि वह सोचती नहीं है
उजड़ी हुई झोपडी को राज्यसभा की सीट के
ख्याल में?"[164]

नेता वर्ग के प्रति जनता में अनास्था बढ़ती जा रही है। यही नहीं बल्कि प्रचलित शासन पद्धति के प्रति भी उसमें पूर्णतः अनास्था उत्पन्न हो रही है। अतः राजनीतिक व्यवस्था आदर्शों से पलायन की इस स्थिति को देखकर कवि को फिर गांधी-दर्शन का स्मरण जरूरी प्रतीत होता है। वह देखता है कि वर्तमान स्थिति प्रस्यक्ष कृति में नहीं, कृति के नाटक में अधिक विश्वास रखती है। फलस्वरूप आम आदमी स्थितिशीलता के शिकंजे में फॅसा हुआ है। जब तक गांधी का मार्ग जो शांति, अहिंसा और प्रेम अवतरित नहीं होता तब तक बातें मात्र बकवास हैं।

आजादी के पूर्व भी देश में अनेक सांप्रदायिक दंगे, पाशविक घटनाएँ घटीं। अहिंसक क्रांति के बाद भारत आजाद हुआ। आजादी के बाद सामाजिक तथा आर्थिक मोर्चे पर देश की जनता जो सपने देख रही थी, उनके पूरे होने की संभावनाएँ समाप्त होती नज़र आईं। प्रजातंत्रीय युग में प्रजा का शासन होते हुए भी प्रजा को उपेक्षित किया गया। चुनावों में क्षुद्र, स्वार्थी तथा बेईमान नेता विजयी होने लगे। अतः भ्रष्ट नेतृत्व में जनता स्वयं को असहाय, पीड़ित अनुभव करने लगी। इस विषय वस्तु पर मिश्र जी ने स्वयं लिखा है-"हमारे जो परिस्थतियाँ हैं, उनसे देश का कोई छोटा आदमी हो, बड़ा

---

[163] त्रिकाल संध्य-पृ.122
[164] परिवर्तन जिए-पृ.79

आदमी हो, कोई संतुष्ट नहीं है।"[165] अतः इस पलायन वादी राजनीति से कवि देश के भयावह वस्तु स्थिति को विश्लेषित करते हैं क्योंकि यह वस्तुस्थिति देश के लिए गतिरोधक बन बैठी है। यथा-

"आज सोचता हूँ कि देश ही नहीं समूचा जगत त्रस्त है
रोटी कपड़े शांति व्यवस्था के अभाव में अस्त-व्यस्त है,
तरह-तरह के स्वार्थ घोंटते हैं देशों के गले रात दिन
उन्हों सोचना नहीं किंतु जो उसे क्या कहु यह मेरा मन
इसे शब्द की शक्ति बरतने का वरदान किया है जिसने
उससे मेरा यह कहना है
कब तक केवल हाय-हाय की धारा में हमको बहना है।"[166]

आज भ्रष्ट राजनीति में दलबदलू प्रवृत्ति का भी बोलबाला हो गया है। दल-बदल किसी निष्ठा या मूल की खातिर नहीं, मात्र अपने निहित स्वार्थ की खातिर किया जाता है। आश्चर्य यह है कि ये नेता नारों के बल पर आम आदमी की आँख में धूल झोंकने में सफल हो जाते हैं। यह वर्ग अपने निजी स्वार्थ के लिए या दलगत स्वार्थ की खातिर आंदोलन की आवाज़ उठाता है और जनता इन आंदोलनों में सक्रिय होकर स्वयं के प्रश्नों को तो नहीं सुलझाती, पर नेता वर्ग के प्रश्नों को अवश्य सुलझा देती है। कवि इस यथार्थपरक वस्तु पर यों प्रकाश डालता है-

"कि बेचारे लोग
लगभग मर जाते हैं उनके मारे
अपना सब कुछ भूल जाते हैं वे जुलूसों, में घिसटते हैं
भूल जाते हैं उसे जो सुना है उन्होंने गीतों में।"[167]

और कवि इन पलायनवादी राजनेता के विरुद्ध जनता को सचेत करता हुआ कहता है-

"मैं एक जिंदा आदमी

---

[165] भवानी प्रसाद मिश्र : व्यक्तित्व एंव कृतित्व-पृ.114 पर उद्धृत
[166] गांधी पंचशती-पृ.191
[167] परिवर्तन जिए-पृ.27

इस ऊंचाई से आवाज़ लगाऊँगा लाशों को जगाऊँगा
लाशें जायेंगी नये सिरे से इस देश की धरती को
शस्य श्यामला बनाया जायेगा।"[168]

*   *   *   *   *

"देश की पताका उनके हाथों से लेना
हमारा धर्म है या आपद धर्म है
हम इसे करेंगे।"[169]

3.2.7 नया जीवन :

अध्याय एक में बताया जा चुका है कि विषय वस्तु का चरित्र इस बात की सूचना देता है कि कवि के जीवन की परिस्थितियों और उनके दबाव के चलते कवि नयेपन के प्रति अग्रह को महत्वपूर्ण मानता है। देश की भयावह स्थितियों की ओर ध्यान केंद्रित करते हुए नये कवियों ने प्रथम उन विषय-वस्तुओं का विश्लेषण किया है जो समाज और संस्कृति के विकास में तथा नया जीवन-बोध देने में बाधक रहे हैं। नये कवियों को देश का भविष्य अंधकारमय दिखने लगा। वे भ्रष्ट नीतियों को पूर्णतः बदलना चाहता है। अतः स्थितियों के अनुसार अभिव्यक्ति भी बदलती रही। इस अभिव्यक्ति में नये कवियों ने परंपरागत तथा वर्तमान मूल्यों को नये दृष्टिकोण से देखते हुए मानवीय मूल्यों को स्थापित करने का प्रयास किया है। शशि सहगल ने ठीक ही लिखा है कि-"नये कवियों ने इस प्रकार की जीवन दृष्टि की खोज प्रारंभ की जो सार्थक हो, उनकी अपनी हो और उनके जीवन को कोई अर्थ दे सके। अर्थहीनता, धुरिहीनता और मूल्यहीनता से हटकर नया कवि ऐसे जीवन दृष्टि के निर्माण में लग गया, जिसमें मनुष्य की प्रतिष्ठा एक नये रूप में हो सके। वह आत्मग्लानि और आत्मपीडन जैसे कुंठाओं से मुक्त हो सके। "[170]

वस्तुतः समाज और संस्कृति के निर्माण और विकास में साहित्य का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। साथ ही साहित्य का मुख्य उद्देश्य विविध विषयों का अभ्यास करते हुए,

[168] त्रिकाल संध्या-पृ.28
[169] त्रिकाल संध्या-पृ.67
[170] नयी कविता में मूल्यबोध-पृ.72-73

सामाजिक तथा मानवीय मूल्य-वस्तु को स्थापित करना है। अतः साहित्य की यह खोज के बिखरे अंगों को सँवार सकती है। साथ ही समाज में प्रेरणा, आशा तथा उल्लास जगा सकती है। मार्क्सवादी समीक्षा में राजनीति को समाज का मूलाधार माना गया है बशर्ते साहित्य को भी राजनीति में अमूलचुल परिवर्तन लाने का आयाम स्वीकारा गया है।

भवानी प्रसार मिश्र सच्चे साहित्यकार हैं। उन्हें देश की मिट्टी तथा देश की जनता से गहरा लगाव रहा है। उन्होंने अपने साहित्य के माध्यम से देश में सामाजिक धैर्य तथा ऐक्य को स्थापित करने का प्रयास किया है। वे अंधेरे में भी उजाले की बात करते हैं, क्योंकि वे आस्थावान कवि हैं। उनकी दृष्टि केवल व्यक्तिगत नहीं रही, बल्कि सामाजिक और मानवतावादी रही है। डॉ.शिवकुमार मिश्र ने ठीक लिखा है-"भवानी प्रसाद मिश्र की कविता आस्था की कविता है, ठण्डी आस्था की कविता नहीं, वरन उस आस्था की, जो संघर्षों के बीच जीकर कवि ने प्राप्त की है। वह प्रतिबद्धता की कविता है अपने इंसानी दुःख दर्दों के प्रति एक प्रबुद्ध और संवेदनशील कवि की। क्योंकि वह जानता है कि आज की दुनिया में तटस्थ होकर जीना या तो नामुमकिन है या फिर वह ढोंग है।"[171] भवानीप्रसाद मिश्र ने अपने साहित्य के माध्यम से संसार को जीने का सही मार्ग दिखाया है। संघर्ष और दुख की स्थितियों में वह कहता है-"दर्द जब घिरे बहाना करो" किंतु यह भी पूरे दावे के साथ नहीं कह सकते कि मिश्र जी के जीवन में कोई निराशा नहीं थी। लेकिन आस्थावान कवि का काव्य अपने जीवन की निराशा, भय, दुखों को कम महत्व देता है। उसकी लेखनी अधिकतर जनता के सुख-दुख को व्यक्त करती हुई जीने का सही ढंग सिखाती है। अतः इस वस्तु का विवेचन-

"टूटती हुई साँस की डोर को
अभी जितना लंबा खींच सके
खींच
सींच चुका है तू
वृक्ष को अपने पसीने से
अब अपने खून से सींच।"[172]

---

[171] भवानी भाई:प्रेमशंकर रघुवंशी-पृ.29 पर उद्धृत
[172] शरीर कविता और फसलें-पृ.62

अक्सर लोग अहं के चलते पतभ्रष्ट हो जाते हैं। अर्थात विरक्ति के भटकाव में आते हैं। कवि दर्शाता है कि इस अहं को सर पर मत ढाहो जिस प्रकार हम नहाते हैं उस प्रकार उसे धो डालो। इस वस्तु विधान-

"यह जो गम है
सो असल में तेरा अहं है
अहं को रातो-दिन यों मत सहला
उसे विराट की छाया में खींचकर
परम के प्रकाश में नहला।"[173]

देश की भयावह एवं आतंकित स्थितियों में वर्तमान मानव को पीडित देखकर कवि क्रोध प्रकट करता है। साथ ही वक्त के महत्व को दर्शाते हुए, वक्त के हाथों बिकने वाले लाचार आधुनिक मानव को चेतावनी देते हुए, कवि समझाना चाहता है कि जब तक यह व्यक्ति अपनी लाचारी से मुक्त नहीं होगा, तब तक स्थितिशीलता का प्रश्न भयावह बना रहेगा। लाचारी की अंधेरी गुफाओं से बाहर निकलते ही हम जान जायेंगे कि बिना संघर्ष के जीवन में स्वस्थ परिवर्तन नहीं आनेवाला है। समकालीन व्यक्ति की और समाज की सब से बड़ी शोकांतिकता तो यही है कि शासकों की खोखली आवाजें हमें गतप्रााण कर रही हैं। इसलिए कवि इस भयोत्पादक वस्तु-विषय की ओर इंगित कर परिवर्तन की दिशा दिखाते हुए कहता है-

"उस वक्त
जब बड़े देश का
हर गाँव शहर कस्बा
मरघट बनाया जा रहा हो
मैं ऊपर से यह सब देखता हुआ
गुस्से से भर गया
कि एक समूचे देश का देश
खोखली एक धमकी में मर गया।"[174]

---

[173] संप्रति-पृ.59
[174] त्रिकाल संध्य-पृ.27

अतः कवि इस विषय-वस्तु जैसे खोखली मान्यताएँ, धमकियाँ तथा अपमानजनक जीवन से समाज को मुक्त करना चाहते हैं। इसलिए वे निर्भय और स्वतंत्रतापूर्वक जीवन जीने के लिए प्रेरित करते हैं। यथा-

"लहरों के आने पर
काई-सा फटे नहीं
रोटी के लालच में
तोते सा रटे नहीं
प्राणी वह प्राणी है।"[175]

*   *   *   *

"बोले तो हमेशा सच
सच से हटे नहीं
झूठ के डराये से
हर-गिज डरे नहीं।"[176]

भवानी प्रसाद मिश्र गांधी विचारधारा से प्रभावित होने के नाते दुनिया को अन्याय के प्रति लड़ने के लिए स्नेह की शक्ति प्रदान करते हैं। क्योंकि स्नहे में वह शक्ति है, जो अंधकार को चीरकर हमारे जीवन को प्रकाशित कर सकती है। मूलतः आधुनिक युग स्नेह की शक्ति से अधिक शस्त्रों की शक्ति को प्रमुखता दे रहे हैं। लेकिन शस्त्रों की शक्ति समूचे विश्व को क्षण में राख बना सकती है। इसलिए कवि आधुनिक युग को स्नेह-शक्ति को विषय वस्तु बनाकर उसके महत्व को दिखाते हुए निवेदन करते हैं-

"प्यार है सच से तो अपने काम में उसको उतार
है बहुत मुमकिन कि दो-दस बार तू जायेगा हार
जीत की लेकिन खींचेगी एक तसवीर मन
तू किसे देगा अभय जो खुद हुआ दिलगीर मन।"[177]

---

[175] दूसरा सप्तक-पृ.22
[176] दूसरा सप्तक-पृ.22
[177] गांधी पंचशती-पृ.103

आधुनिक मानव गलत ढंग की स्पर्धा में फँस गया है। पैसा या कीर्ति के लोभ में वह स्वयं को बेच रहा है। अतः आधुनिक युग का मानव जीन के आदर्शों को खोता जा रहा है, जिससे कवि पीड़ित है। वह संसार में जीवन के आदर्शों को पुनः स्थापित करना चाहता है। इस वस्तु को कवि यूँ विवेचित करता है-

"सड़ी बात है
अगर हम पैसा या कीर्ति के खयाल में
दूसरों के लिए खटे हमारे कामों में
एक आदर्श एक भावना
एक आवेश होना चाहिए।"[178]

भवानी प्रसाद मिश्र का काव्य उन सभी स्थितियों का प्रतीकार करते हुए अंधकार में प्रकाश, दुःख में साहस, स्पर्धा में स्नेह, संघर्षों में शांति तथा मतभेदों में एकता को स्थापित करते हुए, जीवन जीने का नया ढंग की विषय-वस्तु उत्प्रेषित करते हैं। यथा-

"दर्द की दवा का असर
हवा हो जाये जब तक जो दर्द लौट आया है
उसे नया मान लो और उपाय भी उसका
नया खोजो कोई विचारणीय मानो
मेरे इस सुझाव को सहलाओ
नये ढंग से हर बार पुराने घाव।"[179]

*   *   *   *   *

"अंधेरे में सीटी की तरह
चीरेगी दूरियाँ मेरी आवाज़
ज्यादातर लोग जानते हैं
कि सिर्फ जगा देने के लिए
नहीं बजाता सीटी यह आदमी
एक जगह आकर

---

[178] त्रिकाल संध्य-पृ.37-38
[179] परिवर्तन जिए-पृ.37

इकट्ठा हो जाने के लिए बजाता है।"[180]

वस्तुतः मिश्र जी का साहित्य जीवन से मृत्यु तक लड़ने की शक्ति देता है। साथ ही मानवीय मूल्यों की विषय-वस्तु की स्थापना करते हुए विविध स्थितियों में भी नयी जीवन दृष्टि का वस्तु-विधान करते हैं-

"सुनो सुनो
यह मैं एक कवि पुकारता हूँ
आओ और जीते इस संघर्ष को
मैं तब तक
जूझता और हारता हूँ
आह उठे कोई
और खुले जैसे दरवाजा
कि तमाम दुःख सिर धुनते हुए
खुले में आ जाये।"[181]

निष्कर्ष :

नयी कविता में भवानी प्रसाद मिश्र ने कविता की अंतर्वस्तु ओर रूप दोनों स्तरों पर अपनी अलग पहचान बनाई है। बहुत सारे कवियों की अपेक्षा जीवन के यर्थार्थ और प्रवृत्ति के सौंदर्य की सरल और सहज अभिव्यक्ति उनकी कविता की विशेषता है। वास्तव में नयी कविता के मुहावरे में वे एक रोमानी कवि हैं। नयी कविता में अभिव्यक्ति का जो धुंधलापन है, उससे मिश्र जी की कविताएँ भिन्न हैं। उनका व्यंग्य भी आधुनिक जीवन के यथार्थ से जुड़ा हुआ है। कवि या कलाकार को विडम्बनापूर्ण स्थितियों के बीच से गुजरते हुए जीवन को व्यापक स्तर पर वे ग्रहण करते हैं। जीवन की सारी विडंबनाओं के बीच भी उनका स्वर जीवन के प्रति आस्थावान है। "गीतफरोश" के रूप में उसे प्रस्तुत करते हैं, उनके पास हर वस्तु के गीत हैं।

एक कवि जैसा संवेदनशील व्यक्ति किस तरह जीने के लिए लाचार है। इस लाचारी पर कवि हल्की सी चुटकी लेते व्यंग्यात्मक रूप से विवेचन करते हैं।

---

[180] शरीर कविता, फसलें और फूल-पृ.160
[181] शरीर कविता, फसलें और फूल-पृ.64

भवानी प्रसाद मिश्र की कविताएँ व्यापक सामाजिक जीवन के यथार्थ से रूबरू होती है। वे मामूली रोजमर्रा के सुख दुख को अपनी कविताओं में बाँधते हैं। दूसरे सप्तक के वक्तव्य में उन्होंने लिखा है-"मैं ने अपनी कविताओं में प्रायः वही लिखा है जो मेरी ठीक पकड़ में आ गया है। दूर से कौडी लाने की महत्वाकांक्षा भी मैंने कभी नहीं की।" ये सहृदय वैष्णव संस्कारों से संप्रक्त सीधे, सहज कवि हैं। वे अन्य नये कवियों की भांति आत्मकेंद्रित न होकर सहज, मानवीय आस्था के कवि हैं। उनकी कविताएँ जन-विरोधी वातावरण के विरुद्ध आवाज़ उठाती हैं। प्रकृति के प्रति उनके गहरे रागात्मक लगाव के माध्यम से उनकी कोमल, मानवीय संवेदनाओं का बोध होता है।

"जंगल का टेसू", "चांदनी और धूप", "सतपुडा के जंगल", "मंगल वर्षा" आदि अनेक कविताओं में प्रकृति के सूक्ष्म निरीक्षण द्वारा कवि ने उसका सहज उल्लासपूर्ण चित्र प्रस्तुत किया है। वैचारिक प्रतिबद्धता न होने के बावजूद उनकी कविताएँ जनजीवन के निकट हैं। सामाजिक विषमताओं के विरुद्ध उठ रही जन-चेतना का स्वर भी उनकी कविताओं में है।

कवि में प्रकृति के साथ ही मानवीय जीवन का सौंदर्य-बोध भी है। यही सौंदर्य-बोध उसे जीवन के प्रति आस्थावान बनाता है। चारों ओर फैला उन्मुक्त सौंदर्य "धरती पे सरग" के समान है।

* * * * *

अध्याय चार

भवानी प्रसाद मिश्र के काव्य में ''रूप''

4.1 प्रकृति के विविध रूप

- 4.1.1 प्रकृति के प्रति रागात्मक रूप
- 4.1.2 प्रकृति का आलंबन रूप
- 4.1.3 प्रकृति का उद्दीपन रूप
- 4.1.4 प्रकृति में मानवीय चेतना
- 4.1.5 प्रकृति में व्यक्ति चेतना
- 4.1.6 प्रकृति का लोकमंगलकारी रूप

4.2 बिंब रूप

- 4.2.1 भाव बिंब
- 4.2.2 इंद्रियबोध बिंब
- 4.2.3 अलंकृत बिंब
- 4.2.4 सामाजिक बिंब
- 4.2.5 वस्तु बिंब

4.3 प्रतीक विधान का रूप

- 4.3.1 प्राकृतिक प्रतीक
- 4.3.2 व्यक्तिगत प्रतीक
- 4.3.3 परंपरागत प्रतीक
- 4.3.4 सैद्धांतिक प्रतीक
- 4.3.5 सांस्कृतिक प्रतीक
- 4.3.6 भावात्मक प्रतीक

4.4 गीत

- 4.4.1 शोक गीत

4.4.2 पत्र गीत

4.4.3 व्यंग्य गीत

4.5 शैली

4.5.1 सरस शैली

4.5.2 मधुर शैली

4.5.3 व्यंग्यात्मक शैली

4.5.4 वर्णनात्मक शैली

4.5.5 उद्‌बोधनात्मक शैली

4.6 गजल एवं शेर

4.7 मुक्त छंद

4.8 खण्ड काव्य

4.9 भाषा

निष्कर्ष

अध्याय चार

भवानी प्रसाद मिश्र के काव्य में ''रूप''

4.1 प्रकृति चित्रण के विविध रूप :

अध्याय एक में रूप वैशिष्ट्य को विवेचित किया गया है। प्रत्येक सहजानुभूति की तीन प्रक्रियाएँ मानी गई हैं। वस्तु, रूप और अभिव्यंजना। कोई भी वस्तु हमारी सौंदर्य भावना को तब तक जागरूक नहीं करती जब तक उसका कोई रूप न हो। क्रोचे ने सौंदर्य भावना को रूप प्रधान माना है। यह सत्य है कि क्रोचे ने जितना महत्व रूप को दिया, वस्तु को नहीं किंतु उन्होंने वस्तु की उपेक्षा भी नहीं की, उसे सहअस्तित्व माना है। यदि हम कविता के इतिहास पर दृष्टिपात करें तो पाएंगे कि आज प्रकृति और कविता के बीच का सूत्र दुर्बल है। भारतीय दर्शन में प्रकृति-पुरुष संबंधों की व्याख्या की गई है। भारतीय दर्शन में प्रकृति पुरुष संबंधों की व्याख्या की गई है। वहाँ हमें एक द्वन्द्वात्मक संबंध का आभास मिलता है। डॉ.स्मिता मिश्र के शब्दों में-"दोनों अपने अस्तित्व रक्षा के लिए प्रयत्नशील हैं। इसलिए प्रकृति प्रलय के रूप में विद्रोह करती है किंतु सृष्टि के भावी विकास के लिए कोई बीज सुरक्षित रख जाती है। इस द्वन्द्वात्मक स्थिति के साथ ही सह-अस्तित्व का आधार भी है। मनुष्य प्रकृति को अपने संसर्ग से नई अर्थवत्ता देता है और प्रकृति मनुष्य की चेतना का विस्तार कर अमानुषीकरण से उसकी रक्षा करती है।"[1]

हिंदी कविता के इतिहास को देखने से यह ज्ञात होता है कि समयानुसार काव्य में प्रकृति की अवधारणा में बदलाव आता गया है। प्राचीन कविताओं में प्रकृति का प्रायः उद्दीपक रूप ही आता है। तुलसी के प्रकृति-चित्र नैतिक निष्कर्षपूर्ण हैं। रीतिकाल के एक उत्तेजक देहवाद से अक्रांत होने के कारण प्रकृति प्रायः विलास के उद्दीपन के रूप में आई है। छायावादियों ने प्रकृति और मनुष्य के मनोभावों में तादात्म्य स्थापित करने का प्रयत्न किया। ज्यों-ज्यों औद्योगिक सभ्यता का विकास होता गया, प्रकृति-मनुष्य के संबंध में शिथिलता आती गई। कविता अपनी संवेदनशील प्रकृति में प्रकृति की विभिन्न छवियों से प्रभावित होती रही है पर हिंदी में ऐसे कवि विरल हैं, जो उसके वस्तुपरक यथार्थ के रूप को अधिक स्वीकृति देते हैं। नये काव्य में जिन

---

[1] डॉ.स्मिता मिश्र : गीतफरोश में शिल्प एवं संवेदना-पृ.

समर्थ कवियों ने प्रकृति का समक्ष उपयोग किया है, उन में भवानी प्रसाद मिश्र निश्चित रूप से अग्रणी हैं।

मिश्र जी के प्रकृति चित्रण की विशिष्टता यह है कि इन्होंने प्रकृति को प्रचलित रोमानी चश्मा लगाकर नहीं देखा, बल्कि खुली आँखों से उसके ठेठ "लोक" को देखा है। इसलिए उन्होंने न तो प्राचीन कवियों की भांति प्रकृति को उद्दीपन माना और न ही द्विवेदी युगीन कवियों की भांति प्रकृति पर नैतिकता का बोझ डालते हुए किसी प्रकार का उपदेशपूर्ण निष्कर्ष निकाला। छायावाद के उत्कर्ष के समय में रचनारत रहकर भी मिश्र जी छायावाद से लगभग अप्रभावित ही रहे। छायावादी कवियों ने प्रकृति पर अहं का आरोप कर उसे अलौकिक रहस्य सत्ता का स्पंदन बना दिया। किंतु मिश्र जी का प्रकृति से ठीक वैसा ही संबंध है जैसा किसी बाल्य-सखा और प्यासा-प्याऊ से होता है।

4.1.1 प्रकृति के प्रति रागात्मक चित्र :

भवानी प्रसाद मिश्र का प्रथम संकलन "गीतफरोश" में प्रकृति-सौंदर्य पर कई श्रेष्ठ रचनाएँ हैं जो यह प्रमाणित करती हैं कि वे प्रकृति के चतुर चितेरे हैं और प्रकृति की हर वस्तु उनकी आत्मीय है। प्रकृति उन्हें वैचारिक भूमि प्रदान करती है। इन में विशेष कविताएँ हैं-"सतपुडा के जंगल, नर्मदा के चित्र, सन्नाटा, घर की याद, मेघदूत, आषाढ, सावन आदि। कवि को प्रतीत होता है मानो कोकिल ने अपने हृदय का सारा मधुभार स्वरों पर साध लिया हो ओर अपने गीतों को वायु के पंखों पर चढ़ाकर चारों ओर बिखेर रही हो। वह कभी प्रेम में उन्मत होकर कुहू-कुहू चिल्लाती है और कभी सयानी होकर चुप हो जाती है। कवि को उसकी वाणी का अरूप सौंदर्य और माधुर्य आकृष्ट कर लेता है। वह उसके स्वर में डूबकर तन्मय हो जाता है और आकाश में छलांग लगाकर कहता है- "आकाशवाणी सा तुम्हारा गीत जग में भर गया है, मुझे पागल कर गया है।" अतः "कोकिल" कविता में कवि कोकिल को देख कल्पना करने लगता है मानो वह किसी यक्ष का संकेत पाकर सात-सागर पार कर यक्षिणी के रूप में प्यार का संदेश लेकर उड चली हो-

"कौन से नवदूत ने किस यक्ष से संकेत पाकर,
प्यार का संदेश तुझको सात सागर पार जाकर,

उड़ चलो कहकर दिया, तुम उड़ चली, तुम यक्षिणी हो,

तुम न केवल पक्षिणी हो।"[2]

कवि उसके आंतरिक हर्ष, उल्लास, आह्लाद और माधुर्य को देखकर सोचता है- काश! वह भी इस आनंद से सराबोर हो सकता!

भवानी प्रसाद मिश्र का प्राकृतिक दृश्यों का चित्रांकन रमणीय, अनुभूतिपरक और सूक्ष्म है। कवि नर्मदा के हू-ब-हू चित्र उतारता है। टेढी-मेढी रेखा आँखों को स्वस्थ देती है। आसपास के सघन वृक्ष, आकाश के काले बादल घाटों से थोड़ी दूर हरी घांस, लहरों पर तिरती नावें, घने कुहरे में सूर्य का केशरिया रंग, भोर की भानी-भानी वायु सारे दृश्य कवि को मोहित कर लेते हैं। शिशिर की ठंडी डाकिन हवा उस वन्य प्रदेश के पथरीले भाग को अपने चुंभन से कँपा देती है। संध्य समय निस्तब्ध घात पर मछली का उछलना, आकाश में दूज के चाँद का जल पर प्रतिबिंबित होना निश्चित ही कवि मन पर स्थायी प्रभाव छोड़ने वाला दृश्य है। युवती रेवा के सौंदर्य को और आसमान के मोहक दृश्यों के हर अंश को कवि अपलक देखने का आकांक्षी है क्योंकि जहाँ यौवन और सौंदर्य होता है वहाँ निरंतर सामीप्य की लालसा होती है, क्षणिक या अंशमात्र से शांति नहीं मिलती-

"यौवन और सौंदर्य जहाँ यह बात हो

वहाँ सभी कुछ चाहा जाता है कि हाँ,

वहाँ तनिक से शांति नहीं मिलती कभी

वहाँ मांग का अंत नहीं देखा गया।"[3]

कवि पावस का गायक है। अतः सावन पर उसकी दृष्टि विशेष रूप से टिकी है। सावन को आमंत्रित करते हुए कहता है कि बिना इंद्रधनुष के सावन अधूरा है क्योंकि सुरचाप ही तो उसकी छाप है। अतः वह उसके अभाव में सावन की अभ्यार्थना स्वीकार नहीं करता जैसे तुलसी राम को "हाथ धनु सायक" लेकिन ही देखना चाहते थे। बादलों के बदलते रंग किलकते बच्चे, मचलते युवक, धनी खेत सब कवि को मोहित कर लेते हैं। यहाँ तक कि धानों का भीमाकार रुद्र गर्जन, आधी रात की घनघोर वर्षा, आलोकमय चंचला और प्राणों का सिहरण उसके हास उल्लास का कारण बन जाता है किंतु जल की

---

[2] गीत फरोश-पृ.10

[3] गीत फरोश-पृ.29

तेज धारा में बहती झोपडी का हाहाकार, चीत्कार कवि को क्षुब्ध कर देता है और उसके हृदय के घाव हरे हो जाते हैं। फिर भी आशावादी चेतना उसे प्रेरणा देती है-नयी आकांक्षाओं, नये सपनों और नये संगीत को श्रम के उल्लास के साथ जगाने के लिए-

"इसलिए हम चलें
सावन में संभाले खेत अपने
खबर दें-बो दें उगा दें,
आज उनमें नये सपने,
ये कि जब फागुन सजीला
फूल से सपने खिला दे,
गा उठे इस जोर से
आवाज़ जगती को गुंजा दे।"[4]

प्रकृति के प्रति रागात्मक चित्र भवानी प्रसाद मिश्र की विशेष विशेषता है तभी तो डॉ.संतोष कुमार तिवारी ने लिखा है-"प्रकृति हर जगह कवि के साथ है। चाहे खुला मैदान हो या रेवा का किनारा अथवा अस्वस्थ हालत में बिस्तर पर पड़े हुए आती-जाती किरणों का निहारना, कवि हर समय प्रकृति का आलिंगन करने और उसे शब्दों में कसने के लिए आकुल हो उठता है। धूली-धूली दूर्वा का निखरा रूप, हल्के-हल्के बादलों की छटा, नये पत्तों की कोमलता, वर्षा की झडी, लहरों की उठान-सभी उसके मन को बरबस खींच लेते हैं। हृदय स्वयं हिलोरे लेने लगता है और अनूठे सौंदर्य से कवि आकुल-व्याकुल हो उठता है।"[5]

जब रात घिरती है कवि का मन शुभ्र ज्योत्सना के सौंदर्य में डूब जाता है। तारकेश की आभा अपने रूप के जादू से हर चीज़ को खूबसूरत बना देती है। मादक चांदनी का असर है कि उसकी उज्जवलता सारे कटे-छँटे रूपों को एकाकार कर देती है और आकाश तथा पहाड़ सफेदी में डूबकर एक-रूप हो जाते हैं-

"अच्छा लगता है जी को
बटे-छँटे आकारों का एकाकार हो जाना

[4] गीत फरोश-पृ.75
[5] नये कवि-एक अध्ययन:भाग-चार-पृ.71

आकाश या पहाडों में

पहाडों का आकश में खो जाना।"[6]

अपनी प्रबल चेतना के कारण प्रकृति के प्रति मिश्र जी की सौंदर्य दृष्टि यथार्थ दृष्टि में बदल गई। "सतपुडा के जंगल" कविता इसका प्रमाण है। इस कविता में जंगल का वातावरण अत्यन्त सूक्ष्मता से अंकित हुआ है। कवि ने प्रकृति के अंचल विशेष को बड़ी यथार्थ के साथ रूपायित किया है। कहीं वह जंगल की चुप्पी का चित्रण करता है-

"झाड ऊंचे और नीचे
चुप खड़े हैं आँख मीचे
घांस चुप है काश चुप है
मूल शाल पलाश चुप है
सतपुडे के घने जंगल
नींद में डूबे हुए से
ऊंघते, अनमने जंगल।"[7]

तो कभी-कभी जंगल की गति, शब्द और भयानकता का चित्रण करते हैं-

"अजगरों से भरे जंगल
अगन गति से परे जंगल
शेर वाले बाघ वाले
गरज वाले दहाड वाले।"[8]

किंतु कवि का प्रकृति से आत्मीयता का संबंध है इसलिए उसे जंगल की भयानकता आतंकित नहीं करती। वह पाठकों को भी अपने साथ आने का निमंत्रण देता है-

"धसों इन में डर नहीं है
मौत का यह घर नहीं है।"[9]

---

[6] बुनी हुई रस्सी-पृ.26
[7] व्यक्तिगत-पृ.59
[8] गीतफरोश-पृ.60
[9] गीतफरोश-पृ.61

इसी के चलते श्रीकांत वर्मा ने ठीक लिखा है-जब भवानी प्रसाद मिश्र पढ़ते थे, "सतपुडा के घने जंगल, ऊंघते, अनमने, जंगल", तब मेरा बचपन जागृत हो उठता। मैं अपने बचपन के उन पहाड़ों में जंगलों में लौट जाता, जिन से मैं आज हजारों मील दूर हूँ। ....भवानी प्रसाद मिश्र ने प्रकृति को नंगे, बीहड और बेलौस रूप में देखा। पहाड़ों का औघडपन, जंगलों की उनिद्रा, नदियों की अकेली यात्रा, वन्य-पक्षी की खंडहर पुकार। प्रकृति कितनी अकेली है, कितनी डरावनी है, कितनी उजाड़ है, कितनी हमारे अंदर है, कितनी हमारे बाहर है-यह सब सिर्फ भवानी प्रसाद मिश्र की कविताओं में रागात्मकता रूप है।"[10]

प्रकृति का उपासक कवि उसके सौंदर्य पर रह-रह कर रागात्मक रूप से रीझ उठता है। कालिदास वसंत के कवि हैं, रवींद्रनाथ सरिताओं के, निराला मेघों के कवि हैं तो भवानी प्रसाद वर्षा के। यथा-

"गिर रहा है आज पानी
याद आता है भवानी
उसे भी बरसात प्यारी
रात-दिन की झडी झारी।"[11]

वर्षा हरियाली है, वर्षा जीवन है, वर्षा वसंत है। फिर वर्षा के प्रति कवि अनुरक्त क्यों न हों-

"मेरा स्वभाव ही है,
वर्षा में झूम पड़ना
बादल की गरज सुन
चलते से घूम पड़ना।"[12]

4.1.2 प्रकृति का आलंबन "रूप" :

प्रकृति सौंदर्य के रूपों के लिए कवि अपनी भावानुकूल अभिव्यक्ति के लिए प्राकृतिक उपकरणों का सहारा लेता है। "इस प्रकृति काव्य में प्रकृति आलंबन होती है

---

[10] भवानी प्रसाद मिश्र के आयाम-पृ.83
[11] गीत फरोश-पृ.141
[12] गीत फरोश-पृ.141

और कवि स्वयं ही भावों का आश्रय बनता है। काव्य की अभिव्यक्ति में यह आलंबन-रूप विभिन्न प्रकार से उपस्थित होता है। प्रकृति आलंबन की व्यापक स्थापना से भावों को आधार मिलता है और केवल आश्रय की मनःस्थिति में भावों की व्यंजना उपस्थित कर प्रकृति का संकेतात्मक स्वरूप चित्रित किया जा सकता है। साथ ही आश्रय की स्थिति में कवि उसमें अपनी चेतना तथा भाव-स्थिति का प्रतिबिंब भी प्रस्तुत करता है।"[13] वस्तुतः भवानी प्रसाद मिश्र के काव्य में प्रकृति का आलंबन रूप अनुभूति के स्तर पर अधिक मात्रा में दृष्टिगोचर होता है। "गीत फरोश" में प्रकृति का आलंबन रूप प्रकृति के सौंदर्यानुभूति के साथ मानवीय चेतना में संयुक्त हुआ है। "आषाढ़" इस कविता में आषाढ मास में प्राकृतिक वस्तुओं में जो परिवर्तन हुआ है, उस परिवर्तन में कवि किसी मानवीय सौंदर्य को देखता है। अतः यहाँ प्राकृतिक उपादान केवल आधार फलक हैं-

"केश घन काले तुम्हारे, मेघ से,
सिक्त मेरे स्नेहमय अभिषेक से,
माँग में सौभाग्य भर सिंदूर है,
और जी में प्राणता का पूर है।"[14]

वस्तुतः कवि मानवीय इंद्रियों का व्यापक रूप प्राकृतिक उपादानों में देखने का प्रयास करता है। मेघों को देखने से कवि के मन में जो भावना उद्दीप्त हुई है, उस अनुभूति को स्मृति रूप में प्राकृतिक अंशों को लेकर जड़ में चेतना की कल्पना करता है-

"मेघ, तुमको देखते ही आज,
देख पाता हूँ, उलझते केश घन,
देख पाता हूँ, सजलमन और तन,
तड़ती भी दिखती, खींचर सुरचाप भी
एक स्वर संगीत, वर भी, शाप भी,
सामने आती किसी की लाज,
मेघ तुमको देखते ही आज।"[15]

---

[13] भवानी प्रसाद मिश्रः व्यक्तित्व कृतित्व-पृ.86 डॉ.राजकुमारी गडकर

[14] रघुवंशः प्रकृति और काव्य-पृ.71

जहाँ कवि प्रकृति को माध्यम बनाकर अपनी भावानुभूति को व्यक्त करता है, वहीं प्रकृति में मानवीय भावों का आरोप कर देता है। अतः यहाँ प्रकृति सजीव और सप्राण जान पड़ती है। कवि उसे सचेत रूप में देखताहै। यथा-

"सोच रहा हूँ
हवा की नहीं
सूर्य किरणों की गति
मेरी कविता में आएगी
मेरी वाणी
उन तूफानों को गाएगी
जो उठे नहीं है
और जिन्हें उठना है।"[16]

गीत फरोश में आलंबन का रूप इस प्रकार सामने आता है-

"आज हम उन्मुक्त मन हो
देह से ऊपर उठे हम, और जैसे
वृक्ष उठता है भला, भू पर उठे हम।"[17]

एवं

"सूरज इसे जगाओ
पवन इसे हिलाओ।"[18]

प्रकृति के क्रिया-कलापों में कवि मानवीय जीवन की कल्पना करते हुए उसे व्यक्तित्व से जोड़ लेता है-

"वृक्षों के तनों से कम नहीं है
हरे पन में हम विंध्य वनों से कम नहीं हैं,
आओ हम डाल दें अपनी जड़ें,
जमीन में और आसमान में वृक्षों की तरह

---

[15] गीत फरोश-पृ.36
[16] परिवर्तन जिए-पृ.
[17] गीतफरोश-पृ.39
[18] गीतफरोश-पृ.102

और पार करें हम संध्या में अकेले-अकेले।"[19]

*   *   *   *   *

"वन का एक वृक्ष
होना चाहता हूँ मैं, पंछी का पंख भी नहीं
सिर्फ पर होना चाहता हूँ
लहर होना चाहता हूँ अपनी नर्मदा की।"[20]

कवि अपनी अभिव्यक्ति में प्रकृति को भिन्न-भिन्न अवस्था में देखता है, कभी वह प्रकृति के बिंबों का आश्रय लेकर मानवीय भावों को व्यक्त करता है तो कभी प्रकृति के क्रिया-कलापों में मानवीय चेतना की विराटता को अंकित करता है। अतः प्रकृति का आलंबन प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष दोनों रूपों में हो सकता है।

4.1.3 प्रकृति का उद्दीपन "रूप" :

"प्रकृति भावनाओं को उद्दीप्त करने में सहायक होती है।" हर कवि को अपनी भावनाओं को उत्प्रेरित करने के लिए वैविध्यपूर्ण वातावरण की अत्यन्त आवश्यकता होती है। भवानी प्रसाद मिश्र के आसपास का प्राकृतिक वातावरण ही उन्हें बार-बार आकर्षित करता रहा उन्होंने लिखा भी है-"एकाध बार इसकमजोरी को दोस्त न जानें, इसलिए उनके साथ नर्मदा में लंबा निकल गया और बचाने का भार उन पर आया।"[21] साथ ही विविध मौसम नये रंगों से सजे आते जाते रहे। जो कवि के प्राणों में उमंग, आँखों में उत्साह तथा शरीर को रोमांचित करने में सहभागी रहे।

वसंत के आगमन से सारे प्राकृतिक वातावरण में परिवर्तन हो गया है जो बड़ा ही सुंदर तथा मन को मोह लेने वाला, नयन मनोहर दिखाई दे रहा है। "फूलों से लदी डाल" भौरों का गाना, पत्तों का हिलना आदि का चित्र कवि अपनी लेखनी से बड़ी ही सूझ-बूझ के साथ उतारता है। वसंत में प्रकृति सौंदर्य कवि को दुगना लग रहा है। इस मौसम में वह महसूस करने लगता है कि फूल, कलियाँ, टहनियाँ, पत्ते, भौरे मुस्करा रहे हैं। "वे हँसे और आया वसंत" कविता में वर्णित-

---

[19] अंधेरी कविताएँ-पृ.15
[20] इदं न मम-पृ.54
[21] भवानी प्रसाद मिश्र-पृ.5, डॉ.विजयबहादुर सिंह

"वे हँसे और आया वसंत, खिल गये फूल लद गयी डाल,
भौरों ने गाना शुरू किया, पत्ते हिलकर दे चले ताल,
हर फूल नयी पोषाख पहिन, जग के आंगन में झूम गया।
हर भौंरा मस्ती में भरकर हर नये फूल को चूम लिया।"[22]

"कमल के फूल" कविता में फूलों द्वारा उद्दीप्त प्रेम है। इस में मानसर, कमल, बीच, तीर, अंचल, फूल आदि शब्द-रूप विशिष्ट अर्थ के द्योतक हैं। कमल यहाँ कविता का पर्याय है। कविता मानस से उमडती है-सहज भाव से। कवि उसे किनारे पर नहीं, गहराई में जाकर प्राप्त करता है। पर प्रश्न यह है कि पाने पर वह उसका करे क्या? मिश्र जी के अनुसार उसकी सार्थकता इस बात में है कि उससे किसी का अंचल भर जाए-

"फूल लाया हूँ कमल के।
क्या करूँ इनका?
पसारें आप आँचल
छोड दूँ,
हो जाय जी हल्का!
किंतु होगा क्या कमल के फूल का?
ये कमल के फूल,
लेकिन मानसर के हैं,
इन्हें हूँ बीच से लाया,
न समझो तीर पर के हैं।"[23]

कवि को सारा प्राकृतिक वातावरण हर्षोल्लासमय दिखाई दे रहा है। इस प्राकृतिक सौंदर्य को देखकर कवि की भावनाएँ जाग उठीं और मन अनुराग से भर उठा। एक अन्य स्थान पर कवि किरणों को सोना कहता है, जो लहरों पर बड़ी ही सुंदर चमक रही हैं। मानो लहरों परसोने का पानी चढ़ाया गया हो। अमराई कोकिल की कुहुक से गूँज उठी है। अतः सारा वातावरण कवि को नया-नया सा या कि चैतन्यमय दिखाई दे रहा है-

---

[22] गीत फरोश-पृ.13
[23] गीत फरोश-पृ.

"किरनों का सोना निखर गया, लहरों पर चढ़ा नया पानी,

जी कुछ ऐसा बेहाल हुआ, आँखों का उतर गया पानी,

तब बार-बार कुहकी काली, अली अमराई गूँज गयी,

क्या जाने जादू हुआ कौन? सारी दुनियाँ हो गयी नयी।"[24]

शरद की शाम को देखकर कवि की भावनाएँ उद्दीप्त होती हैं। किंतु शारीरिक असमर्थता, मानसिक संत्रास के कारण, वह इस "शरद की शाम" का उपभोग कर नहीं पा रहा है। यह शाम उसे एक सपना-सा महसूस हो रही है। इसलिए वह कहता है कि यह "शरद की शाम" मेरे लिए नहीं किसी और के लिए आई है-

"शाम शरद की

आम तौर पर मैं देखता हूँ

तो देखता हूँ जैसे कोई एक सपना

और खग और लगता है वह उतर रही है मुझ पर नहीं

किसी और पर।"[25]

आषाढ़ के घने काले बादल, सावन का हर्ष माघ की पूनों का सौंदर्य की भावनाओं को उद्दीप्त कर रहा है। कवि दूर किसी के गाने की आवाज़ सुनकर फागुन के स्वागत के लिए अपनी कलम उठा रहा है। इसलिए प्रकृति सौंदर्य में रची-बसी आत्मीयता को पहचानकर उससे एकाकार होने की भावना कवि व्यक्त करता है-

"दूर कोई गा रहा है

इसलिए शायद कि कल फागुन सजीला

आ रहा है।

माघ की पूनो

किरन दल पर संदेश उतार लायी

गा उठी संजीदगी छोड़ो

चलो बहार आयी।"[26]

---

[24] गीत फरोश-पृ.13

[25] अंधेरी कविताएँ-पृ.75

[26] अंधेरी कविताएँ-पृ.75

दूसरे पद में उड़ती हुई कोकिला को देखकर कवि की भावनाएँ जाग जाती हैं। वह कल्पना करने लगता है, किसी यक्ष से संकेत पाकर प्यार का संदेश, सात सागर पार पहुंचाने के लिए दिया हो। तुम वह संदेश पहुंचाने उड़ चली हो, तुम्हें कैसे कहूँ तुम "पक्षिणी" हो। अतः कवि के मन में प्रेम की भावना जाग उठी है-

"कौन से नवदूत ने किस जग से संकेत पाकर
प्यार का संदेश तुझको, सात सागर पार जाकर
उड़ चलो कहकर दिया, तुम उड़ चली तुम यक्षिणी हो
तुम न केवल पक्षिणी हो।"[27]

4.1.4 प्रकृति में मानवीय चेतना का रूप :

विविध साहित्यकारों ने प्रकृति को मानवीय चेतना के रूप में देखा है। इस संदर्भ में डॉ.रघुवंश की व्याख्या सही प्रतीत होती है-"मानव चेतना पर जब प्रकृति की चेतना का प्रभाव पड़ता है, वह अनुभूति के सहारे "स्व" की ओर गतिशील होता है और जब मानव की चेतना प्रकृति चेतना के संपर्क में आती है, उस समय उसका प्रत्यक्ष बोध मात्र होता है। यहाँ मानव और प्रकृति दोनों कीचेतना तो सत् के रूप में स्वीकार्य की गयी है, पर मानव का "स्व" जब चेतना के साथ मिलता है, तब उसमें सत् के साथ चित् का योग हो जाता है।"[28]

नयी कविता में समग्र जीवन को देखने, सोचने और समझने की प्रवृत्ति है। वह मानवीय चेतना को लेकर चलने वाली कविता है। जीवन की विविधता, जीवन ओर जगत से उत्पन्न मानवीय अनुभूतियाँ और संवेदनाएँ उसका विषय है। उसमें लोक-जीवन की अभिव्यक्ति है। यह लोकोन्मुखता कुछ कवियों में प्रगतिशील विचारधारा के कारण है और कुछ में संस्कारजन्य भारतीय परिवेश के कारण। नयी कविता के प्रकृति चित्रण में तटस्थ रागात्मकता और प्रकृति के साथ मानवीय जीवन का सहज संबंध निरूपित हुआ है। इसके माध्यम से कवियों ने आसपास के जीवनानुभव को अंकित करने की चेष्टा की है। प्रकृति के स्वच्छ, साफ-सुथरे और प्रच्छन्न चित्रों द्वारा आंचलित रूपों को संवारा है। वास्तव में वह नए जीवन बोध से जुड़ गयी है।

---

[27] गीतफरोश-पृ.84
[28] प्रकृति और काव्य-पृ.28

प्रकृति के दृश्यों से भवानी प्रसाद मिश्र केवल मंत्र-मुग्ध नहीं होते बल्कि उनमें गंभीर चिंतन-मनन की स्थिति भी जागती है। सूनी-सी शाम में नीली-सी पहाडियों को कुहरें से ढंकी देखकर कवि आत्मस्थ हो जाता है क्योंकि उनकी यायावरी जीर्ण शरीर के कारण बंद हो गयी है और यह राशि-राशि सौंदर्य उसे सहन नहीं होता। प्रकृति से कवि आत्मा की ओर यात्रा करता हुआ दिखाई देता है। वह प्रकृति की सरसता और उमंग भरी अवस्था से मानव जीवन को नयी तरंग देना चाहता है। वह मानव जीवन को खुश हाल बनाना चाहता है। वह वृक्ष के वृत्तों की तरह लचीला होकर हवा में लहर-लहर घूमने लगता है और यह तादात्म्य इतना बढ़ जाता है कि कवि प्रकृति और मानव जीवन में अभिन्नता और एकरूपता का गहरा आभास पराकाष्ठा पर पहुंच जाता है। हरी दूब पर पड़े हुए पांव किसी सीते हुए आदमी के शरीर का स्पर्श करते हुए मालूम होते हैं-

"सुबह टहलते-टहलते।
हरी भरी दूब पर पाँव पड़े
तो लगा जैसे पड़ गया हो पाँव
किसी सोते हुए आदमी के शरीर पर।"[29]

वस्तुतः भवानी प्रसाद मिश्र जी ने काव्य में प्रकृति चित्रों द्वारा विविध भावों को व्यक्त करते हुए प्रकृति में मानवीय चेतना का साक्षात्कार करवाया है। जिस तरह मानवीय चेतना के व्यक्ति चेतना, आत्म-चेतना, सामाजिक चेतना ये स्तर हैं, ठीक उसी तरह कवि ने प्रकृति की चेतना को भी अनेक स्थरों पर चित्रित किया है।

4.1.5 प्रकृति में व्यक्ति-चेतना :

रचयिता प्रकृति में सारी समष्टि के चित्र देखा हुआ उसे अपने व्यक्तित्व से जोड़ लेता है, या कि अपने व्यक्तित्व को प्रकृति में देख लेता है। इसलिए कवि प्रकृति को चेतना मानकर प्रकृति में विविध भावों को व्यक्त करता है। यह कवि की प्रकृति के प्रति आत्मीयता व्यक्त होती है। कवि अपने गाँव तथा परिवार से विभक्त होकर, वहाँ के व्यक्ति तथा स्थानों की स्मृतियों को प्रकृति में देखता है। एक स्थान पर कवि मेरी नदी

[29] बुनी हुई रस्सी-पृ.36

कहकर प्रकृति के साथ एकात्म भाव स्थापित करता है। इसी एकात्म भाव के कारण उन प्राकृतिक उपकरणों में मानवी संवेदनों का चित्रण करते हुए वह कहता है-

"आज मेरी छोटी नदी उमड़कर बहती होगी वहाँ
और वह कल-कल करती हुई कथा सी कहती होगी वहाँ।"[30]

भवानी प्रसाद मिश्र की आस्था और मानवीय मूल्यों की दुर्दशा का तकाजा चेतना पर आधारित है। डॉ.संतोष कुमार तिवारी ने लिखा है कि-"कवि बार-बार चेतना का तकाजा पूरा कर रहा है। और यह भरोसा ही कवि की चेतना का सब कुछ है। भवानी प्रसाद मिश्र यथार्थ जीवन का साक्षात्कार करते हुए भी अपनी आस्था को टूटने, बिखरने नहीं देते।"[31] यथा-

"रात को सूरज मांगना
दिन को तारे
हाय रे, चेतना के ये चोंचले
हमारे!"[32]

एक स्थान पर कवि प्रकृति को संबोधित करते हुए प्रकृति के माध्यम से परिवार के सदस्यों को धीरज देना चाहता है। यहाँ प्रकृति सजीव हो उठी है, वह उसे घर की संदेश-वाहिका के रूप में देखता है-

"काम करता हूँ कि कहना
नाम करता हूँ कि कहना
चाहते हैं लोग, कहना
मत करो कुछ शोक कहना।"[33]

*   *   *   *   *

"इस तरह का हाल उनका
इस तरह का ख्याल उनका
हवा उनको धीर देना

---

[30] गीतफरोश-पृ.16
[31] नये कवि एक अध्ययनः भाग चार-पृ.85
[32] चकित है दुख-पृ.117
[33] गीत फरोश-पृ.134

यह नहीं जी चीर देना।"[34]

गांधी स्मारक निधि के आहाते में रहते हुए, वहाँ के बबूल के वृक्ष को देखकर कवि के मन में जो भाव जागे हैं, उन्हें वे उस वृक्ष में देखते हैं। अतः बबूल का वृक्ष कवि के भावों को मानवी चेतना प्रदान करता है। इसलिए वह उसे अपने व्यक्तित्व से जोड़ लेता है-

"बबूल को आतप में भी मैं
इसी तरह देखूँगा दूर से जैसा आज देखता हूँ उसे
अपने व्यक्तित्व में प्रसन्न।"[35]

4.1.6 प्रकृति का लोकमंगलकारी रूप :

कवि की रचनाओं को पढ़कर पहला प्रभाव जो मन पर पड़ता है, वह यह है कि वे प्रकृति के बड़े प्रेमी हैं। इस क्षेत्र में प्राकृतिक वस्तुओं, उनके क्रिया-कलापों तथा रम्य और भयंकर वातावरण के वर्णन और चित्रण में अनूठी कल्पनाओं और नए उपमानों को वे इस प्रकार आँखों के सामने लाते हैं कि वर्ण्य विषय का सजीव "रूप" खड़ा हो जाता है। विषय इनके सामान्य ही रहते हैं जैसे फूल, पक्षी, नदी आदि पर वे अपने में स्वतंत्र नहीं हैं। कवि के अनुसार वे लोकमंगल करने के लिए आते हैं। वे मनुष्य के लिए हैं और मनुष्य उनके लिए। प्रकृति के प्रति इन्होंने ऐसी गहरी आत्मीयता स्थापित कर ली है कि ये उसे स्थान-स्थान पर संबोधित करते पाये जाते हैं। प्रकृति को कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है, लेकिन ये कली को देखेंगे तो उससे खिलने की, पक्षी को पायेंगे तो उससे गाने की और बादल की ओर दृष्टि उठाएंगे तो उससे बरसने की याचना करेंगे- और वह इसलिए जिससे मनुष्य ठीक से मुस्करा सके, गा सके, उदार बन सके। कवि अनेक स्थानों पर मनुष्य के जीवन की तुलना प्रकृति के जीवन से की है-और वह इसलिए, जिससे मनुष्य उसके सामंजस्य में अपना जीवन व्यतीत कर सके।

कवि ने प्रकृति के माध्यम से जनकल्याण की बात की है। वह वर्षा से कहता है कि जब भी तुम सावन में आते हो, सभी किसानों के मन हर्षोल्लास से भर उठते हैं। क्योंकि वर्षा के आने से खेतों में अनाज की उपज अधिक मात्रा में हो सकती है। अतः कवि

[34] गीत फरोश-पृ.133
[35] व्यक्तिगत-पृ.122

प्रकृति को सारे संसार की उपजीविका का साधन मानता है। इसलिए वह सारे संसार का हित के लिए नतमस्तक होकर वर्षा से विनती करता है-

"इतने कि कहता हूँ
राम तुम बरसों खूब खेतों में सरसों खूब
"राम" तुम्हें कहता हूँ, इतना मैं बहता हूँ।"[36]

किंतु जब फागुन में असमय मेघ के छाने से कवि किसान की बेचैनी महसूस करता है। क्योंकि फसल काटने से पहले यदि वर्षा हो जाए तो खड़ी फसलें नष्ट हो जायेंगी। अतः सारे संसार की चिंता मन में लिए कवि कहता है-

"फसलें खड़ी हैं, उनको तुम परसना मत,
कटने के पहले फसल खेतों पर बरसना मत
मत हूं मैं।
जाओ तुम
सावन में आओ तुम
रूप से बड़ा है गुण ऐसा सुना है मैंने।
दोनों को पाकर प्राण तुमको चुना है मैंने
लाज क्या रखोगे नहीं मेरी और अपनी?
असमय में आओ मत।
बादल हो-सही है किंतु फागुन में छाओ मत।"[37]

मिश्र जी को कृषकों के कवि कहना अनुचित न होगा। वे मानते हैं, किसान के हर्ष तथा उल्लास का कारण प्रकृति ही है। मेघों के छा जाने से किसान का हृदय अतुलनयी आनंद से भर उठता है। घन गर्जन को विवाह का उत्सव मानते हुए, एक सुखद प्रसन्नता को दर्शाते हुए वह वर्षा को पुत्र जन्म मानते हैं। कवि कृषकों के अंतर्मन में झांककर देखते हुए, स्वयं प्रकृति के रूप को लेकर जनमंगल की भावना व्यक्त करता है-

"तब वृष्टि हुई,
वातावरण में झंझा-झकोर भीतर आया,

---
[36] गीतफरोश-पृ.82
[37] गीतफरोश-पृ.82

लाया जलकण, नव-वर्षा के छू गयी बूँद मेरा शरीर

....

उसकी अटपटी सी भाषा में उल्लास मयूरों का उमडा

घन गर्जन भी उसका विवाह, वर्षा थी उसको पुत्र जन्म।"

निस्संकोच कह सकते हैं कि भवानी प्रसाद मिश्र के जीवन बोध ने प्रकृति के प्रति गहरी आत्मीयता पैदा की है। सतपुडा के जंगल, पशु-पक्षी, विंध्याचल की श्रृंखलाएँ, नर्मदा की प्राणधारा और तारों भरे आसमान की चांदनी ने कवि की संवेदना को गहनता दी है। संपादकीय में लक्ष्मण केड़िया ने ठीक ही लिखा है कि-"वह प्रकृति का मानवीकरण नहीं करते, बल्कि अपने "मनुष्य" पर प्रकृति को बिछा देते हैं, उसे जमकर जीते हैं। कवि यथार्थ अभिव्यक्ति तक नहीं रुकता, वह जीवन का सत्य कहता है। उसका प्राकृतिक-प्रेम पारिवारिक आत्मीयता तथा सामाजिक बोध से सराबोर है।"[38]

4.2 बिंब रूप :

काव्य में बिंब-योजना का बहुत महत्व है। जेम्स आर क्यूझर ने लिखा है-वास्तव में भावों में संवेदनीयता और अभिव्यक्ति में तीव्रता के समावेश हेतु बिंबों का प्रयोग किया जाता है। बिंब विधान के पीछे जो मनोवृत्ति सक्रिय दिखलाई पड़ती है वह है भावावेगमय विचारों और वस्तुओं के कल्पित रूप को इंद्रियगाह्य बनाने की चेष्टा।"[39] किसी भी रागात्मक वृत्ति की ऐसी अभिव्यक्ति, जो ऐन्द्रियता को संस्पर्श कर सके, बिंब-विधान के अंतर्गत रखी जा सकती है। बिंब-प्रयोग द्वारा काव्याभिव्यक्ति में रागात्मक-स्फुरण जाग्रत करने की अधिक सामर्थ्य आ जाती है। वास्तव में बिंब, मुख्यार्थ तक पहुंचने में अत्याधिक सहायता देते हैं।

बिंब एक व्यापक शब्द है। साहित्य और मनोविज्ञान दोनों में इसका प्रयोग समानरूप से किया जाता है। मनोविज्ञान के इस शब्द का अर्थ है मानसिक पुनर्निर्माण, एक स्मृति अतीत की एक संवेदनात्मक अनुभूति आवश्यक नहीं कि बिंब केवल दृश्य ही हो। वह एक ऐंद्रिय अनुभूति, एक विचार, एक मानसिक घटना, एक अलंकार या फिर किन्ही दो वस्तुओं की तुलनात्मक इकाई

---

[38] भवानी प्रसाद के आयाम-पृ.7

[39] Elements of poetry, James.R.Keuzer-p.119

भी हो सकती है। सारंश यह है कि बिंब शब्दों में बुना वह चित्र है जो कवि के तीव्र भावावेश को पाठक तक संप्रेषित करता है।

डॉ.भगीरथ मिश्र ने "पाश्चात्य कलावादी मानदण्ड" शीर्षक के अंतर्गत बिंब पर विचार किया है और चित्र के स्थान पर बिंब शब्द का ही प्रयोग किया है। उनका कथन है-"वस्तु, भाव या विचार को कल्पना एवं मानसिक क्रिया के माध्यम से इंद्रिय गम्य बनाने वाला व्यापार ही बिंब-विधान है। इस प्रकार काव्य के प्रसंग में किसी भाव या विचार को तथा किसी वस्तु, व्यक्ति या पदार्थ की विशेषताओं या रूपगुणों को इंद्रिय गोचर एवं हृदयंगम बनाने के हेतु जो संप्रेषक स्पष्ट अप्रस्तुत रूप योजना की प्रणाली अपनाई जाती है वह बिंबवाद है।"[40]

लिटररी क्रिटिसिज्म में बी.डी. सत्तिगिरी ने बिंब को यों परिभाषित किया है-"बिंब शब्द का मूल अर्थ सादृश्य चित्र है।"[41] वर्डस्वर्थ कहते हैं-"काव्य मानस तथा प्रकृति का बिंब है।"[42] डॉ.नगेंद्र के अनुसार-"काव्य बिंब शब्दार्थ के माध्यम से कल्पना द्वारा निर्मित एक ऐसी मानव छवि है जिसके मूल में भाव प्रेरणा रहती है।"[43] नगेंद्र वर्मा के अनुसार-"कविता का उद्देश्य प्रत्यक्षीकरण के किसी विशिष्ट क्षण को बिंब के माध्यम से पाठक के समक्ष प्रस्तुत करना है।"[44] उपर्युक्त परिभाषाओं के अनुसार यह स्पष्ट है कि बिंब के द्वारा अपने अनुभव को कृतिकार सहजता से प्रकट करता है। अतः बिंब के द्वारा कवि जीवन और जगत के चित्रों को भाव और कल्पना के आधार पर अभिव्यक्त करता है।

अतः कुछ बिंब रूप के उदाहरण प्रस्तुत हैं-

4.2.1 भाव बिंब :

भवानी प्रसाद मिश्र को फूल भी आदमी है और कांटा भी आदमी है। इस तरह विभिन्न संदर्भों में नये-नये अर्थ, प्रतीक, बिंब कवि को मिल जाते हैं। विविध दृश्यों को देखकर उनके अनुरूप मनःस्थितियाँ संजोने में वे सिद्धहस्त हैं। उन्हें दृश्य और वस्तु की हर झलक प्रतीक रूप में अपना आशय देती है। चाहे बात रंग और प्रकाश की हो, चाहे आदिम सुगंधों की, उनकी सांकेतिकता और प्रतीकात्मकता हमें ठीक मनोभूमि पर

---

[40] काव्य शास्त्र-पृ.242
[41] B.P.Sattigari :he word image organelly mean to visual picture:Literary critisism-p.14
[42] Poetry is the image of Man and nature:English critical essay ninteenth century, p-14
[43] आस्था के चरण-पृ.135
[44] आधुनिक पाश्चात्य काव्य और समीक्षा के आदान-पृ.165

पहुंचाती है। हम रचनाओं में यौन उपमान या यौन-प्रतीकों, बिंबों का सर्वथा अभाव है जो उनके आदर्श दृष्टि का परिचायक है। उन्होंने एक जगह लिखा है-मैं तो खूबसूरत अंगों पर हाथ लगाने के लिए वैसे भी प्रसिद्ध नहीं हूँ। कवि के बिंब ऐसे हैं कि पूरी भावभंगिमा और यथातथ्य स्थितियों के साथ चित्र सामने झूल जाते हैं। बिंब रूप को मूर्त और ग्राह्य बनाते हैं। इनसे काव्य को अतिरिक्त अर्थवत्ता मिली है। दृश्य या वस्तु का पूरा रूप ठोस और प्रभावशील बन जाता है। इस बिंब-रूप का उदाहरण-

"एक बहुत ही तन्मय चुप्पी
जो माँ की छाती में लगाकर मुँह
चूसती रहती है दूध
मुझसे चिपक कर पड़ी है।"[45]

"पक्के घर पक्के आदमी" कविता में महानगरों की व्यस्त जिंदगी और जन-जीवन के बिखराव का सही चित्र-बिंब प्रस्तुत करती है। उनकी एक रूप बोझिल जिंदगी मानो घुटन और ऊब महसूस कराने वाली जिंदगी होती है। उसमें सामाजिक संबंध है और न विचारों का कोई परस्पर आदान प्रदान। ये पक्के घर के रहने वाले पक्के आदमी जिनकी वैचारिक दुनिया केवल अखबारों में सिमटकर रह गई है। प्रकृति-सौंदर्य से भी अप्रभावित है। न ओस की बूंदें उन्हें आकृष्ट करती हैं और न प्रकृति का हरापन। इनके विचार अखबारों के विचार होते हैं जो वास्तव में प्रजातांत्रिक भावनाओं का प्रतिनिधित्व नहीं करते बल्कि सरकारी हाथों में खेलते हैं। कवि व्यंग्यात्मक शैली में कहता है कि- "पक्के महलों में रहनेवाले ये परिपक्त उम्र के आदमी यथार्थतः विचारों में पूरे अपरिपक्व होते हैं।"[46] पक्के घरों के साथ ही कवि का मन ग्राम्य-जीवन की उस सुंदर और मधुर झाँकी की स्मृति में डूब जाता है जहाँ उसने पनघट पर बतियाते, पीतल का घड़ा माँजते, ताबें की डोलची चमकाते और आँखें ननाते हुए तरुणियों को देखा था और बतरस का आनंद लिया था। इन पंक्तियों में पनघट का पूरा दृश्य-बिंब और लोक जीवन की झांकी रूपायित हो उठी है-

"कोई माँज रही है

---

[45] बुनी हुई रस्सी-पृ.28
[46] खुशबू के शिला लेख-पृ.141

अपना पीतल का घड़ा
रेत मिली माटी से
चमका रही है कोई
तांबे की डालची
बातें भी चल रही हैं
आँखें उनकी
एक-दूसरे की तरफ
उठते-गिरते ऐसी जल रही हैं
जैसे बातियाँ नीराजनों की तुलसी के चौरे पर।"[47]

"डालें वहाँ लदी रहती हैं, आँखें यहाँ भरी होती हैं
वहाँ लाल होता है टेसू, यादें यहाँ हरी होती हैं।"[48]

उपर्युक्त पंक्तियों में मूल भावों को दर्शाने के लिए अप्रस्तुत का प्रयोग किया गया है। किंतु यह अमूर्त रूप में ला गये हैं। जबकि अनुभूति पक्ष प्रधान हो गया है। इसी प्रकार-

"कैसे हैं यह एक रस जीवन
जिस पर न मेघ छाते हैं न तुषार पड़ता है
न फूल खिलते हैं न काँटा गडता है।"[49]

*   *   *   *   *

"शीत से
वसंत जितना दूर है
बूँद से दूर है जितना
मोती या कहो
दूर है जितना फूल से
फल उतनी ही दूर है अब

---

[47] खुशबू के शिला लेख-पृ.142
[48] गीतफरोश-पृ.3
[49] चकित है दुःख-पृ.14

मेरी देह से आग आग से राख

राख से गंगाजल।"[50]

*   *   *   *   *

सागर से मिलकर जैसे

नदी खारी हो जाती है

तबीयत वैसे ही

भारी हो जाती है मेरी

संपन्नों से मिलकर।"[51]

*   *   *   *   *

"खरीदना चाहते हो

कोई सपना आज के दिन खुला है

सपनों का बाज़ार कल तक के लिए

मत रुकना सपनों का बाज़ार

आज भर के लिए।"[52]

*   *   *   *   *

"मेरे देश

तुम उस बड़ी नाँव की तरह हो

जिसकी तली में छेद हो गया है।"[53]

उपर्युक्त सभी उदाहरण भवानी प्रसाद मिश्र के काव्य में भाव पक्ष और अनुभूति पक्ष को अधिक व्यापक बनाते हैं। चित्र पक्ष केवल ढांचा है, जबकि भावपक्ष प्राण रूप में रूपायित हुआ है।

4.2.2 इंद्रिय बोध बिंब :

बिंब केवल कल्पना का चमत्कार नहीं होता। उसकी निर्मिति के पीछे कवि के अनुभव जगत का गहरा दबाव होता है। इसलिए अनुभवों के विविध आयामों के अनुसार

---

[50] अंधेरी कविताएँ-पृ.71

[51] व्यक्तिगत-पृ.93

[52] इदं न मम-पृऋ46

उसे विविध रूप प्राप्त होते हैं और उन्हीं के आलोक में उनका अध्ययन भी होता है। बिंब की निर्मिति और अध्ययन का मुख्य आधार इंद्रिय बोध ही है। अतः "गीत फरोश" में दृश्य-बिंबों की प्रधानता है। भवानी प्रसाद मिश्र विशेषतः लोक-परिवेश में व्याप्त प्रकृति और मानवीय छवि के कवि हैं। इसलिए उनके अधिकांश दृश्य-बिंब यहीं के यथार्थ से बने हैं। ये दृश्य एक ओर प्रकृति के विविध कोमल-पुरुष, लघु-विशाल रूपों को व्यक्त करते हैं तो दूसरी ओर मानवीय जीवन की भी विषमताओं और विडंबनाओं को रूपायित करते हैं जैसे गाँव, सन्नाटा, असमय मेघ से, घर की याद आदि कविताओं के बिंबों में इसी प्रकार के सत्य की अभिव्यक्ति हुई है जैसे "गाँव" कविता की इन पंक्तियों को देखें-

"रात बीती है अंधेरी छंट रही है
और पीली पौ अकेली फट रही है
एक चिडिया घोंसले को छोड़ जागी
और पूरब में लगी बेलाग आगी
गाँव में पहली किरण के साथ जागो
चैन जगने पर नहीं जिनको अभागे
जोतना है खेत हल के साथ निकले
बीज बोना है कि दल के साथ निकले
सुबह की ठंडी हवा कपड़े नहीं हैं
पाँव रखते हैं कहीं पड़ते कहीं हैं
पाँव जिनमें गति नहीं कंपन बहुत है
प्राण में जीवन नहीं, तड़पन बहुत है।"[54]

भवानी प्रसाद के काव्य में चाक्षुण बिंबों के रूप में बाह्य सभी विषय अंतकरण में चित्र रूप में प्रतिबिंबित होते हैं-

"उधार उजाला
चौबीस घण्टों में चार-चार मिला
और चार बार भर गया भीतर

---

[53] मानसरोवर दिन-पृ.37
[54] गीतफरोश-पृ.34

पहले से भी घना अंधेरा।"[55]

*   *   *   *   *

"तुमने अपना हाथ

मेरे हाथ में दिया

और अपनी आँखें तुमने

मेरी आँखों में डाल दी

अपनी समझ में इतना करके

मेरे

घने अंधेरे में

मशालें उजाल दीं

और फिर चले गये तुम।"[56]

*   *   *   *   *

"सूरज चला गया, यदि बादल लाल लाल होते हैं, तो क्या

लायी रात अंधेरा किरणें यदि तारे बाते हैं, तो क्या

वृक्ष उखाड चुकी है आँधी ये घनश्याम जल्द अब जाए

मानी ने मुँह फेर लिया है, हम पानी होते हैं तो क्या?"[57]

उपर्युक्त उदाहरणों में भवानी प्रसाद मिश्र ने आंतरिक मनःस्थितियों को सूक्ष्म दृष्टि से प्रतिबिंबित करते हुए, विविध रंग योजना को भी रूपायित किया है।

4.2.3 अलंकृत बिंब :

भवानी प्रसाद मिश्र के काव्य में अलंकृत बिंबों का प्रायः अभाव है। कहीं कहीं प्रयोग हुआ है। काव्य में भाव और उपकरणों का सम ही कलात्मक सौंदर्य है। विविध कल्पनाओं और उपकरणों द्वारा भावों को सजाया जाए, वहाँ अलंकृत बिंब की सृष्टि होती है। अतः भवानी प्रसाद मिश्र अपने काव्य में भावों को अधिक सुसज्जित करने के

[55] परिवर्तन लिए-पृ.101

[56] व्यक्तिगत-पृ.154

[57] गीतफरोश-पृ.66

हेतु अलंकरण उपमाओं का सहारा नहीं लिया है, बल्कि वे कहीं-कहीं सहज भाव से आ गये हैं। उदाहरणतः

"अपने दुःख की यही कहानी
नदिया जैसा बहता पानी
दोनों तीर खींचता चलता
ख़ुख में आँख भींचता चलता।"[58]

* * * * *

"एक बहुत ही तन्मय चुप्पी ऐसी
जो माँ की छाती में लगाकर मुँह
चूसती रहती है दूध
मुझे चिपककर पड़ी है।"[59]

* * * * *

"अलस-कल्पना प्रायः सुंदरी कंपमान वक्षे,
मंगल किंकिणि-कंकण के स्वर राशि अशोक कक्षे।"[60]

* * * * *

"जैसे मैं माँ के गर्भ से निकला था
वैसे निकल जाना चाहता हूँ
यहाँ से।"[61]

4.2.4 सामाजिक बिंब :

भवानी प्रसाद मिश्र की व्यापक दृष्टि, संसार की विराटता में मानवीय मूल्यों को खोजती है। जहाँ मानवीय मूल्यों का लोप हो रहा है, वहाँ कवि का हृदय आतंकित है। अतः कवि या हृदय सामाजिक परिस्थितियों में उलझकर वर्ग-संघर्ष से अधिक विचलित हुआ है। वस्तुतः कवि की भावना का विस्तार सामाजिक चेतना का प्रवाह है। निम्न

---

[58] गीत फरोश-पृ.89
[59] बुनी हुई रस्सी-पृ.28
[60] कालजयी-पृ.56
[61] शरीर कविता फसलें और फूल-पृ.135

पंक्तियों में कवि की दृष्टि समाज के निम्न वर्गों पर गयी है, उस वर्ग के प्रति कवि के मन में अटूट आस्था है। उसका मन संसार की इस अवस्था के दग्ध है। अतः यहाँ करुणा-भाव, बिंब-रूप को देखें-

"पावडे की तरह बरतकर
प्रजा को तब भी
उन्होंने अपने को
प्रजातंत्रीय माना था
और धूल झाडते हुए उसकी
कालीनों की तरह
अब भी मान रहे हैं अपने को
प्रजातंत्रीय।"[62]

*   *   *   *   *

"तंग गलियों में कहीं बच्चे खड़े हैं,
लाल हैं पर भाग पत्थर से लडे हैं
धूल के हीरे नहीं अब धूल हैं ये,
फूल जंगल के नहीं, अब शूल हैं ये।
रूप इनका आँख में गड-सा रहा है
और ढाँचा प्राण पर पड़-सा रहा है,
हाय रे बचपन तलक सुख से न बीता
वाह रे दारिद्रय तूने खूब जीता।"[63]

उपर्युक्त पंक्तियों में "प्रजातंत्र" के बाद भी समाज की स्थिति का बिंब रूप हमारे समक्ष खड़ा होता है। कवि का मन दुविधाग्रस्त है। भवानी प्रसाद मिश्र ने भावात्मक और कलात्मक अनेक सामाजिक बिंबों को अपने काव्य में संप्रेषित किया है।

4.2.5 वस्तु बिंब रूप :

---

[62] त्रिकाल संध्या-पृ.119

[63] गीतफरोश-पृ.36

वस्तु बिंबों में यथार्थ की चित्र रेखाओं के साथ वस्तु-पक्ष मूल रूप में हमारे समक्ष अधिक स्पष्ट होता है। इन बिंबों के दो प्रकार माने जाते हैं-

1. यथातथ्य या प्रतिचित्रात्मक
2. गत्यात्मक या व्यापार व्यंजक

यथातथ्य या प्रतिचित्रात्मक वस्तु बिंब में समस्त वातावरण को उसी मूल रूप में बिना किसी कल्पना के हमारे समक्ष उपस्थित किया जाता है-

"आँखें उठाओ
देखो आकाश नीला है
हल्के लाल बादल हैं,
चांद गहरा पीला है अच्छी शाम है
हवा रुकी है पंछी गा रहे हैं।"[64]

* * * * *

"लाल पंछी सो हिरन दल
चाँद के कितने किरन दल
झूमते बन फूल कलियाँ
खिल रही अज्ञात कलियाँ
हरित दूर्वा, रक्त किसलय,
पूत पावन, पूर्ण रसमय
सतपुडा के घने जंगल
लताओं के बने जंगल।"[65]

उपर्युक्त पंक्तियों में कवि ने प्रकृति चित्रों को रूपायित करते हुए, सतपुडा के जंगल, नदी तथा आकाश का बिंब-शब्द-रूप हमारे समक्ष प्रस्तुत किया है। यह रूप कवि ने तटस्थ भाव से उतारे हैं। जिनमें उपमा या कल्पना व्यंजक हैं। इसमें यथार्थ चित्रों के साथ गति का आभास होता है। इन बिंब रूपों में यत्र-तत्र हल्का सा व्यंग्य भी उभर आया है-

---

[64] चकित है दुःख-पृ.11
[65] गीत फरोश-पृ.63

"एक बूढ़ा आदमी

चल रहा है सड़क पर

बदल दिया है उसका रंग

बत्ती के मटमैले उजाले ने

और कुत्ते उस पर भौंक रहे हैं।"[66]

उपर्युक्त चित्र में "चल रहा है", "भौंक रहे हैं" आदि शब्द गत्यात्मक रूप चित्र को उपस्थित करते हैं। अतः "व्यापार व्यंजक" वस्तु बिंब का मूल रूप स्पष्ट हो गया है। साथ ही रंग बदलने में "बत्ती का", "मटमैला उजाला" स्थिति विशेष का सूचक है। अतः व्यंग्यात्मकता का भाव भी उभर आया है।

"शाम हुए रानी खिडकी पर आती

थी पागल के गीतों को वह दुहराती,

तब पागल आता और बजाता बंसी

रानी उसकी बंसी पर छुपकर गाती।"

किसी एक दिन राजा ने यह देखा,

खिंच गयी हृदय पर उसके दुःख की रेखा।"[67]

* * * * *

"धूल गोबर और कचरे में भरी-सी

देवियाँ निकली कहाँ जीवित भरी-सी!

गाँव में सूरज सवेरा कर रहा है?

गाँव में सूरज उजाला भर रहा है?

ढोर छूटें हैं कि जंगल को चले हैं,

साथ में दो-चार चरवाहे भले हैं।"[68]

उपर्युक्त उदाहरण गत्यात्मक वस्तु-बिंब के रूप की सृष्टि है।

4.3 प्रतीक विधान का रूप :

---

[66] अंधेरी कविताएँ-पृ.101

[67] गीत फरोश-पृ.18-19

[68] गीत फरोश-पृ.

हर रचनाकार अपनी आंतरिक अनुभूति को अभिव्यक्त करने में उसे असमर्थता का सामना करना पड़ता है। तब वह संसार की विराटता से प्रतीकों को चुनकर अपनी अभिव्यक्ति को सशक्त बनाने का प्रयास करता है। इस संदर्भ में श्री देवेंद्र आर्य का विचार है कि-"जब भाषा संवेदजन्य अनुभूतियों को अभिव्यक्त करने में अपने को कुछ असमर्थ सा पाती है तब एक ऐसी कलात्मक मुक्ति का अन्वेषण किया जाता है, जो अमूर्त सूक्ष्म और भाव प्रवण अनुभूतियों को वाणी का परिधान पहना सके। प्रतीक ऐसे ही भावों को रूप प्रधान करता है।"[69] हमारे समक्ष इन प्रतीकों को लेकर कई सवाल खड़े हो सकते हैं। क्या प्रतीकों के बिना रचना हो नहीं सकती? या फिर काव्य विधा में प्रतीकों का प्रयोग क्यों किया जाता है? कवि विवश है सीमित शब्दों, अनुभव को अभिव्यक्त करने के लिए अनुभव जब रूढ़ भाषा में व्यक्त नहीं हो पाता तब कवि अपने अनुभवों को सटीक रूप में व्यक्त करने की खातिर प्रतीकों का प्रयोग करता है। अतः प्रतीक ही एक माध्यम है, जिसके द्वारा रचयिता अपने गहन से गहन विचारों को सीमित शब्दों में व्यक्त करने में सफल होता है।

अनेक साहित्यकारों ने अपने मतानुसार प्रतीकों की विविध व्याख्या की है। डॉ.वीरेंद्र सिंह का कहना है-"मानव नामधारी प्राणी जीवधारियों की तरह चिन्हों का प्रयोग केवल संकेत के लिए नहीं करता है, पर किसी भाव या विश्वास को प्रदर्शित करने के लिए भी करता है। जब ये चिन्ह किसी विचार, भाव या धारणा का प्रतिनिधित्व करते हैं और अपने अर्थ में रूढ हो जाते हैं, तब वे प्रतीक की श्रेणी तक पहुँचते हैं।"[70] अतः विविध रूपात्मक प्रतीक अप्रत्यक्ष को प्रत्यक्ष रूप में हमारे सामने उपस्थित करने में सहायक होते हैं।

प्रतीकों के प्रकार :

डॉ.रामअवध द्विवेदी के अनुसार प्रतीकों के मुख्य तीन प्रकार माने जाते हैं। यथा-

4.3.1 प्राकृतिक प्रतीक :

इस की सृष्टि उपकरणों को प्रतीकत्व प्रदान करके होती है। इस प्रकार की व्यवस्था में नदी, पर्वत, सुमन इत्यादि में सांकेतिक सूक्ष्म अर्थ रहता है। इस कोटि के प्रतीक सर्वाधिक ग्राह्य होते हैं।

---

[69] हिंदी संत काव्य में प्रतीक विधान-पृ.17
[70] प्रतीक दर्शन-पृ.12

उपर्युक्त प्रकृति के उदाहरण भवानी प्रसाद मिश्र जी के काव्य में पाये जाते हैं, साथ ही साँस्कृतिक, सैद्धांतिक तथा भावात्मक प्रतीकों का प्रयोग भी किया गया है। अतः मिश्र जी के काव्य में प्राकृतिक-प्रतीक-रूप योजना कुछ इस प्रकार हुआ है।

प्रकृति और मानव में भेद न मानने वाले कवि प्रकृति को जीवन से एकाकार महसूस करते हैं। भवानी प्रसाद मिश्र प्रकृति के कवि रहे हैं। अतः कवि अपने प्रकृति सौंदर्य के विविध प्रतीकों से अपनी भावनाओं को अभिव्यक्ति दी है। कवि ने प्रकृति के परिवर्तित स्वरूप को आधार बनाकर बदलती मनःस्थितियों को अत्यन्त सहज रूप से रूपायित किया है-

"बूँद से बूँद है जितना
मोती
या कहो
दूर है जितना फूल से फल
उतनी ही दूर है अब
मेरी देह से आग।"[71]

*   *   *   *   *

अगर बिजली चमककर
आँख से कहती
कि बहती झोपड़ी में एक
हाहाकार बैठा है
गिरा होता कहीं
गर्वित किसी के शीशपर।"[72]

*   *   *   *   *

बहती शाम
आतंकित किसी प्रेम के साहस की तरह

---

[71] अंधेरी कविताएँ-पृ.7
[72] गीत फरोश-पृ.60

और दिन

गिन रहा जैसे कडियाँ किसी छत की

पड़ा हुआ पहाड़ की चोट पर

अँधेरा घिर रहा है

शाम के सांवले चेहरे का शतरंगी बुर्का

गिर रहा है।"[73]

* * * * *

"सूखी डाली जैसे किसी हरे पेड़ की

पेड़ से कटकर ही हो सकती है काम की

मेरे उदास खयाल लगभग इसी तरह

तापे जा सकते हैं दूर कहीं

हँसी-खुशी की महफिल से।"[74]

उपर्युक्त पंक्तियों में प्रयुक्त उपमान नवीन लगता है, किंतु प्रकृति के उस वातावरण से लिया गया है, जिससे सामान्य से सामान्य व्यक्ति भी परिचित होता है। कौन नहीं जानता कि पेड़ से कटकर ही लकड़ी मनुष्य के उद्देश्यों की पूर्ति करती है। इस साधारण सी घटना को लेकर कवि ने अपनी मनःस्थिति का जो उद्‌घाटन किया है वह अत्यन्त सजीव हो उठा है और कवि की सूक्ष्म दृष्टि को प्रमाणित करता है।

गंभीर से गंभीर बात को भी प्राकृतिक प्रतीकों द्वारा बात को सीधे और प्रभावशाली ढंग से कहने की मिश्र जी में पूर्ण क्षमता है। जिसका प्राकृतिक प्रतीक रूप-

"शरीर और फसलें

कविता और फूल

सब एक हैं

सबको बोना बखरना गोडना

पड़ता है

सत्य हो शिव हो सुंदर हो

---

[73] चकित है दुःख-पृ.2

[74] चकित है दुःख-पृ.

आखिरकार इन सबको

किसी न किसी पल

तोड़ना पड़ता है।"[75]

वस्तुतः भवानी प्रसाद मिश्र ने अपने काव्य में प्राकृतिक प्रतीकों का प्रचुर प्रयोग किया है। ये प्रतीक जड़ और चेतन दोनों प्रकार के हैं। डॉ.विजय बहादुर सिंह ने ठीक ही लिखा है-"वह केवल कमल का फूल, हिमालय पहाड़ और आकाश का तारा नहीं है। वह जंगल और नदी भी है। वह केवल रोने-झींकने वाला, आफतों के बीच थरथराने वाला ही नहीं मौत से दो-दो हाथ करने का हौसला भी है। जंगल को वह प्यार करता है पर समूचे जंगल की अराजकता को खत्म करने के लिए आग लगाने का समर्थन भी करता है।"[76]
इस प्राकृतिक प्रतीक का सुंदर रूप-

"फूल को

बिखरा देने वाली हवा भी

कौन कहता है

कि चलनी नहीं चाहिए

समूचा जंगल

जला देने वाली आग भी

कौन कहता है

कि लगनी नहीं चाहिए।"[77]

*   *   *   *   *

"पहाड़ों पर से

सँभलकर उस तरह

सँभलकर जिस तरह हम

चढ़े थे पहाड़ों पर।"[78]

4.3.2 व्यक्तिगत प्रतीक :

---

[75] कविता, फसलें और फूल-पृ.

[76] आज के लोकप्रिय हिंदी कवि-पृ.19

[77] आज के लोकप्रिय हिंदी कवि-पृ.19

अनुभूति और प्रेरणा से संबद्ध होकर ये प्रतीक रूप भवानी प्रसाद मिश्र के काव्य संग्रहों में आये हैं। उदाहरणार्थ-

"द्वार खोला

मन सहज भोला

न डोला, द्वार जब खोला किसी भी हरे

पीपल का कि वट का एक पापी पांव

मन सहज भोला न समझा बात।"[79]

कवि इन प्रतीकों का रूप विधान कर अपनी संवेदनशील मनोवृत्ति का परिचय भी दे देता है। फिक्र के लिए "जड़" प्रतीक का "रूप" यथा-

"ध्यान कितना फिक्र कितनी

डाल जितनी जडें उतनी।"[80]

कवि ने हवा को प्रतीक मानकर निराशा मनःस्थिति को प्रतिभाषित किया है। अतः "हवा" निराशा का प्रतीक बना है, जिसका रूप विधान देखें-

"हवा ने

चाँटा सा मार दिया है तुम्हें

याद ने काँटा सा उभार दिया है भीतर।"[81]

* * * * *

"चारों तरफ से बंद

किसी मकान की तरह

उसे खोलूँ।"[82]

दुःखातिरेक में डूबने की स्थिति को झील के टूटने के प्रतीक का प्रयोग उस क्षण की भाव स्थिति को सही अर्थ में संकेतित कर जाता है। इसका रूप-

"दुःख की एक

---

[78] मानसरोवर दिन-पृ.50
[79] गीतफरोश-पृ.49
[80] गीतफरोश-पृ.133
[81] व्यक्तिगत-पृ.47
[82] खुशबू के शिलालेख-पृ.137

झील की झील

टूट गयी है।"[83]

4.3.3 परंपरागत प्रतीक :

इन प्रतीकों का संबंध परंपरा से जुड़ा है। इन में समय के साथ कोई परिवर्तन नहीं आया है। जैसे फसलें, फूलों, अंधेरा, उजाला, मानसरोवर आदि परंपरागत प्रतीक हैं। इन प्रतीकों के द्वारा भवानी प्रसाद मिश्र ने सीधे-सीधे मन की बात की है। अतः ये प्रतीक संवेदनशील तथा भावात्मकता के सूचक हैं। अतः इन का "रूप" विधान लगभग सभी संग्रहों में दृष्टिगोचर होता है। यथा-

"शाम को खोलकर द्वारे अँधेरे कमरे के
बाहर निकलता हूँ
डूब जाने के खयाल से और भी ज्यादा फैले हो,
आमावस के अपने हाथों बने
जीवित अँधेरे में।"[84]

*   *   *   *   *

"उधेड डालता हूँ
यादों के कई बार आवरण
अप्सरा की तरह खड़ी हो जाती हैं वे
मेरे सामने नितावरण
मिलकर सरोवर के पानी से।"[85]

"मानसरोवर" और "शतदल" इन दो प्रतीकों को क्रमशः व्यष्टि और समस्टि में जीवित जीवन मूल्यों, आस्थाओं का प्रतीक बनाकर कवि ने समष्टि के प्रति अपनी आस्था और श्रद्धा को व्यक्त किया है। इसका सुंदर "रूप"-

"हाय

---

[83] मानसरोवर दिन-पृ.25
[84] अंधेरी कविताएं-पृ.19
[85] अनाम तुम आते हो-पृ.22

मैंने चुन लिया

एक शादल उतरकर तुम में

ओ मेरे मानसरोवर दिन।"[86]

4.3.4 सौद्धांतिक प्रतीक :

इसके अंतर्गत राजनैतिक, दार्शनिक और वैज्ञानिक प्रतीक आते हैं। वर्तमान भौतिक युग की विविध समस्याओं में उलझकर नया कवि वर्तमान के प्रति असंतुष्ट हो रहा है। साथ ही विविध स्तरों पर व्याप्त भ्रष्टाचार उसे बेचैन करते रहे हैं। इन स्थितियों में परिवर्तन नयी क्रांति द्वारा ही आ सकता है। इसी विचारधारा को आधार मानकर भवानी प्रसाद मिश्र जी अपनी रचनाओं में सैद्धांतिक प्रतीकों का प्रयोग कियाहै जिसका सफल "रूप" विधान इस प्रकार-

"हाय रे संसार सागर

बन अगर पड़ता तो मैं

तुझको बताना एक गागर

झुला कर हाथों में ऊपर

उठाकर कंधों से ऊपर

मैं मुझे दे मारता पल भर।"[87]

यहाँ सागर और गागर आदि प्रतीकों द्वारा कवि नयी क्रांति, नये परिवर्तन का संकेत दिया है। इसके अतिरिक्त-

"इतना तो अंग्रेजों ने नहीं पीसा

यह एक नयी चक्की निकाल दी "मीसा"

जिसका मुडिया और पाट और गंड

हज़ारों के खून में सजा है

क्या यह देश इसी के लिए बना है।"[88]

*   *   *   *   *

---

[86] मानसरोवर-पृ.82

[87] गीतफरोश-पृ.154

[88] त्रिकाल संध्य-पृ.121

पाँवडे की तरह बरतकर
प्रजा को तब भी
उन्होंने अपने को
प्रजातंत्रीय माना था
और धूल झाड़ते हुए उसकी
कालीनों की तरह
अब भी मान रहे हैं अपने को
प्रजातंत्रीय।"[89]

राजनैतिक प्रतीकों के साथ-साथ वैज्ञानिक प्रतीकों के उदाहरण भी भवानी प्रसाद मिश्र की रचनाओं में विद्यमान हैं। यथा-

"वे इस हथौड़ों से
चाहे जैसा रूप
देते रहते हैं चीज़ों को ही नहीं
तथ्यों को और तमीजों को।"[90]

*　　*　　*　　*

"कहीं ऐसा न हो कि नई पीढ़ी
छोड़ दे बोना
अणुबम
उसे कर डाले निराश होकर
हम!"[91]

4.3.5 सांस्कृतिक प्रतीक :

इसके अंतर्गत रहन-सहन, आचार-व्यवहार, धर्म-त्यौहार आदि से संबंधित प्रतीकों का प्रयोग किया जाता है। यथा-

"भरी आँखें, रीते दिल से देख लूँ यह रंगरोली और,

---

[89] त्रिकाल संध्य-पृ.119
[90] अनाम तुम आते हो-पृ.107

जिंदगी हो लेगी पूरी-एक दो ऐसी होली और।"[92]

*   *   *   *   *

"धूप चढ़ती है, कि पनघट जग गया है,

एक छोटा सा कुँआ है फम गया है,

तरुणियाँ हैं घाट पर सीमी झुकी हैं,

और बधुएँ हैं घूँघट में लुकी है

हँस कभी पड़ती कभी कुछ बोलती हैं

यह हँसी दुःख में सनी है, खोखली है।"[93]

*   *   *   *   *

"मंदिर में घण्टा ध्वनि

जग जाती है

तब ठीक रात आती है

सूरज तब तक

काफी नीचे चला जाता है

स्निग्ध एक वातावरण

मन के भीतर

और बाहर छा जाता है।"[94]

4.3.6 भावात्मक प्रतीक :

भवानी प्रसाद मिश्र के काव्य में भावनाओं की सफल व्यंजना के उदाहरण अधिकांश पाये जाते हैं। वस्तुगत तथा हृदयगत भावों के प्रतीक उनके काव्य में प्रकट हुए हैं। रघुवीर सहाय के अनुसार-"यह पहचान कि जब सब महाकवि एक पिटा हुआ कविसमय दोहराने के लिए परिश्रम से जोड़-जोड़ कर शास्त्रीय पद्य रच रहे थे और जो कह रहे थे, वह विचित्र जान पड़ रहा था क्योंकि वह उनका सत्य नहीं था, तब एक कवि वह परिश्रम अनुभव के स्तर पर कर चुका था, और हल्का होकर वह एक बिल्कुल नई

---

[91] परिवर्तन लिए-पृ.69

[92] गीत फरोश-पृ.16

[93] चकित है दुःख-पृ.35

बात कह रहा था, जिसे सब जानते हैं। यह समझ कि इसी सादगी के साथ दूसरे भी कह लेते हैं, परंतु केवल भावनाओं को। पर यह कवि अपनी भावनाओं की प्रतिवस्तुएँ भी वर्णन के लिए अनायास ले आता हैः वह अपने को ही प्यार नहीं करता रहता।"[95] अतः कवि की भावना कृत्रिमता की अवहेलना करता है और उस असीम की उपासना करता है। यथा-

"वाणी को बुनन में,
कंकर को चुनने में
कोई उत्कर्ष नहीं
कोई नहीं हीनता।"[96]

कवि ने सतपुड़ा के घने जंगलों को देखकर "नींद" तथा "ऊँघते" प्रतीकों के प्रयोगों द्वारा निस्तब्ध भाव को व्यक्त किया है। इसका रूप-

"सतपुडा के घने जंगल
नींद में डूबे हुए से
उँघते अनमने जंगल।"[97]

* * * *

संध्य-सी हँसी सुबह से मन
सूरह से रंभ किरण से तन।

उपर्युक्त पंक्तियों में वस्तुगत भाव प्रतीक है। निम्न उदाहरण में आशा और उल्लास के लिए "संध्या", "सूरज", "सुबह" व "किरण" को प्रतीक रूप में अपनाकर अपनी रागात्मक प्रवृत्ति का ही परिचय दिया है। निम्न पंक्तियों में "सावन" की प्रतीकात्मकता कवि की इसी प्रवृत्ति का साक्षात्कार कराती है। यथा-

"सोचता हूँ
किस तरह इस हरे सावन का
बनूँ मैं अंग?

---

[94] अनाम तुम आते हो-पृ.106
[95] भवानी प्रसाद मिश्र के आयाम-पृ.86
[96] भवानी प्रसाद मिश्र के आयाम-पृ.86
[97] गीत फरोश-पृ.60

किस तरह इस ढंग से मैं भी हँसू बोलू

कि सावन साथ दे मेरा

कि उसके संग में हो लूँ?"[98]

उडती हुई कोकिल को देखकर कवि की भावनाएँ जाग जाती हैं। वह अपने भावों को व्यक्त करने के लिए कोकिला को संदेश वाहिका "यक्षिणी" का प्रतीक बनाता है। यहाँ कवि ने अपने भावों को बड़ी ही सूझ-बूझ के साथ व्यक्त करता है। इस उदाहरण में-

"कौन से नवदूत ने किस यक्ष से संकेत पाकर

प्यार कासंदेश तुझको सात सागर पर जाकर

उड चलो कहकर दिया तुम उड चली तुम यक्षिणी हो

तुम न केवल पक्षिणी हो।"[99]

"मीठी बानी" मिश्र जी की कौटुम्बिक विशेषता रही। उनके मुख से पुरुष वचन मुश्किल से ही निकला होगा। आश्रमवास की अनुशासित गतिविधि की छाप उनकी दिनचर्या पर आजीवन बनी रही। वृत्त-त्यौहारों की परिपाटी को उन्होंने भरसक आडंबरहीन रखा। घरेलू कामकाज में मदद के लिए उनके यहाँ अधिकतर दलित लड़के-लड़कियाँ ही रखे जाते थे। उन्हें पढ़ने के लिए प्रेरित करने के लिए उनका करुण भाव जाग उठा और उन्होंने "नई इबारत" शीर्षक कविता लिखी। यथा-

"कुछ लिख के सो

कुछ पढ़ के सो

तू जिस जगह जागा सवेरे,

उस जगह से बढ़ के सो।"[100]

"लिख", "सो", "बढ" प्रतीक विधान का "रूप" सफल प्रतीत होता है।

4.4 गीत :

गीत मनुष्य की एक स्वाभाविक अभिव्यक्ति का नाम है। आदिम अवस्था में भी अत्यन्त प्रसन्नता में मनुष्य के ह्रदय में गीत अवश्य निकले होंगे। उल्लास और वेदना दोनों ही मनुष्य के

---

[98] गीत फरोश-पृ.66

[99] गीत फरोश-पृ.10

मुख से अभिव्यक्त भाषा में परिवर्तन कर देते हैं। इन दोनों दशाओं में मनुष्य की भाषा असामान्य शब्दों से रंजित होकर लयात्मक हो उठती है। रोना और गाना दोनों ही मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्तियाँ हैं। गीत सहज ढंग से गाए गए होंगे और बाद में क्रमशः वे राग-रागिनियों और छंदों के साँचे में ढलते चले गए होंगे। राग-रागनियों से सज्जित गान को संगीत कहा गया है और छंदबद्ध गेय रचना को गीत। इस दृष्टि से भारत में गीत का प्रारंभ ऋग्वेद के मंत्रों से ही ढूँढा जाता है। वैदिक काल में गीत काव्य की दृष्टि से विविधता थी-स्तुतिगीत, अभिचारगीत, गोचरण गीत आदि के कई रूप थे।

वस्तुतः नवगीत की अवधारणा का अवलोकन भी समीचीन है। यह वस्तुतः पारंपरिक गीतों से नवगीत का अंतर तात्विक दृष्टि से उन्हीं बिंदुओं पर है जिन बिंदुओं पर पारंपरिक कविता और नई कविता का अंतर है। इस संबंध में डॉ.शंभुनाथ सिंह जी के विचार ध्यातव्य हैं- वस्तुतः नई कविता और नवगीत में कोई मौलिक अंतर नहीं है। दोनों का स्थूल अंतर केवल इतना ही है कि नई कविता मुक्तछंद में या छंद-मुक्त रूप में लिखी जाती है और "नवगीत" छंदोबद्ध होता है। नई कविता की भांति नवगीत भी अपनी भाषागत विशिष्टता, भावगत आधुनिकता, प्रतीकात्मकता और सांकेतिक बिंब-योजना आदि के कारण पूर्ववर्ती छायावादी, प्रगतिवादी और प्रयोगवादी कविताओं से तथा छायावादोत्तर काल के सस्ते रूमानी गीतों से भिन्न दिखाई पड़ताहै। इस पर आधुनिकता की गहरी छाप है।"[101]

गीत की स्थिति पर प्रख्यात गीतकार हरिवंशराय बच्चन ने लिखा है-"ऐसा आदमी शायद ही मिले जिसने कभी गीत सुना न हो या गीत गाया न हो। गाने का वरदान प्रकृति बड़े मुक्त हस्त से लुटाती है। जो औरों के सामने गाते हुए शरमाते हैं, वे गुसलखाने में गाते हैं। "[102] इस कथन के माध्यम से बच्चन गीत की उस सार्वभौमिकता की ओर संकेत करते हैं जो प्रकृति के प्रत्येक उपादान में समाई हुई है। प्रकृति का प्रत्येक अंग गाता है। गीतों की ध्वनि सागर की लहरों से, फूलों की मुस्कान से, पक्षियों की ध्वनियों से, पौधों के लालित्य से फूटी पड़ती है। प्रकृति गीतकार है और एकांकी एवं समाजी रूप में अपने मन की आकांक्षाओं, पीड़ाओं, प्रसन्नताओं को रूप देता है। यह क्रम सृष्टि के साथ चला आ रहा है।

---

[100] भवानी प्रसाद के आयाम-पृ.101
[101] समकालीन हिंदी कविता का परिप्रेक्ष्य और नवीनता-पृ.87
[102] नये पुराने झरोखे-पृ.124

गीत की परिभाषा डॉ.नगेंद्र के अनुसार-"गीत मानव के हर्ष-विषाद का सहज वाहक है।"[103] तो महादेवी वर्मा के विचार से-"सुख दुख की भावावेशमयी अवस्था का गिने चुने शब्दों में स्वर-साधना के उपयुक्त चित्रण कर देना ही गीत है।"[104] मार्जोरी बोल्टन का कहना है-"प्रगति की शब्द योजना अत्यन्त सहज और संगीतात्मक होती है।"[105]

गीतों के प्रकार भावात्मकता तथा विचारात्मकता के आधार पर निम्न प्रकार माने जाते हैं-

1. शोक गीत
2. पत्र गीत
3. व्यंग्य गीत

इन गीतों को एक व्यक्ति द्वारा जब गाया जाए वह गीत है। जब समुदायों के साथ गाया जाए वह समूह गीत कहा जाता है। गेय गीतों के और भी प्रकार हैं। जैसे-धार्मिक गीत, प्रेम गीत, विरह गीत, राष्ट्रीय गीत, उत्सव गीत, ऋतु गीत आदि। आधुनिक युग में नव गीत परंपरा नयी कविता का प्रमुख अंग बन गयी है। जिसमें यथार्थ अनुभूति को लोक चेतना के साथ गेयता संगीतात्मकता तथा सगात्मकता में बँधकर मानव जीन को सचेत करने का प्रयास किया जाता है।

भवानी प्रसाद मिश्र गीत परंपरा से जुडे हुए हैं, मिश्र जी के गीत यथार्थ से प्रेरित हैं। साथ ही गीतों में भावनात्मकता लयात्मकता के साथ आधुनिक संवेदनाएँ प्रतिबिंबित हुई हैं। रूप और शैलीगत दृष्टि से भवानी प्रसाद मिश्र के गीतों के दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। 1. लोक गीत, 2. साहित्यिक गीत। लोक गीतों में मिश्र जी ने "ऋतु गीत" अधिक लिखे हैं। निम्न गीत-

"पी के फूटे आज प्यार के पानी बरसा री,
हरियाली ला गई हमारे सावन सरसा री,
बादरू आये आसमान में धरती फूली री,

---

[103] आस्था के चरण-पृ.581
[104] साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबंध-पृ.20
[105] A Lyric is however to be thought of as being fairly sample and musical in diction:Marjori Boulton, The Anotomy of poetry mental farm the main types of poetry-p.101

बिजरी चमक आग सरीखी दादुर बोले री,
अन्ध प्राण ही कहीं उड़े पंछी अनमोले री,
छन छन उठी दिलोरे, मगन मन पायल दरसा री,
पी के फूटे आज प्यार के पानी बरसा री।"[106]

* * * * *

"फुर-फुर उडी फुहार अलक हल मोती छाए री,
खड़ी खेत के बीच किसानिन कजरी गाए री,
झर-झर झरना झरै, आजमन प्राण सिहाए री,
कौन जन्म के पुष्पकि ऐसे शुभ दिन आए री।"[107]

* * * * *

"तू इस सरग को छूकर मुरझा न, फूल जा रे,
इस को समेट लेकर हर मौत भूल जा रे,
धरती की आग जीने का गीत गा गयी रे,
बरसात आ गयी रे बरसात आ गयी रे।"[108]

उपरोक्त गीतों में भावनात्मकता, रागात्मक संगीतात्मकता एवं लयबद्धता को कुशलता से बाँधा गया है। यह गीत मानवीय संवेदनाओं को तीव्रता से उभारते हैं। अतः इन लोकगीतों में सांस्कृतिक विशेषताओं के साथ कवि भीतरी भावों को उदीप्त करने में सफल रहा है।

संबोधन शैली के गीत रूप भी भवानी प्रसाद मिश्र के काव्य में यत्र-तत्र मिलते हैं। इस पद्धति के गीत की मूल प्रेरणा किसी एक विषय को रचित करते हुए सीधे पाठक से संवाद स्थापित कर उसे लयबद्ध की आकाँक्षा होती है। इनमें भाव-पक्ष की प्रबलता होती है। इन गीतों के उदाहरण-

"तू मुझे दिखती नहीं कू-हू
मगर सुन पा रहा हूँ
वही रहना परंभृते

---

[106] दूसरा सप्तक-पृ.
[107] दूसरा सप्तक-पृ.
[108] गीतफरोश-पृ.127

मैं भी वहीं पर आ रहा हूँ

आकाशवाणी-सा तुम्हारा गीत जग में भर गया है,

मुझे पागल कर गया है।"[109]

*   *   *   *   *

"तुम मेरा अस्तित्व अलग होते भी एक रहे रानी,

जग उसी आरे मेरी गति समझे तू जिस ओर है रानी।"[110]

*   *   *   *   *

"तुम मुझे एक कण शक्ति, एक क्षण चिनगारी

एक किरण कल्पना

एक कम्पन नये अंकुर का देना।"[111]

*   *   *   *   *

"कह दूँ किसी भी संदर्भ में चाँद

तो कण के भीतर की सारी चाँदनी

बाहर छिटके।"[112]

4.4.1 शोक :

अंग्रेजी के "एलिजी" को हिंदी में शोक गीत कहा जाता है। सुख दुःख जीवन के दो मूलभूत तत्व हैं। संसार का कोई भी गायक इन तत्वों से अलिप्त नहीं रहा है। कई गीतकारों ने दुःख भुलाने के लिए आशा गीत गाये हैं। परंतु इनके गीतों में शोकपूर्ण मनःस्थिति को कहीं न कहीं पकड़ा जा सकता है।

भवानी प्रसाद मिश्र ने अधिकतर आशा गीत गाये हैं। किंतु यत्र-तत्र शोक गीत के रूप भी पाये जाते हैं। महात्मा गांधी तथा रवींद्रनाथ टैगोर आदि व्यक्ति विशेष की दुःखद स्मृति में मिश्र जी ने कई गीत लिखे हैं। गांधी की समाधि को देखकर कवि के मानस पटल पर स्मृति रेखा गीत बनकर आयी है-

---

[109] गीतफरोश-पृ.12

[110] गीत फरोश-पृ.29

[111] अंधेरी कविताएँ-पृ.43

[112] खुशबू के शिलालेख-पृ.167

"मन भावुकता की जगह नहीं है यह आँगन
इस पर संकल्प समुन्नत भाल सुहाते हैं
आसिंधु हिमाचल पाँव-पाँव चलने वाले
दो चरण ध्यान में आते हैं।"[113]

रवींद्रनाथ के निधन पर शोक गीत का रूप-

"जन्म के दुःखी हम दुःख दूना है तुम्हारे बिना
भारत की प्रकृति का भाल सूना है तुम्हारे बिना
लगता है आज प्राण हिमगिरि के आँचल नहीं
सुरसरिकी धारा में पहले की कल-कल नहीं।"[114]

4.4.2 पत्रगीत :

अंग्रेज़ी के "एपीग्राम" का रूपांतरण हिंदी में "पत्र-गीत" के रूप में किया गया है। इन में छोटे-छोटे रचनाएँ संदेश के रूप में भीतर के भावों को प्रतिबिंबित करती है। अतः भवानी प्रसाद मिश्र के गीतों में यह स्वरूप दृष्टिगोचर होता है, जिन में पीड़ा, आक्रोश, करुणा, सहानुभूति आदि भाव हैं। निम्न पंक्तियों में कवि ने प्रकृति को संदेश वाहिका के रूप में देखा है। अतः यहाँ प्रकृति सजीव हो उठी है-

"इस तरह का हाल उनका,
इस तरह का ख्याल उनका,
हवा उनको धीर देना,
यह नहीं जी चीर देना,
……………………
कितु उनसे यह न कहना
उन्हें देते धीर रहना
उन्हें कहना लिख रहा हूँ
उन्हें कहना पढ़ रहा हूँ।"[115]

---

[113] गांधी पंचशती-पृ.267

[114] गांधी पंचशती-पृ.35

4.4.3 व्यंग्य गीत :

भवानी प्रसाद मिश्र के गीत एक विशिष्ट लय और टेक को लेकर आगे बढ़े हैं। इसमें भावों के अनुरूप नाद, माधुर्य होता है। कलात्मकता इन गीतों में यत्र-तत्र अभाव लक्षित होता है। इन गीतों का उद्देश्य जीवन में व्याप्त विसंगतियों पर व्यंग्य करना है। मिश्र जी के गीतों में यह व्यंग्यात्मकता मीठी चुनौती और तीखी चुभन लिए है-

"जी हाँ हुजूर मैं गीत बेचता हूँ
मैं तरह तरह के गीत बेचता हूँ
मैं किसिम-किसिम के गीत बेचता हूँ
जी, पहले कुछ दिन शर्म लगी मुझको,
पर बाद-बाद में अक्ल जगी मुझको,
जी, लोगों ने तो बेच लिये ईमान
जी, आप न हों सुनकर ज्यादा हैरन
मैं सोच समझकर आखिर
अपने गीत बेचता हूँ।"[116]

उपर्युक्त गीत में लयात्मकता के साथ ही भावात्मकता बाँधी हुई है। भवानी प्रसाद मिश्र का प्रथम काव्य-संग्रह "गीत फरोश" की यह रचना मिश्र जी को एक सफल गीतकार की श्रेणी में खड़ा किया है।

4.5 शैली :

काव्य रूपों में शैली का एक विशेष स्थान है। जिस तरह एक-एक मोती पिरोने से माला की सुंदर आकृति बनती है, ठीक उसी तरह एक-एक शब्द के सुयोग चयन से और ठीक जगह चयन करने से भाषा आकर्षक बनती है। पर यदि माला की डोर कमजोर हो, तो माला के टूटकर बिखरने का खतरा भी होता है, ठीक उसी तरह अनुभव के कमजोर रहने पर भाषा भी प्राणवान नहीं बन पाती। अनुभव की सशक्त और जीवंतता भाषा-शैली को सतेज और सप्राण बना देती है। यह भी सही है कि शैली लेखकीय व्यक्तित्व का अभिन्न हिस्सा हुआ करती है। भवानी प्रसाद मिश्र की काव्य शैली पर हम विचार करें उससे पूर्व शैली से संबंधित शास्त्रीय चिंतन को समझें।

---

[115] गीतफरोश-पृ.133

भारतीय समीक्षक डॉ.भगीरथ मिश्र ने शैली को इन शब्दों में परिभाषित किया है-शैली या रीति काव्य रचना संबंधी वह विशेषता है, जो कवि की प्रकृति और व्यक्तित्व, वर्ण योजना, शब्द-संघठन, अलंकार प्रयोग भाव-संपत्ति एवं उक्ति-वैचित्र्य परिणाम स्वरूप प्रकाशित होती है।"[117]

शैली के प्रकार

शैली का रूप कवि के भाव, विचार, कल्पनप, परिस्थितियाँ, संस्कार, उद्देश्य के आधार पर निर्धारित होताहै। डॉ.कैलाश वाजपेयी ने शैली के छः प्रकार माने हैं-

1. सरस शैली-प्रसाद गुण संपन्न, सर्वजन सुगम, रमणीय शैली होती है।
2. मधुर शैली-यह उपनागरिका वृत्ति के प्रयोग से सुकुमार संगीतमय शैली है।
3. ललित शैली-इस में चित्रात्मक, उक्ति चमत्कार एवं अलंकारिकता का प्रधान्य रहता है। सूक्ष्म कल्पनायुक्त वर्णन भी इस शैली का गुण है।
4. क्लिष्ट शैली-लाक्षणिक तथा प्रतीकात्मक प्रयोगों से बोझिल, गूढ शैली विदग्ध या क्लिष्ट शैली कही जाती है।
5. उदात्त शैली-इस में दीर्घ मात्राओं, संयुक्त अक्षरों तथा लंबे पदों का प्रयोग अधिक रहता है। यह उत्साह, भय आदि से प्रेरित रहती है।
6. व्यंग्य शैली-वक्रोक्ति या व्यंग्य प्रधान भाषा से युक्त तीखे प्रभावशाली शैली व्यंग्य की श्रेणी में आती है।
7. वर्णनात्मक शैली-इस शैली के द्वारा कवि स्थूल प्रसंगों या दृश्यों को इतिहवृत्तात्मक तरीके से बयान करता है।
8. उद्बोधन शैली-इस शैली का प्रयोग समाज को प्रबोधित करना होता है। इसके लिए कवि बहुत बार संवाद शैली से उद्बोधन करता है।

भवानी प्रसाद मिश्र के काव्य में चित्रित "शैली रूप"

किसी पाश्चात्य विद्वान ने कहा है-"सहज स्वाभाविक निर्मित शैली उत्कृष्ट तो होती ही है, साथ ही उसमें वह सामर्थ्य होता है, जो सीधे-सीधे बोध कराती है।"[118] ठीक इन्हीं शब्दों में भवानी प्रसाद मिश्र की शैलीगत विशेषता को स्पष्ट किया जा सकता है।

---

[116] गीत फरोश-पृ.166

[117] काव्य शास्त्र-पृ.188

[118] That the nature which produce the parcel style must be "noble" is also crystal clear (Ranjilall) eanery of criticism-p.43

4.5.1 सरस शैली :

सरसता भवानी प्रसाद मिश्र के काव्य शैली की प्रमुख विशेषता है। भीतर की छटपटाहट, ग्लानि, उत्साह सभी भावों को कवि ने सरलता से व्यक्त किया है। वह अपनी शैली को कृत्रिमता के प्रभाव से दूर रखना चाहा है। इसी के चलते उनके काव्य शैली में विशेष रूप से प्रसाद गुण दिखाई देते हैं। यथा-

"कौन किसे समझाए कोई समझ सकेगा समझाने से,
जी के दाग दिखाऊँ, कोई देख सकेगा दिखलाने से,
अपना रोना रोने से क्या, किसे परायी फिक्र पड़ी है
इसे जानकर कोई करे क्या, किसके आगे मौत खडी है।"[119]

कथन में व्यंग्य का खासपुट देकर कवि कथन को और सरस भी बनाता है। जैसे-

"निरापद कोई नहीं है
न तुम न मैं, न वे,
न वे, न मैं, न तुम
सबके पीछे बँधी है दुम आसक्ति की।"[120]

वस्तुतः मिश्र जी की कविता पढ़ी तो ऐसा लगता है कि हमने उसकी ओर देखा और देह पुलकित हो गया। यानि बहुत ही अनशिचित, सरस चीज़ है किंतु गूढार्थ से भरी है उनकी कविता। यथा-

"नहीं, यह झंझट और कहीं
हमें तो तुम संग्रह दे दो
पढ़ लेंगे
छपी हुई चीज़
हिमालय भी हो
तो हम
चढ लेंगे मगर भाई, ये पठय उतनी नहीं है
जितनी श्रव्य है

---

[119] गीत फरोश-पृ.2
[120] चकित है दुःख-पृ.25

तो भाड में डालो उन्हें

अर्थात जो पठय उतनी नहीं है

वे चाहे जितनी श्रव्य हो

हमारे लिए द्रव्य है.....।"[121]

4.5.2 मधुर शैली :

उदत्त भावनाओं के कारण भवानी प्रसाद मिश्र की शैली में माधुर्य के साथ संगीत की लय भी पायी जाती है। निम्न पंक्तियाँ-

"तू इस सरग को छूकर, मुरझा न, फूल जा रे,

इस को समेट लेकर, हर मौत भूल जा रे,

धरती की आज जीने का गीत गा गयी रे,

बरसात आ गयी रे बरसात आ गयी रे।"[122]

इसमें अनुप्रास का प्रयोग लय की निर्मित का महत्वपूर्ण कारण है।

4.5.3 व्यंग्यात्मक शैली :

व्यंजना की वक्रता से यह शैली प्रभावकारी तथा चमत्कारिक होती है। इनमें प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष दोनों तरीकों से भावों को व्यक्त किया जाता है। कलाकार प्रतिभा शक्ति से संपन्न होने पर भी व्यवस्था द्वारा लाचार बना दिया जाता है, कलाकार की इस लाचारी को आत्मकथात्मक पद्धति से बयान कर कवि अप्रत्यक्ष रूप से व्यवस्था की क्रूरता पर तीखा व्यंग्य करता है। यथा-

"जी हाँ हुजूर मैं गीत बेचता हूँ

किसिम किसिम के गीत बेचता हूँ

जी, माल देखिए, दाम बताऊँगा

बेकाम नहीं है, काम बताऊँगा।

*   *   *   *   *

कुछ गीत लिखे हैं मस्ती में मैंने

---

[121] भवानी प्रसाद मिश्र : नयी कविता अंक-8, पृ.44-45

[122] गीतफरोश-पृ.127

कुछ गीत लिखे हैं पस्ती में मैंने

यह गीत सख्त सर दर्द, भुलाएगा

यह गीत पिया को पास बुलाएगा।"[123]

उपर्युक्त पंक्तियों में व्यंग्यात्मकता के साथ ही नाटकीय शैली का प्रयोग किया गया है। संसार में अपनी आतंक की स्थितियाँ संसार में अपनी जडें फैला चुकी हैं। ये संसार को पतन की ओर ले जा रही है। कवि ने इन स्थितियों की ओर व्यंग्यात्मकता से संकेत किया है। जैसे-

"खिडकियों से घुसकर घरों में

ज्वरों में जैसे

करके इकट्ठा

भर दिया हो यम ने कैंसर

और फिर बो दिया हो उसे

चीर कर गला, छाती, पेट

हर चेतना के भीतर

पलभर में पहुँचा दिया हो

रोग को अंतिम स्टेज तक।"[124]

विज्ञान युग में एक ओर मानव ने चंद्रमा को स्पर्श कर वैज्ञानिक उन्नति का साक्षात्कार कराया है। विज्ञान की तंत्र-शक्ति के विकास से लाभान्वित यदि कोई हो रहा है, तो विशिष्ट वर्ग ही, सामान्य जन नहीं। व्यवस्था रूपी खटिया का सहारा लेकर "खटमल" रूपी पूंजीपति वर्ग आम आदमी का शोषण कर रहे हैं। "खाट" और "खटमल" के रूपक का आधार लेकर कवि इस क्रूर शोषण पर व्यंग्य करता है। यथा-

"खटमल के पीछे लोग खाट छोड़ देते हैं

यह भी एक ढंग है, खासकर वहाँ जहाँ

खाट और खटमल का नित्य साथ संग है

धरती मगर खाट तो नहीं

---

[123] गीतफरोश-पृ.166

[124] चकित है दुःख-पृ.79

कि चले जायें और कहीं

चंद्रमा में मंगल, में जाने के दिन जब आयेंगे

तब आदमी से पहले खटमल वहाँ जायेंगे।

कवि वर्तमान की विभीषिकाओं से अछूता नहीं। उसे आज की आग का पूरा अंदाजा है। गणतंत्र दिवस पर वह सोचता है कि हज़ारों साल पहले आदमी की आदमी पर कोई सत्ता नहीं थी। न राज्य, न प्रजा, न कोई तंत्र-व्यवस्था किंतु विभिन्न आवश्यकताओं ने एक-दूसरे को निकट ला दिया और बंधनों में लोग बंधते गये- परिवार, समाज, राज्य आदि। एक दूसरे के कंधे पर जुआ रखते गये और स्वतंत्रता मर गयी। आदमी कराहने लगा। या तो हम किसी धर्म के गुलाम बने या किसी तंत्र-व्यवस्था के और दूसरों के हुक्म पर नाचते रहे। इस को कवि सुंदर ढंग से व्यंग्य शैली में फरमाया है। यथा-

"इस तरह आदमी हजारों बरसों से गुलाम हैं अब

स्वतंत्रता एक नाम है अब

सब से बड़ा धर्म तंत्र भक्ति, तंत्र के रूप में अनुरक्ति

वह चाहे जैसा वैसा करना

वह जिस ढंग से चाहे उस ढब से मरना।

आदमी के दिशाहीन जीवन पर व्यंग्य कर उसकी मूर्खता को रूपायित किया है-

"भगवान चाहता

तो आदमी से भी

अधिक मूर्ख

कोई प्राणी

बना सकता था

मगर

नहीं बनाया उसने

आदमी से अधिक मूर्ख

कोई प्राणी।"[125]

कवि ने आपातकालीन शासन का विरोध किया है। आपातकाल में शासन ने दमन की इच्छा से ऐसे कई कानून बनाएँ, जिनकी अवहेलना करने पर कड़ी से कड़ी सजा भुगतनी पड़ती थी। वास्तव में राज्य शासन समूचे समाज के उत्थान के लिए हुआ करता है, और उसके कानून व्यापक जनहित को ध्यान में रखकर बनाएँ जाते हैं। परंतु आपातस्थिति ने इस आदर्श को ही उलट दिया है। शासन व्यवस्था इसलिए समाहित के बजाय व्यक्तिहित का ही अधिक चिंतन करती हुई दिखाई पड़ती है। कवि इस स्थिति पर गहरा व्यंग्यात्मक रूप से शासन व्यवस्था के नाटकों को केंद्र बनाकर पूछते हैं-

"कौन है इस मुल्क का मालिक
और कैसा मालिक है वह
कौन है इस खल्क का खालिक
और कैसा खालिक है वह
क्या यही उसकी रजा है
कि एक ही व्यक्ति देश है
एक ही व्यक्ति प्रजा है
यह कैसा मजा है।"[126]

असल में भारतीय समाज आधुनिक युग के परिवेश में विदेश गमन तथा विदेशीकरण को अपना जीवन लक्ष्य बना दिया है। वे विदेशी वस्तुओं को घर में रखने पर गर्वित हो उठते हैं और लोगों को उसकी बढचढ़ कर प्रशंसा करने में अपना अमूल्य समय नष्ट करते हैं। मिश्र जी को इस तरह के लोगों की मानसिकता एवं वर्तनी का अच्छी तरह ज्ञान है। अतः कवि उन लोगों के अनैतिक एवं दुर्वव्यवहार को विषय-वस्तु बनाकर बड़े साधे ढंग से व्यंग्यात्मक रूप से रूपायित करते हैं। यथा-

"यह जो आदमी
सामने से जा रहा है

---

[125] परिवर्तन जिए-36

[126] त्रिकाल संध्य-पृ.84

सो मालूम है आपको
बैंकाक से आ रहा है
और गया था इसी ख्याल से बैंकाक
कि लौटकर कहूँगा
बैंकाक गया था मैं
और लौटा हूँ अभी बैंकाक से
और वह
खाली हाथ नहीं गया था
यहाँ से छुपाकर ले गया था
आफीम और छुपाकर लाया है वहाँ से
घडियाँ और सडियाँ।"[127]

बावजूद इसके असंख्य लोग इसके तक में लगे हुए हैं। इस पर भी कवि कहता है-

"यह
और जो बैठा है
आपकी बायीं तरफ
सिगरेट के धुँए को
प्राण वायु की तरह खींचता हुआ
वह इटली जाने वाला है।"[128]

4.5.4 वर्णनात्मक शैली :

बहुत बार कवि विविध दृश्यों को इतिवृत्तात्मक तरीके से उभारता है। अतः इस शैली का अधिक प्रयोग मिश्र जी ने किया है। यथा-

"गाँव, इस में झोपड़ी है, घर नहीं है
झोपड़ी के फटकियाँ हैं, दर नहीं है
धूल उड़ती है, धुँए से दम घुटता है

---
[127] ख़ुशबू के सिलालेख-पृ.41
[128] खुशबू के शिलालेख-पृ.41

मानवों के हाथ से मानव लुटा है।

हो रही हैं शिशु की माँ चपी लिये हैं,

पेट पापी के लिए पक्की किये हैं

फट रही छाती!"[129]

उपर्युक्त शब्द चित्रों में इतिवृत्तात्मक शैली में कवि ने गरीबी की मूल किंतु असहाय व्यथा को ब्यौरेवार पेश किया है। निम्न पंक्तियों में प्रकृति के सौंदर्य को कवि इतिवृत्तात्मक शैली में ठीक उस तरीके से वर्णित करता चला जाता है, किज जिसे पढ़ते हुए अकस्मात आंखों के सामने एक स्पष्ट चित्र-रूप खड़ा हो जाता है। जैसे-

"उस निराली रात में जब चांद तारों से घिरा था,

जब सुरभी के बीच पलकर फूल डाली पर गिरा था,

नीलिमा आकाश की जब वायुमंडल में भिदी थी,

जब घनी छाया उतरकर पेड़ से जी में छिदी थी,

बाँस के धन कुंज में पड़कर किरन धँस जा रही थी,

और कंटीले झाड़ियों में दृष्टि फँस जा रही थी।"[130]

सावन और बादलों पर इन्होंने बहुत सी कविताएँ लिखी हैं। मध्य प्रदेश तो जैसे इनकी रचनाओं में सोते से जाग उठा है। विध्यचल, नर्मदा और रेवा इनकी सासों में ही बसते हैं। इस दिशा में "नर्मदा के चित्र", "सतपुडा के जंगल" इनकी दो रचनाएँ काफी सशक्त और प्रभावशाली बन पड़ी हैं जिसमें प्रकृति का वर्णनात्मक शैलियों में कविता रची गयी है। यथा-

"सतपुडा के घने जंगल

नींद में डूबे हुए से

उँघते अनमने जंगल।

सड़े पत्ते, गले पत्ते

हरे पत्ते, जले पत्ते

वन्य पथ को ढँक रहे-से

---

[129] गीतफरोश-पृ.34

[130] गीतफरोश-पृ.81

पंक दल में पले पत्ते,

ये घिनौने घने जंगल

नींद में डूबे हुए से

ऊंघते अनमने जंगल।"[131]

4.5.5 उद्‌बोधनात्मक शैली :

इस शैली में कवि स्थितियों को लक्ष्य बनाकर तर्क वितर्कों के आधार पर सत्य असत्य का विश्लेषण करते हुए, जन समाज को अपनी वाणी द्वारा समय-समय पर बोध कराता है, वहाँ कवि का इस सथर पर प्रयास ही जन समाज के लिए उद्‌बोधनात्म्क बन जाता है। भवानी प्रसाद मिश्र की रचनाओं में इस शैली का अधिक प्रयोग किया गया है। यथा-

"चलो लेकर

एक नव आशा

नया उत्साह

*   *   *   *

सावन में संभाले खेत अपने

बखेर दे बो दे उगा दे

आज उन में नये सपने

ये की जब फागुन सजीला

फूल से सपने खिला दे

गा उठे इस जोर से

आवाज़ जगती को गुंजा दे।"[132]

*   *   *   *   *

"दर्द की दवा का असर

हवा हो जाए जब

तब जो दर्द लौट आया है

---

[131] गीतफरोश-पृ.65

[132] गीतफरोश-पृ.70

उसे नया मान लो
और उपाय भी उसका
नया खोजो कोई
विचारणीय मानो
मेरे इस सुझाव को
सहलाओ
नये ढंग से हर बार
पुराने घाव को।"[133]

4.6 गजल एवं शेर :

आधुनिक युग में भी उर्दू-साहित्य की गजल-शैली ने विशेषतः हिंदी कवियों का ध्यान आकृष्ट किया है। अतः छायावाद से लेकर नयी कविता तक आते-आते हम गजल एवं शेरों का कुछ प्रभाव नये कवियों पर भी पड़ा हो तो कोई आश्चर्य नहीं। नयी कविता के कुछ एक कवियों ने गजलें और शेर लिखे हैं। गजल प्रायः मनुष्य के रूमानी भावों को माध्यम बनाकर गाया जाने वाला गीत प्रकार है। किंतु नये कवियों ने इस शैली को अपनाकर मात्र रूमानी भावों को ही व्यक्त नहीं किया, बल्कि समसामयिक व्यष्टि-समष्टि के प्रश्नों और संवेदनाओं को भी व्यक्त कर "गजल" को अर्थपूर्ण बनाया। भवानी प्रसाद मिश्र उर्दू साहित्य से प्रभावित रहे हैं। मिश्र जी के रचनाओं में गजल की शैली के प्रयोग को भी देखा जा सकता है। आपके शेर और "गजल" में पारस्परिक रूमानी भाव बोध नहीं, बल्कि समकालीन भावबोध व्यक्त हुआ है। इन गजलों का रूप उर्दू गजलों से मिलता है। भाषा की हद तक उर्दू शब्दों का प्रयोग भी कवि ने यथा योग्य किया है। सन 1978 में प्रकाशित "त्रिकाल संध्य" इस संग्रह में भवानी प्रसाद मिश्र ने एक जगह लिखा है। यथा-

"बँधा है हर एक नूर मुट्ठी में मेरी
बचाकर अंधेरे के घेरे से मुझको।

*   *   *   *   *

---

[133] परिवर्तन लिए-पृ.37

करें आप अपने निखरने की चिंता

निरबना न होगा निबरने से मुझको।

*   *   *   *   *

शिकायत नहीं क्योंकि मतलब नहीं है

न खालिक, न मालिक न चेरे से मुझको।"[134]

*   *   *   *   *

कुछ शेर भी भवानी प्रसाद मिश्र के काव्य में पाये जाते हैं। यथा-

"दिन भर जलाने वाला सूरज शाम को रंग हो जाता है,

हर चीज़ काट देने वाला लोहा कभी न कभी जंग हो जाता है।"[135]

*   *   *   *   *

लेते देते रहो स्नेह अनमानी निगाहें नहीं चाहिए

जहाँ दृष्टि उठ जाए स्नेह की विस्तृतरहें वही चाहिए।"[136]

*   *   *   *   *

"कौन है जो मौन है मन में मेरे और मुस्काराता है

आँख करना चाहता हूँ चार वह आगे न आता है।"[137]

मूलतः भवानी प्रसाद मिश्र का काव्य विविध काव्य रूपों से संलग्न है। आपके गीतों में विविध अभिनव प्रयोग मिलते हैं। साथ ही गीतों के भाव यथार्थ स्थितियों को उद्‌घाटित करते हैं। इनमें लयात्मकता तथा संगीतात्मकता जुड़ी हुई है, साथ ही लोक तत्व से संयुक्त होकर आपकी कविता सहज और स्वाभाविक बन गई है। अतः भवानी प्रसाद मिश्र के लोक-जीवन की संवेदनाओं से प्रेरित होकर लोक मंगल की भावना लिए लोक धुनों के माधुर्य को संचारित करते हुए सामान्य जन तक पहुंचने में सक्षम बन गयी है।

4.7 मुक्त छंद का "रूप" :

---

[134] त्रिकाल संध्य-पृ.65
[135] गांधी पंचशती-पृ.245
[136] गांधी पंचशती-पृ.250
[137] गांधी पंचशती-पृ.251

समकालीन कविता के रूपगत परिप्रेक्ष्य की वस्तुगतता के संदर्भ में यह अवधारणा प्रासंगिक ही होगी कि कविता अब अपने आत्मसंघर्षों, अनुभव की प्रतीति को न केवल शब्द, अर्थ, पद, वाक्य विन्यास में अभिव्यक्त करती है बल्कि उसे अधिक बोधगम्य, संप्रेषणीय बनाने के लिए, लोकोपयोगी बनाने के लिए छंदों, दोहों आदि के पुरातन रूपों व नवीन छंदों, रूपों तथा सानेट, गजल, गीत नवगीत व लंबी कविता रूपों को अपनाती है। छंद समस्त काव्य के मूलाधार रहे हैं, उनमें परिवर्तन, संशोधन और परिवर्दन आवश्यक रहा है, परंतु छंदविहीन काव्य की कल्पना कभी भी भारतीय मस्तिष्क में नहीं आ सकी।"[138] जब कि नयी कविता के कवियों ने परंपरागत छंद-विधान को अस्वीकार किया है। लेकिन यह भी सही है कि छंद परंपरा से यह कवि वर्ग पूर्णतः अलिप्त भी नहीं है। सामयिक आवश्यकताओं के अनुरूप छंद-योजना में अर्थात कलात्मकता में परिवर्तन आया है।

अध्याय एक में मुक्तिबोध का हवाला देकर बताया गया है कि कवि को आसपास की वास्तविकता गहरी चुनौती देती है। यह चुनौती दो प्रकार की होती है-एक तत्व संबंधी और दूसरा रूप-छंद संबंधी। अतः कवि अभिव्यक्ति पक्ष के विकास की अपेक्षा होता है। वह नये छंदों का आविष्कार करता है।

जिस संरचना में स्वर, ध्वनि, नाद न हो वह रचना शिल्प की दृष्टि से कविता मानी नहीं जा सकती। अतः छंद विहीन कविता की कल्पना नहीं हो सकती। विजय बहादुर सिंह का मत है कि- "मुक्त-छंद वस्तुतः ओज और आवेग का छंद पहाड़ी नदी के प्रखर प्रवाह की तरह घर-घर हर-हर करता हुआ आत्मसाधना से दीप्त वास्तव में वस्तु-छंद आज के युग की मनुष्यताका स्वतंत्र्य-प्रतीक है। कविता जितनी ही जनतांत्रिक होगी मुक्त छंद के उतने ही रूप और स्वभाव हमारे द्वारा आविष्कृत हाते जाएंगे। कहीं वह गीत-नाट्यों की शैली धारण करेगा, कहीं काव्य-नाट्यों की। कभी कथन आख्यान शैली अपनाएगा तो कहीं उपदेश-प्रशिक्षण शैली।"[139] इस संदर्भ में डॉ.भगीरथ मिश्र के विचार भी ध्यातव्य हैं-"पद्य में छंदों के नियमों का पालन होता है, उसके अंतर्गत एक नियमित गति या लय का निर्वाह होता है, या यह लय काव्य को एक विलक्षण आकर्षण, संगीतात्मकता और स्मरणीयता प्रदान करती है।"[140] अतः छंद कविता के लिए

[138] शिवकुमार मिश्र :नया हिंदी काव्य-पृ.358
[139] नागार्जुन का रचना संसार-पृ.101
[140] काव्यशास्त्र-पृ.41

अनिवार्य होता है। कदाचित इसीलिए पंत जी ने भी कहा है कि-"जिस प्रकाद नदी के तट अपने बंधन से धारा की गति को सुरिक्षत रखते हैं इसी प्रकार छंद भी अपने नियंत्रण से राग को स्पंदन, कम्पन तथ वेग प्रदान कर निर्जीव शब्दों के रोड़ों में एक कोमल, सजल कलख भर उन्हें सजीव बना देते हैं। वाणी की अनियंत्रित साँसें नियंत्रित हो जातती-तालयुक्त हो जाती हैं, उसके स्वर में प्राणायाम रोओं में स्फूर्ति आ जाती है।"[141] रघुनंदन शास्त्री के विचार हैं कि-"छोटी बड़ी ध्वनियों का तौल माप में बराबर होना छंद रचना का मूल आधार है। ध्वनियों को बराबर करने के विशेष नियम हैं। इन नियमों में बंधी हुई ध्वनियाँ ही लय उत्पन्न कर सकती हैं। इन्हीं नियमों में आबद्ध रचना को छंद कहते हैं।"[142] स्पष्ट है कि काव्य का मूलतत्व छंदबद्धता है। छंद की परंपरा प्राचीन काल से लेकर आधुनिक युग में भी रही है। किंतु आधुनिक युग में छंदों का स्वरूप कुछ परिवर्तित होकर आया है। क्योंकि इन कवियों ने छंद के शास्त्रीय नियम और बंधनों को अस्वीकार किया है।

भवानी प्रसाद मिश्र के छंद-विधान कौशल पर "सर्वेश्वर दयाल सक्सेना" के विचार ध्यातव्य हैं-"उनकी कविता नई और पुरानी कविता के बीच खड़ी है। छंद को न पूरी तरह तोड़ते हैं और न पूरी तरह जोड़ते हैं। बल्कि छंद को जोड़ते-तोड़ते चलने से उनकी कविता रच जाती है। तुक को न तो उन्होंने एकदम त्याग दिया है न उसका रीतिबद्ध व्यवहार है। उसे न छोड़ा न जकड़ा।सहज रूप से तुक आते हैं, कभी बीच वाक्य-वाक्य में खडे हो जाते हैं और इशारा करते हैं "यहीं बस नहीं" आगे चलिए।"[143] इस तरह उनकी यह शैली इतनी मंज-सध गई है कि हर कोई इसकी नकल करते नहीं बचे हैं। मिश्र जी की कविता एकदम पुरानी इसलिए नहीं है कि किसी भी जकडबंदी को अस्वीकार करती है। न पूरे भावुक, न कोरे विवेकी। आध्यात्म से दूर, पर जीवन-मृत्यु सौंदर्य के महत्व को इंसानी हाथों से रहस्यमय ढंग से टटोलते हैं। यथा-

"मुझको लगता है कि जोर से हँसू
और कुछ नहीं हँसी का हिचकी को
हल्का-सा झटका लगे
दुख न समझे ये कि ठीक मंजिल तक

---

[141] सुमित्रानंदन पंत: पल्लव-प्रवेश-पृ.33-34
[142] रघुनंदन शास्त्री: हिंदी छंद प्रकाश-पृ.39
[143] भवानी प्रसाद मिश्र के आयाम-पृ.87

वह आ गया

उसे कुछ भटका-भटका लगे।"[144]

नये कवियों ने अतुकांत और मुक्त छंद में रचना की है। गौर से देखने पर यह स्वयंमेव स्पष्ट होगा कि मुक्तछंद में भी परंपरागत छंद विधान के लक्षण देखे जा सकते हैं। इस संदर्भ में बालकृष्ण जी के विचार अनुकरणीय लगते हैं-"काव्य और छंद का अविच्छित संबंध है-यहाँ तक कि मुक्त छंद में रचित कविता भी छंद विहीन नहीं हो सकती।[145] वस्तुतः नयी कविता में अभिव्यंजना के स्तर पर अवलोकन किया जाए तो युगानुकूल छंदों में नूतनीकरण जरूर हुआ है। इन कवियों ने छंद के परंपरागत रूढ़ियों से कविता को मुक्त करते हुए, एक प्रकार से शास्त्रोक्त बंधनों को अस्वीकार किया है। पर संगीतात्मकता के महत्व को नयी कविता के कवियों ने नकारा नहीं है।

शिल्प की दृष्टि से भवानी प्रसाद मिश्र के काव्य संग्रहों का विश्लेषण किया जाए तो "गीत फरोश" से लेकर "खुशबू के शिलालेख" तक की कविताओं में संगीतात्मकता तथा लयात्मकता के उदाहरण स्पष्ट मिलते हैं। यहीं नहीं बल्कि छंद के पारंपरिक संकेतों का निर्वाह भी यत्र-तत्र दिखाई देता है। "व्यक्तिगत" से लेकर "संप्रति" तक ककी रचनाओं में कवि छंद के पारम्परिक बंधनों से पूर्णतः मुक्त जान पड़ता है।

भवानी प्रसाद मिश्र की प्रारंभिक कृतियाँ कुछ सीमा तक छंदों से संबद्ध हैं। इन कृतियों में मात्रिक छंदों का विचार करना समीचीन जान पड़ता है। छंदों को दो भागों में विभक्त किया गया है-1. मात्रिक छंद 2. वार्णिक छंद। मात्रिक छंद में सम छंद के कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं-

अिस एक है .... 6 मात्राएँ

I I I I S

मसि एक है [146].......... 6 मात्राएँ

I I I I S

* * * * *

सड़े पत्ते गले पत्ते .... 12 मात्राएँ

---

[144] भवानी प्रसाद मिश्र के आयाम-पृ.230

[145] प्रतिभा कृष्णबलः छायावाद का काव्य शिल्प-पृ.321

[146] गीत फरोश-पृ.33

।S ।S ।S ।S

हरे पत्ते जले पत्ते [147].......... 12 मात्राएँ

।S ।S ।S ।S

चौबीस मात्राओं के सम छंद भवानी प्रसाद मिश्र की रचनाओं में मिलते हैं। जिनके अंत में स्वर-व्यंजना की समता है। अतः ये अन्त्यानुप्रास युक्त छंद हैं। उदाहरणार्थ-

"कौओं की ऐसी बन आयी पांचों घी में ------ 24 मात्राएँ
बड़े-बड़े मनसूबे आये उनके जी में ------ 24 मात्राएँ
उड़ने तक के नियम बदलकर ऐसे ढले------ 24 मात्राएँ
उड़ने वाले सिर्फ रह गये बैठे ठाले"[148] ------ 24 मात्राएँ

अन्य

"मौत के आगे न हिचके, ------- 14 मात्राएँ
शेर के आगे न बिचके, ------- 14 मात्राएँ
बोल में बादल गरजता, ------- 14 मात्राएँ
काम में झंझा लरजता,"[149] ------- 14 मात्राएँ

*   *   *   *   *

"मैं मस्ती के आलम में तब जी की बात नहीं जानी, ------- 32 मात्राएँ
मैं भरे जाम सी छलक पड़ी तब मैंने रात नहीं जानी ------- 32 मात्राएँ
मैं निकल पड़ी सौदा करने, जीवन का सौदा किया सखी ------- 32 मात्राएँ
जी देकर रोना, मोल लिया, दुख लेकर सुख दे दिया सखी"[150] ------32 मात्राएँ

भवानी प्रसाद मिश्र सचेत कवि हैं। यदि हम कलावादियों की बात न लें तो कह सकते हैं कि कविता अपने सृजन और लक्ष्य दोनों के संदर्भ में समाज से सीधे जुड़ी होती है यानि उसमें समाज-निरपेक्षता नहीं होती है। छायावाद के साथ यही हुआ। वह धीरे-धीरे समाज से कटता चला गया और अत्यन्त वायवी होता चला गया। यही कारण है कि अभी तक कवि के इशारों पर

---

[147] गीत फरोश-पृ.60
[148] गीत फरोश-पृ.129
[149] गीत फरोश-पृ.9
[150] गीत फरोश-पृ.9

नाचने वाले शब्द नयी चेतना से अनुप्राणित होकर छंद कवि के विरोध में खड़े हो जाते हैं। यह विषय मात्रिक छंद रूप कविता क्षेत्र में एक प्रकार से अनोखा ही जान पड़ता है-

"कहते हैं अब हमें तुम ------- 12 मात्राएँ
अपने ही हक में बरतना बंद करो ------- 12 मात्राएँ
हमें तुम दीवारों का नहीं ------- 12 मात्राएँ
मैदानों का छंद करो।"[151] ------- 12 मात्राएँ

अन्य संग्रहों में भी अर्थ सम मात्राओं वाले छंदों के उदाहरण पाये जाते हैं। अतः जहाँ चरणों में समानता हो वह सममात्रिक छंद, जहाँ द्वितीय, तृतीय या चतुर्थ चरण समान हो वह अर्ध सम छंद, तथ जिन चरणों में असमानता हो वह विषय मात्रिक छंद माने जाते हैं। विषम मात्रिक छंदों के उदाहरण भवानी प्रसाद मिश्र के काव्य में पाये जाते हैं। यथा-

"अपनी कल-कल से डरी हुई, ------- 16 मात्राएँ
नव नींद भरा-सी भरी हुई, ------- 16 मात्राएँ
बहती है सरिणी एक यहाँ, ------- 15 मात्राएँ
शीतल निर्सरिणी एक यहाँ, ------- 16 मात्राएँ
यह ठाडी मौत-सरीखी है, ------- 16 मात्राएँ
यह शोभा लिए परी की है,"[152] ------- 15 मात्राएँ

मात्रिक छंदों के प्रयोग भवानी प्रसाद मिश्र की प्रारंभिक रचनाओं में ही देखे जा सकते हैं। बाद के संग्रहों में कवि ने सीधे-सीधे त्रिपदी में अपनी भावात्मकता को व्यक्त किया है, जो परस्पर प्रतिबद्ध है। भवानी प्रसाद मिश्र के काव्य में छंद-विधान का अध्ययन किया जाए तो प्रारंभिक रचनाएँ, मध्यवर्ती रचनाएँ तथा अंतिम रचनाएँ इन तीनों विभागों को तुलनात्मक दृष्टि से परखकर कहा जाए तो कह सकते हैं कि प्रारंभिक रचनाएँ छंद बंधनों से पूर्णतः मुक्त नहीं हो पायीं, मध्यवर्ती रचनाओं में लयबद्धता यत्र तत्र ही दिखायी देती हैं, अंतिम रचनाएँ त्रिपदी में बँधकर आयी हैं, जो छंद के परंपरागत बंधनों से पूर्णतः मुक्त है।

छंद के बंधनों से मुक्त करने वाले कवियों में भवानी प्रसाद मिश्र का नाम सर्वप्रथम लिया जा सकता है। क्योंकि मिश्र जी मुक्त छंद, लघु-गुरु, यति-गति आदि छंद के परम्परागत बंधनों

[151] गीतफरोश-पृ.10
[152] गीतफरोश-पृ.58

से मुक्त है। अतः शिल्प के दृष्टिकोण से भवानी प्रसाद मिश्र ने अपने काव्य में अभिनव तथा मौलिक रचनाएँ प्रस्तुत की हैं। साथ ही गीतों, गजलों का भी रूप छंद योजना में पाया जाता है।

4.8 खण्ड काव्य :

काव्य के दो रूप माने गये हैं-श्रव्य और दृश्य। श्रव्य के भदों में प्रबंध और मुक्तक प्रमुख हैं। ऐसे ही प्रबंध के दो भेद हैं-महाकाव्य और खण्डकाव्य। यहाँ हमारा तात्पर्य केवल खण्डकाव्य से रहा है। इन काव्य रूपों पर विचार करना आवश्यक है। क्योंकि खण्ड काव्य के साथ-साथ अन्य काव्य रूपों की दृष्टि से भी उनके काव्यों को परखा गया है।

खण्ड काव्य प्रबंध काव्य का दूसरा रूप है। भारतीय प्राचीन आचार्यों ने प्रबंध काव्य और महाकाव्य का तो उल्लेख किया है और उनके स्वरूप विषयक नियमादि भी निर्धारित किये हैं, किंतु खण्ड काव्य का स्वतंत्र रूप से कहीं उल्लेख नहीं किया। खण्ड काव्य उनके "सर्गबद्ध काव्य" के अंतर्गत ही आ जाता है चाहे उनका सर्गबद्ध काव्य से तात्पर्य महाकाव्य से ही रहा हो। उन्होंने सर्गबद्ध काव्य के दो रूप-महत्त और लघु अवश्य बतलाएँ हैं।

आचार्य आनंदवर्धन ने काव्य-भेदों का निरूपण करते हुए प्रबंध के लिए "सर्गबद्ध" शब्द का प्रयोग किया किंतु उनका भी इस शब्द के प्रयोग से महाकाव्य का ही तात्पर्य जान पड़ता है। उन्होंने खण्डकथा, परिकथा और सफुल कथा का उल्लेख किया है।"[153]

कालजयी (1978) :

खण्डकाव्य की अवधारणा पर डॉ.संतोष कुमार तिवारी ने लिखा है कि-"दुनिया का सर्वोत्तम काव्य मानवीय करुणा पर आधारित होता है। वह अपनी उर्जा और उष्मा से अंततः हमें शांत एवं शीतल धारा में डुबोकर ऐसी रचनात्मक शक्ति प्रदान करता है जो लोक-कल्याणकारी भूमिका पर कालजयी हो जाती है।"[154]

"कालजयी" एक ऐसा खण्ड काव्य है जिसमें सम्राट अशोक की कलिंग विजय के पश्चात उस मनोदशा का स्फूर्तिमय चित्रण है जिसका दूसरा मिसाल इतिहास में संभवतः नहीं है। क्योंकि कवि स्वयं का वक्तत्व है-"अगर दूसरे सम्राट या बादशाह हिमालय की नीची-ऊँची चोटियाँ हैं, तो अशोक उनका गौरी शंकर है।"[155] इस खण्ड काव्य में चंद्रगुप्त के पौत्र और बिंदुसार के पुत्र

---

[153] आनंदवर्धनः ध्वन्यलोक-पृ.3-7
[154] नये कवि एक अध्ययन-भाग चार-पृ.171
[155] कालजयी-पृ.5

अशोक की संस्कारशीलता, विवेक-बुद्धि आदि के मूल तह में माता शम्पा की शिक्षा दीक्षा थी। इस खण्ड काव्य में इतिहासिक राजा अशोक के जीवन का वह प्रमुख अंश काव्य-वस्तु के लिए प्रस्तुत हुआ है जिस आख्यान में युद्ध जीतने के बाद अशोक के मन ने जैसे अपनी पराजय का एहसास किया हो। युद्ध की विनाशलीला ने जैसे उसकी मानवीय संवेदना को बुरी तरह झकझोर दिया। शस्त्र-संयास के बाद बौद्ध-धर्म में दीक्षित होकर उसने धर्म-प्रचार का बीड़ा उठाया। इसलिए कवि ने कालजयी के प्रथम सर्ग "बीज" के शुरू में ही यह स्पष्ट कर दिया-

"यह कथा व्यक्ति की नहीं
एक संस्कृति की है
यह स्नेह शांति
सौंदर्य शौर्य की, धृति की है।"[156]

अशोक ने जैसे प्रेम के पौधों का बीजारोपण किया। उसने पशुबल को नगण्य माना है। भारतीय संस्कृति की जो धारा शंकराचार्य, कबीर, विवेकानंद, रविंद्र, गांधी में पनपी, वह आज भी आँखों के सामने नये-नये रूप लेकर आती है। इतिहास में बिंदुसार के चार पुत्रों का उल्लेख मिलता है। बिंदुसार की एक रानी ग्रीस की थी जिससे "सुसीम" का जन्म हुआ था जिसे राजा ने सिंहासनरूढ़ करना चाहा।

आधुनिक युग में आदमी ने विज्ञान के चरम विकास से प्रभावित होकर विज्ञान द्वारा आविष्कृत शास्त्रों पर मनुष्य ने कहीं अधिक विश्वास किया है। आधुनिक सत्ताधारी भी दिशाहीन बन गया। फलस्वरूप मनुष्य का मनुष्य पर से एक सत्ता का दूसरी सत्ता पर से विश्वास उठ गया। इस समस्या ने कवि भवानी प्रसाद मिश्र जी को भी आक्रांत किया है। इस प्रश्न को सुलझाने की खातिर अब कवि की दृष्टि इतिहास के पन्नों में खो गई। इन्हीं पन्नों में कवि को एक पन्ना ऐसा दिखाई दिया, जहाँ इस समस्या का हल प्रस्तुत किया गया है, और वह था सम्राट अशोक के जीवन-चरित्र के संदर्भ में कवि ने देखा कि आधुनिक युग के विकसित राष्ट्रों की प्रभुता-सम्पन्नता की चाह-सम्राट अशोक में भी रही है। यही नहीं इस चाह की खातिर जिस प्रकार विकसित राष्ट्र रक्तपात की नदियाँ बहाते हैं, ठीक उसी तरह अशोक ने भी बहाई लेकिन कवि ने इन दो व्यक्तियों सत्ताओं में एक फर्क भी देखा है और वह यह है आधुनिक प्रभुता सम्पन्न राष्ट्र अपनी चाह की खातिर मात्र प्रश्नों में उलझते गये हैं, जबकि सम्राट अशोक ने इन सारे प्रश्नों को

सुलझाया भी है। सम्राट अशोक के जीवन में वह क्षण भी आया, जहाँ उसने महसूस किया कि उसे शस्त्र पर नहीं मनुष्य पर विश्वास करना चाहिए। उसे शस्त्र से नहीं मनुष्य से स्नेह करना चाहिए। स्नेह, प्रेम और विश्वास के सहारे सम्राट अशोक ने सारे प्रश्नों को हल कर दिया था। समूचे देश में शांति का स्वराज स्थापित कर दिया। मनुष्य का विश्वास है कि आधुनिक युग भी सम्राट अशोक के कदमों पर चलकर सभी प्रश्नों का हल ढूंढ़ सकता है। इसी प्रासंगिकता को ध्यान में रखकर कवि सम्राट अशोक के जीवन चरित्र का गान करने लग जाता है।

इस खण्ड काव्य का प्रकाशन 1978 में स्वतंत्रता दिवस पर हुआ। मिश्र जी ने सम्राट अशोक के जीवन से संबंधित इतिहास की घटनाओं को कालक्रमानुसार प्रस्तुत किया है। यह खण्ड काव्य छः सर्गो में विभाजित है। प्रथम सर्ग "बीज" में कवि ने कहानी का प्रारंभ किया है। इस में सम्राट अशोक शस्त्र की शक्ति पर नहीं, अहिंसा धर्म और स्नेह की शक्ति पर विश्वास किया है। चूँकि धर्म और शस्त्र साथ-साथ नहीं रह सकते। कवि के अनुसार-

"इस महापुरुष ने
धर्म और
सेना का साथ नहीं माना
इसने हित, को फैलाने में
हिंसा का हाथ नहीं माना।"[157]

दूसरा सर्ग है "अंकुर"। इसमें तक्षशिला के विद्रोहमन के लिए राजा अशोक प्रस्थान करते हैं। इस प्रसंग में माता अपने पुत्र में साहसिकता को जगाने के लिए उपदेश करती है। उन उपदेशों के महत्व को कवि अपनी भाषा में यों व्यक्त करता है-

"जाते समय कहा, वत्स
युद्ध यदि टलता है तो
निश्चय उसे टालना
क्रोध को उभारे कोई
देना उभरने मत
धीरज के साथ उस क्षण को सँभालना।"[158]

---

[156] कालजयी-पृ.11
[157] कालजयी-पृ.87

तीसरा सर्ग है "विकास" इसमें राजा अशोक अपनी सेना के सथ तक्षशिला पहुंच गये। दोनों सेनाएँ युद्ध के लिए अधीर थीं, उस जनघन्य का वर्णन कवि बड़ी सजगता से करते हैं। यथा-

"हौदे कस गये हाथियों पर,

काठी पड़ गई तुरंगों पर,

फिर शिरस्त्राण, भाले बरछी।"[159]

युद्ध के आदिकाल से, भैरव-नृत्यकाल से उत्पन्न विनाश लीला जैसे-

"भड़काने वाले मिले

पल भर में युद्ध खिले

धू-धू जले, अरथी का-ढांचा है आदमी।"[160]

चौथे सर्ग में राजा अशोक को उज्जयिनी भेजा गया। वहाँ पर भी अशोक ने मन का युद्ध मन में ही जीत लिया। इसके साथ ही अशोक का विवाह नगर सेठ की कन्या रूपवती के साथ हुआ। रानी रूपवती का सौंदर्य वर्णन कवि ने प्रतीक रूप में किया है। यथा-

"अलस-कल्पना प्राण सुंदरी कम्पमान वसे

मंगल किंकणी-कंकण के स्वर शशि अशोक करे।"[161]

* * * * *

"यौवन बेला में वसंत के

मधुमय क्षण सिमटे आते थे,

सुरभित शतदल कुंज

भ्रमर दल उनके आस-पास गाते थे।"[162]

बिंदुसार सोचते हैं कि विवाह का नया छंद अन्य सारे छंदों को भुला देगा क्योंकि "यौवन" बेला में वसंत के मधुमय क्षण एक विचित्र निमग्नता की स्थिति ला देता है। लेकिन महाकाल की

---

[158] कालजयी-पृ.89
[159] कालजयी-पृ.60
[160] कालजयी-पृ.60
[161] कालजयी-पृ.92
[162] कालजयी-पृ.93

पुण्य भूमि में अन्नहीन पेटों में दाने और "वस्त्रहीन देहों पर धागे" जुटाने का दायित्व सम्राट अशोक का हमेशा बना रहा, क्योंकि शिक्षा-दीक्षा के मूल स्वर थे-

"नदी शिवा बहने का क्या है
जीवन दिये बिना है सूना
धारा से हरियाली जागे
तो धारा का बहना दूना......
मुझे जगाया है माता ने
बचपन से इस एक दिशा में
सो मत रहना पुष्प सेज पर
किसी दुखी की करुणा-निशा में।"[163]

पंचम सर्ग में कलिंग युद्ध और राजा अशोक पर इस युद्ध का भयानक परिणाम हुआ। इसी संदर्भ में राजा अशोक के पश्चाताप को कवि ने बड़ी ही सूझ-बूझ के साथ प्रस्तुत किया है। यथा-

"पारस्परिक बंधुता सब का सुख
इच्छा अटूट मैत्री की क्यों न बढ़ाई
क्यों मैंने अपने हाथों से
भीमकाय आपत्ती सज्जाई।"[164]

कलिंग विजय के पश्चात सारे विनाश को देखकर अशोक न`अपने आपको तौला। अपनी जय-जय सुनकर और युद्ध की भीषणता देखकर मानो विषाद के गहरे समुद्र में डूब गया। उसने अपनी सत्ता का आदर्श में खोजा। यथा-

"फिर
शस्त्रों की जगह स्नेह भेजा जाएगा
महिला आज रूढ है जैसे
शस्त्र शक्ति की खो जाएगी
महिमावान आदमी होगा

---

[163] कालजयी-पृ.62-63
[164] कालजयी-पृ.96

शस्त्र शक्ति जब

हीन बनेगी

दंभ-शक्ति छीन जाएगी

तभी संपदा

वस्तु-बहुलता से हटकर चीन्ही जाएगी।"[165]

अंतिम सर्ग "निर्वाण" में युद्ध का विपरीत परिणाम हज़ारों लाखों संख्या में मानव हत्या देखकर राजा अशोक सोच में पड़ गए और इसका प्रायश्चित निभाने के लिए शासन पद्धति में परिवर्तन तथा शिला लेखों पर उत्कर्ष करवाया। राजसत्ता को त्यागकर भिक्षुक बनकर बौद्ध धर्म का प्रचार करने लगे। इस कार्य में उनके पुत्र महेंद्र और पुत्री संघमित्रा सहभागी थे-

"आँखों में अशोक के पानी

आँखों सुख की रेखा

स्नेहपूर्ण प्राणों से उसने

तब बेटी को देखा,

रखा शीश पर हाथ

कह, बेटी, तुम निश्चय जाओ

निर्भय होकर

विकल मनों में

शांति प्रथा फैलाओ।"[166]

मनुष्य जन्म से ही संघर्ष करता रहा है और प्रातः से निशा तक सिर्फ लड़ने की दिशा में बढ़ता है। आदमी हर बार बुराई से लड़ता है फिर संघर्ष से क्यों नहीं। फलतः स्नेह का त्यौहार मनाने और भिक्षु के चरणों में जाने को सम्राट अशोक तैयार हुए। पार्थिव प्रगति के आगे मानवता की विजय चाहिए। बहुजन हिताय कारुण्य कणों से अशोक अभिसिक्त हुआ। दुखों के बंध खोल और मनु के पुत्रों का एक होना यही अशोक का साध्य था। यह धम्म-विजय है जो निष्ठा से मिलती है। इस काव्य कृति की अंतिम पंक्तियाँ हैं-

"मठ-मंदिर मन से छोटे हैं

---

[165] कालजयी-पृ.

[166] कालजयी-पृ.97

स्नेह सही है सब खोटे हैं।"[167]

4.9 भाषा :

भाषा अपने आप में सर्जक की पहचान है। भाषा के माध्यम से ही रचनाकार की गहराई, समाज-संस्कृति, परंपरा से उसका सरोकार मालूम पड़ता है। भाषा हमें परंपरा से प्राप्त होती है जिसे जागरूक रचनाकार नए संदर्भ और नये तेवर प्रदान करता है। इस तरह भाषा निरंतर गतिशील रहती है। कबीर ने कहा है कि "भाषा बहता नीर है" किंतु यह नीर जहाँ रुक जाता है, वहाँ दलदल हो जाता है। भाषा के लिए आवश्यक है कि वह निरंतर नए यथार्थ संदर्भों के अनुसार खुद को ढालती चले।

मनुष्य के अंतर्गामी अनुभवों और उनकी बहिर्गामी अभियुक्ति के बीच एक समर्थ माध्यम के रूप में भाषा को द्वितीयक संकेत प्रणाली से ही समझा जा सकता है। इस विवेचन के आधार पर भाषा यों परिभाषित होती है-"भाषा हमारे अंतर्गामी अनुभवों को परिभाषित करने और इस परिभाषित बोध को अभिव्यक्त करने का मूल माध्यम है।"[168] डॉ.अजय तिवारी की उपर्युक्त परिभाषा में यह प्रयत्न किया गया है कि भाषा के अभिव्यक्ति और ज्ञान प्राप्ति के माध्यम होने संबंधी इन दोनों पक्षों को ध्यान में रखा जाए। यह ध्यान रखा जाना आवश्यक है कि प्राथमिक संकेत प्रणाली से द्वितीय संकेत प्रणाली तक पहुंचना ही चेतना पाना है। दूसरे शब्दों में, भाषा तक पहुंचना ही चेतना पाने की प्राथमिक शर्त है।

भाषा की इस व्यापक प्रभावशाली क्षमता के कारण ही डॉ.नामवर सिंह ने लिखा है- "परिवेश का बोध भाषा की क्षमता पर निर्भर है। किसी भाषा-शक्ति उसकी बोध-शक्ति का प्रमाण है। व्यक्ति का अपना भाषा-संसार ही अनुभव का संसार है, इसलिए अनुभव संसार के विस्तार के लिए भाषा संसार का प्रसार आवश्यक शर्त है।"[169] डॉ.रामविलास शर्मा का मत है कि-"मनुष्य को भाषा से अलग करके नहीं देखा जा सकता अक्सर विद्वान भाषा की उत्पत्ति और विकास को मानव की उत्पत्ति और विकास के समानान्तर रख कर ही देखा है।"[170] "अगर भाषा अपूर्ण है तो मनुष्य भी अपूर्ण है।"[171] फिर भी अपनी अपूर्णता के बावजूद भाषा मनुष्य के

---

[167] कालजयी-पृ.104

[168] प्रगतिशील कविता के संदर्भ मूल्य-पृ.237

[169] कविता के नये प्रतिमान-पृ.112

[170] भाषा और समाज-भूमिका

[171] अज्ञेय ने कहा है-शब्द अधूरे हैं क्योंकि उच्चारण मांगते हैं।

अस्तित्व संघर्ष में सहयोगी रही है क्योंकि संप्रेषण को व्यापक स्तर पर उसी ने संभव किया है और समाज-संगठन को रास्ता दिखाया है। मनुष्य अपने अस्तित्व संघर्ष के जिस पड़ाव पर आज है, वहाँ तक उसे भाषा ने ही पहुंचाया है।

आधुनिक युग में जीवन की विविध समस्याएँ नई कविता के कवियों को कल्पना लोक से हटकर यथार्थ धरातल पर खड़ा कर देती है। इस युग का काव्य यथार्थ से प्रेरित है। जबकि छायावाद काव्य कल्पना प्रधान है। परंतु रूप की दृष्टि से नई कविता में ऐसी अभिव्यक्ति होती रही है जो निरर्थक अलंकारों की रूप सज्जा को अस्वीकार करती है।

भवानी प्रसाद मिश्र जी का प्रथम काव्य संग्रह "गीत फरोश" इस में मुख्यतः सन् 1930 से 1940 तक की कविताएँ संकलित हैं। यह छायावाद का उत्कर्ष काल था किंतु कहा जा चुका है कि मिश्रजी ने लिखा है-"निराला, प्रसाद, पंत फैशन में थे। मेरी कमबख्ती (जिसे कहने में भी डर लगता है)-ये तीनों ही बड़े कवि मुझे लकीरों में अच्छे लगते थे। मुझे वर्डस्वर्थ की एक बात बहुत पटी कि कविता की भाषा यथासंभव बोलचाल के करबी की हो। तो मैंने जाने-अनजाने कविता की भाषा सहज रखी।"[172] और यह सहज ही मिश्र जी की कविता का पर्याय बन गई। "गीत फरोश" की भूमिका स्वरूप लिखी कविता में मिश्र जी ने शब्दों के सही और उचित प्रयोग पर बल दिया है। वे उसके मनमाने प्रयोग को योग साधना के समतुल्य मानते हैं। वे उसके मनमाने प्रयोग को भोग की तरह विनाशकारी मानते हैं। भाषा और काव्य के संबंध में अज्ञेय जी ने लिखा है-"काव्य के सबसे पहले शब्द हैं और अंत में भी यही बात बच जाती है। .....शब्द का ज्ञान, शब्द की अर्थवत्ता की सही पकड़ ही कृतिकार की कृति बनती है। ध्वनि, लय, छंद आदि के सभी प्रश्न इसी में से निकलते हैं और विलय होते हैं, इतना ही नहीं सारे सामाजिक संदर्भ भी वहीं से निकलते हैं। इसी में युग संपृक्ति का और कृतिकार के सामाजिक उत्तरदायित्व का हल मिलता है या मिल सकता है।"[173] अज्ञेय का यह कथन मिश्र जी की कविता में साकार हो उठता है क्योकि उन्होंने शब्दों को बरता नहीं बल्कि जिया और उन पर मरने के लिए तत्पर रहे।

"मैं उन्हें सिर्फ बरतूँ नहीं

उन्हें जिऊँ

बात कठिन है

---

[172] दूसरा सप्तक-पृ.

[173] तार सप्तक (सं.अज्ञेय) दूसरा संस्करण-पृ.308-309

लेकिन करना चाहिए

शब्दकार को

अगर जरूरत पड़े

तो अपने शब्दों पर

मरना चाहिए।"[174]

मिश्रजी लोक संवेदना के कवि हैं इसलिए वे भीतर से बाहर की यात्रा करते हैं। निजी अनुभूति को सामाजिक बनाने के लिए वे निरंतर तत्पर रहते हैं। निजी अनुभूति को सामाजिक बनाने के लिए निरंतर तत्पर रहते हैं। "शब्दों के महल" में वे लिखते हैं कि कवि पहले शब्दों से खिलवाड करता था और बैन को बानों के सिलसिले बनाता था। किंतु तब शब्दों का धरातल वैयक्तिक था, वे कवि के इशारे पर नाचते थे। अब लेकिन स्थिति बदल गई, शब्द अकडने लगे, कवि की ही न सुनकर अपनी भी सुनाने लगे-

"कहते हैं अब हमें तुम

अपने ही हक में बरतना बंद करो

हमें तुम दीवारों का नहीं।

अब मैदानों का छंद करो

फैलाओ हमें

जैसे किसान फैलाना है बीजों को।"[175]

संकीर्ण भावभूमि पर आधृत रहने से शब्दों का उपजाऊपन, उनकी संभावनाएँ समाप्त हो जाती हैं और जल्दी ही चुक जाते हैं। इसलिए जैसे किसान खेतों में बीज फैलाता है, उसी प्रकार कवि को शब्दों का व्यापक संवेदना की अभिव्यक्ति का माध्यम बनाना चाहिए और उन्हें व्यापक संवेदना की अभिव्यक्ति का माध्यम बनाना चाहिए और उन्हें निरंतर नये संदर्भ प्रदान करते रहना चाहिए।

शब्द केवल अभिव्यक्ति के माध्यम नहीं हैं बल्कि वे अपने आप में यथार्थ के बिंब भी हैं यानी कुछ शब्द ऐसे होते हैं जो यथार्थ के अनुभव के साथ जुडे हुए हमें मिलते हैं। कुछ ऐसे

---

[174] गीत फरोश:शब्दों के महल-पृ.10

[175] गीतफरोश-पृ.

होते हैं जिन्हें हम भाषा सीखने के क्रम में किताओं से या शब्द कोश से प्राप्त करते हैं। किताबों से या शब्द कोश से हम अनेक बड़े-बड़े लुभावने और महत्वपूर्ण से दिखाई पड़ने वाले शब्द ले सकते हैं और उन्हें मिलाकर छंद या अछंद के माध्यम से एक अनुगूँज भरा संसार खड़ा कर सकते हैं किंतु यदि यह संसार निरर्थक होता है क्योंकि ये शब्द अपना किताबी अर्थ तो देते हैं किंतु ये जीवन अनुभव से रिक्त होते हैं।

"जिस तरह हम बोलते हैं उस तरह तू लिख
और इसके बाद भी हम से बड़ा तू दिख।

यह कहकर भवानी प्रसाद मिश्र उस जनता से अपनी बातचीत जारी रखे, जो उन दिनों आज से ज्यादा भाव प्रवण और जिम्मेदार थी। सच तो यह है कि सुराजी भवानी प्रसाद मिश्र शुरू से ही प्रभाव फेरियों, जेलों और जनांदलों के बीच सहधर्मिणी की तरह उनके साथ होती थी और वहाँ से लौटकर वह खुद को नये से तरतीब देती थी। वे सारे प्रसंग उसे घेरे रहते थे। इसलिए उनका लिखना पाठकों के लिए उतना नहीं रहा जितना कि श्रोताओं के लिए रहा। विजयबहादुर सिंह ने ठीक ही लिखा है कि-"कविता को पठनीय बनाने की कोशिश से वे कोसों दूर थे।"[176] इस संदर्भ में मिश्र जी की बात समीचीन जान पड़ती है कि-"मैं जो लिखता हूँ उसे जब बोलकर देखता हूँ और बोली उस में बजती नहीं तो मैं पंक्तियों को हिलाता-डुलाता हूँ। बोलचाल हिंदी की मेरी ताकत है।"[177] कह सकते हैं कि भवानी प्रसाद मिश्र के कृतियों में सहज और बोलचान की भाषा का प्रयोग हुआ है। उदाहरणार्थ-

"अभी बैन
अभी बान
अभी बानों के सिलसिले।"[178]

* * * *

"पुरानी आदिम
चिनगारी की तरह
फिंकना चाहिए

[176] आज के लोकप्रिय हिंदी कवि-पृ.14
[177] आज के लोकप्रिय हिंदी कवि-पृ.14
[178] आज के लोकप्रिय हिंदी कवि-पृ.14

अर्थ पुराने से पुराने शब्दों में से
नये संदर्भ में ... संदर्भ पुराने हो सकते हैं
नये हो सकते हैं
यह संयोग है
कि मन मेरा
आज एक नया संदर्भ है
मगर फिंकना तो चाहिए
पुराने ही शब्दों से
नये इस संदर्भ की चिनगारी।"[179]

भवानी प्रसाद मिश्र ने एक अंतरंग साक्षात्कार में कहा है-"जहाँ तक मेरा सवाल है, कह सकता हूँ कि मैंने शब्द-सम्मान, शब्द-रक्षा, शब्द-कल्याण भाव, शब्द की ब्रह्म शक्ति की लड़ाई लड़ी है।"[180] इससे स्पष्ट होता है कि कवि ने शब्द शक्ति और चमत्कार को पहचाना है। इसके समर्पण और विद्रोह का अनुभव है उन्हें। इसकी शीतलता और आग दोनों ही ध्रुवों पर शब्द अपनी शक्ति की उद्घाषणा करता है-

"तब शब्दों को
मेरा बड़ा ख्याल था
कि अभी शब्द
अभी महल अभी किले
अभी बैन
अभी बान, अभी बानों के सिलसिले
आधी रात को इशारा कीजिए
एक अंगडाई लेकर तैयार"

इस रचना प्रक्रिया के क्रम में कवि की यह बोध भी हो रहा है कि शब्द साथी हो सकता है, गुलाम नहीं।

---

[179] आज के लोकप्रिय हिंदी कवि-पृ.14
[180] भवानी प्रसाद के आयाम-पृ.250

भाषा और भाव के बीच स्पर्धा की प्रक्रिया में शब्द-चयन का महत्व बढ़ जाता है। भाव कवि की संवेदना है जो संस्कार से उत्पन्न होते हैं, पर कवि का दायित्व है कि वह उनके अनुरूप शब्दों का चयन करे। भवानी प्रसाद मिश्र ने अपनी रचनाओं में अन्यों की तरह आचार्यत्व प्रदर्शन करने का प्रयास नहीं किया है, फिर भी शब्द-चयन के संदर्भ में उनकी सजगता का कोई जवाब नहीं है, जो उन्हें आचार्यत्व प्रदान करता है। यथा-

"सवाल यह है
जो आग छुपी है
शब्दों में उसे हम
इस अंधेरी रात में
सुलगा सकते हैं कि नहीं
अपने प्राणों की फूंक से
चाहे जहाँ धधका सकते हैं या नहीं।"[181]

निष्कर्ष :

रूप के अंतर्गत विशेषता कविता का फार्म होता है। यह एक प्रकार से रचना का रचना-कौशल होता है। इसके द्वारा कविता की आंतरिक तथा बाह्य ढांचे में रंग-सृष्टि होती है। हर कवि अपने भावों को प्रभावकारी रूप प्रदान करने के लिए नये-नये रूपों का प्रयोग करता है। बिना "रूप" के कोई भी वस्तु की सृष्टि नहीं होती और यह भी पिष्टपेषन हुआ है कि समसामयिक वस्तु के अनुसार "रूप" का जन्म होता है। क्रोचे की "वस्तु और रूप" की अवधारणा स्पष्ट की जा चुकी है। उन्होंने सौंदर्य-भावना को रूप-प्रधान माना है। सच्चाई यह है कि क्रोचे ने जितना महत्व "रूप" को दिया है उतना वस्तु को नहीं। लेकिन क्रोचे ने वस्तु की उपेक्षा की, वर्णा ही उसे गौण माना। उन्होंने उसके सहअस्तित्वता को स्वीकारा है।

यदि हम हिंदी कविता के इतिहास को देखें तो ज्ञात होता है कि समय के अनुसार प्राकृतिक-रूपों में कालांतर से बदलाव आता गया है। प्राचीन कवियों ने प्रकृति को उद्दीपन-रूप में रूपायित किया है, छायावादियों ने प्रकृति और मनुष्य के मनोभावों में तादात्म्य स्थापित करने

---

[181] भवानी प्रसाद के आयाम-पृ.252

का प्रयास किया है। किंतु आधुनिक कविता में प्रकृति को वस्तुपरक और यथार्थ रूप को अधिक महत्व दिया गया। इन कवियों में प्रकृति के साथ बाल्य-सखा का संबंध देखने को मिलता है।

भवानी प्रसाद मिश्र निश्चित रूप से प्रकृति के सच्चे कवि हैं। उन्होंने प्रकृति को रोमानी चश्मा लगाकर नहीं देखा, बल्कि खुली आँखों से उसके समीप जाकर उसका सौंदर्य अपने रग-रग में संचित किया है। प्रथम काव्य संकलन "गीत फरोश" में प्रकृति-सौंदर्य पर श्रेष्ठ कविताएँ मिलती हैं। प्रतीक और बिंब विधान का रूप और खण्डकाव्य मिश्र जी के काव्य में विश्लेषित हुए हैं। मिश्रजी पावस के गायक हैं अतः उनके काव्य में गीतों के विविध रूपों का चित्रण हुआ है। गजल एवं शेर का भी प्रयोग मिश्रजी ने किया है।

निष्कर्षतः कह सकते हैं कि भवानी प्रसाद मिश्र के काव्य में विविध "रूप" बेजोड़ हैं। सहज, मार्मिक, बोलचाल की भाषा का प्रयोग हुआ है। विजयबहादुर सिंह ने ठीक ही कहा है कि- भवानी प्रसाद मिश्र कविता को पठनीय बनाने की कोशिश से कोसों दूर रहे हैं।

* * * * *

अध्याय पाँच

भवानी प्रसाद मिश्र के काव्य में ''वस्तु और रूप'' का विकासात्मक विश्लेषण

5.1 राष्ट्रीय आंदोलन एवं गांधी-दर्शन

5.2 विभिन्न काव्यांदोलन

5.2.1 छायावाद

5.2.2 प्रगतिवाद

5.2.3 प्रयोगवाद

5.2.3.1 वर्तुलाकार लय

5.2.3.2 वस्तु रूप संबंधों का अन्यथाकरण

5.2.3.3 स्वगत में मुक्त संवाद का फार्म

5.3 नई कविता

5.4 रचनात्मक संश्लिष्टता

5.5 लंबी कविता

5.6 हायकु

निष्कर्ष

अध्याय पाँच

भवानी प्रसाद मिश्र के काव्य में ''वस्तु और रूप'' का विकासात्मक विश्लेषण

युग के आंदोलन, अन्तर्विरोध, आशा-निराशा, प्रयोग आदि के वे विवेचनीय क्षण साहित्य तथा कला के प्रेरणा स्रोते हैं, जिनकी उपलब्धि जीवन के प्रवाहमान रूप में मानव को समय के अनंत सागर में उठनेवाले आंदोलन द्वारा आंदोलित होने पर ही संभव है। कवि इसी आन्दोलन द्वारा आंदोलित एवं उद्वेलित होकर युग की तीव्र विचार-धाराओं के साथ बहता हुआ परम्परागत रूप में उठनेवाली सामाजिक राजनैतिक, सांस्कृतिक, दार्शनिक साहित्यिक परिप्रेक्ष्य में नवीन, तीव्र रचना-संसार की लहरें प्रारंभ करता है। दूसरे शब्दों में कहे तो सम-सामयिक युग की गतिविधियाँ जिस तीव्रता के साथ परिवर्तित होती हैं, उसी तीव्रता के साथ महान् कवि अपने युग से सर्वथा तटस्थ या उदासीन नहीं रह सकता, क्योंकि वह शून्य में बैठकर रचना नहीं रचता अपितु युग के प्रवृत्तियाँ, सुख-दुःख जटिल-समस्याओं तथा उसके अर्न्तव्यापित प्रभावों से वह अनुप्रेरित होता है। रचनाकार अपने समय में उठनेवाले आन्दोलन तथा गतिविधियों को अपनी रचना के लिए विषय-वस्तु चुन लेता है।

वस्तु और रूप की सैद्धांतिक विवेचन में दर्शाया गया है कि कुछ मतभेदों के बावजूद श्रेष्ठ काव्य के लिए उनके सहअस्तित्व और सहभाव की स्थिति मानी गई है। वस्तुतः वस्तु जगत में वह सारा अंश आता है जो वर्ण्य हैं। मानव-बोध, चेतना, ज्ञान आदि के संपर्क में आता है। भरतमुनि ने संसार की समग्र विध्य काव्य का अंग माना है। अतः विषय-वस्तु का चरित्र इस बात की सूचना देता है कि कवि के जीवन की परिस्थितियाँ और उनके दबाव का स्वरूप तथा काव्य प्रवृत्तियाँ कैसी हैं।

जैसे कि काव्य में अभिव्यक्ति जिस बात की या जिस विषय-वस्तु की होती है वह महत्वपूर्ण है और काव्य में किस ढंग से अभिव्यक्ति हुई है, इस पर विचार करना उसके रूपवादी पक्ष के अन्तर्गत आता है। किंतु अध्याय एक में पाश्चात्य एवं भारतीय चिंतकों के विचारों द्वारा स्पष्ट किया गया है कि काव्य केवल "कला" नहीं होती वरन् उसके अतिरिक्त उसे संरचनात्मक कृति में देखा।

मूलतः वस्तु और रूप परिवर्तनशील होते हैं। वस्तु और रूप का सैद्धांतिक विवेचन में मार्क्सवादी चिंतक क्रोचे का हवाला देकर स्पष्ट किया जा चुका है कि वे जितना महत्व "रूप" को देते हैं उतना वस्तु को नहीं किंतु इतना करने पर भी उन्होंने "वस्तु" की उपेक्षा नहीं की। उन्होंने उसे उचित महत्व दिया। वस्तु का अपना मूल्य होता है। यह भी तथ्य है कि उसके बिना रूप किस बात का। अनुभूति का आधार भी तो कोई सत्ता या कल्पनिक वस्तु ही होती है। यह वस्तु सदा गतिशील होती है। अतः कह सकते हैं वस्तु के साथ रूप विधान बाहरी अलंकरण न होकर अन्तरिक प्रक्रिया का अंग होता है। मार्क्सवादी चिंतक मानते हैं कि यथार्थ की ठोस पहचान के लिए विषय-वस्तु का होना आवश्यक हो जाता है। वस्तु तथा रूप में जैविक एकता पर भी बल दिया गया है। समीक्षकों का मानना है कि पुराना शक्तिशाली रूप, वस्तु को विकृत कर सकता है। दूसरी ओर उनकी मान्यता यह भी है कि, शक्तिशाली वस्तु-सामग्री रूप को परिवर्तित कर सकती है। अध्याय एक में विश्लेषित "आर्न्ट फिशर" के अनुसार -"जिसे हम रूप कहते हैं, वह भौतिक तत्व के लिए एक विशिष्ट समूह, विशिष्ट संयोजन एक आपसी संतुलन की अवस्था है..... मगर अन्तर्वस्तु लगातार बदलती रहती है कभी वह नामालूम ढंग से बदलती है तो कभी तीव्र क्रिया के अन्तर्गत बदलती है। वह रूप से जुझने लगती है। अंततः विस्फोट करके रूप को उड़ा देती है और नये रूपों को जन्म देती है।"[1] भवानी प्रसाद मिश्र का सारा काव्य यदि ऊपर विवेचित विचार-दृष्टि पर परखें तो पता चलता है कि उनमें विषय-वस्तु और रूप समयानुकूल परिवर्तित होता गया है। अतः मिश्रजी के काव्य में विस्तार से इस परिवर्तन का विवेचन करना इस अध्याय का उद्देश्य है।

5.1. राष्ट्रीय आन्दोलन एवं गांधी दर्शन

अध्याय दो में विवेचित किया जा चुका है कि भवानी प्रसाद मिश्र का राष्ट्रीय आन्दोलन से गहरा संबंध रहा है। हॉयस्कूल के विद्यार्थी जीवन से ही राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेने लगे थे। तथाकथित परिस्थिति की छाप उनके व्यक्तित्व पर गहरा पड़ा। जिसमें राजनैतिक गतिविधियों का लेखा-जोखा को मिश्रजीने विषय-वस्तु चुना। कई नेता जनता का मार्गदर्शन कर रहे थे। साहित्य के माध्यम से साहित्यकार जनता को दासता की गहरी नींद से जगा रहे थे। जिनमें राष्ट्रकवि माखनलाल चतुर्वेदी, मैथलीशरण गुप्त, दिनकर अपनी-अपनी लेखनी चला रहे थे।

[1] साक्षात्कार-नवंबर-दिसंबर-1985, पृ.121

मिश्रजी ने पहली कविता होशंगाबाद में हाईस्कूल में पढ़ते हुए असहयोग आंदोलन के काल में - नरसिंहदास अग्रवाल का प्रसिद्ध गीत गुंज रहा था। यथा -

रणभेरी बज चुकी, वीरवर पहनो के सरिया बाना,

....

माता के सच्चे पूतों को आज कसौटी होना है,

देखे कौन निकलता पीतल कौन निकलता सोना है।

इसी के उत्तर में भवानी प्रसाद मिश्र तथाकथित राजनैतिक परतंत्रता को विषय-वस्तु बनाकर अपनी अबोध केवल 17 वर्ष की अवस्था में इस विषय-वस्तु को सरल एवं बेधकड़ ढंग से विश्लेषित किया-

"मैं माता का पूत, कसौटी का कोई पत्थर ले जाए,

मुझ में ऐसी रेखा खिंचेगी, जिससे सोना भी शरमाएँ।"[2]

भवानी प्रसाद मिश्र की आरम्भिक रचनाएँ कवि के युवामन की रचनाएँ हैं। इसमें प्रेमजन्य पीड़ा की जगह अमूर्त वेदना, निराशा, देशप्रेम की प्रधानता तथा प्राकृतिक वर्णन है।

भवानी प्रसाद मिश्र बचपन से ही तुकें भिडाया करते थे। घर का वातावरण उनकी इस प्रतिभा को प्रोत्साहित करता था। माँ गोमती देवी और पिता पंडित सीताराम का स्नेह और प्रेम कवि की वाणी में कूट-कूटकर भरा हुआ है। "घर की याद", "सतपुड़ा के जंगल" आदि कविताओं में प्रकृति का मार्मिक चित्रण और देशप्रेम ओतप्रोत भरा है। भवानी प्रसाद मिश्र काफी कम उम्र में ही अपने स्कूल में एक बाल-कवि के रूप में प्रसिद्ध हो चुके थे। उनके बड़े भाई दुर्गाप्रसाद मिश्र ने उनकी कविता को एक पत्रिका में छपने के लिए भेजा था। भवानी प्रसाद मिश्र ने कविता के साथ सम्पादक को दो पंक्तियाँ भी लिखकर भेजी -

"छपना हो तो छाप

नहीं तो बैठा-बैठा टाप"[3]

नौ साल की उम्र में अपनी पहली कविता को इस तरह पत्र के साथ भेजना भवानी प्रसाद मिश्र की जन्मजात उंचाई को दर्शाता है। इस छंद में जो प्रामाणिकता का भाव बोलचाल एवं सहज

---

[2] भवानी प्रसाद मिश्रः भवानी प्रसाद के आयाम, पृ.280

[3] गीतफरोशःसंवेदना और शिल्प-पृ.16

ढंग से प्रयुक्त हुआ है। "छाप" और "टाप" जैसे शब्द योग का प्रयोग करने से अनुप्रास का सुंदर उदाहरण बन गया है।

काव्य-सृजना में वस्तु और रूप के द्वन्द्वात्मक पक्ष-ही अन्तर्प्रभावी रहता हैं और काव्य को काव्य बना पाते हैं। अध्याय एक में विवेचित पाश्चात्य आलोचक जहाँ यह मानते हैं कि "कन्टेन्ट इज बिकमिंग ए फार्म" वहाँ पर कतिपय ऐसे आलोचकों की कमी नहीं है जो फार्म को ही विषयवस्तु का नियन्ता मान लेते हैं। जबकि काव्यवस्तु अपने रूपगत परिप्रेक्ष्य की वस्तुगतता से ही सम्प्रेषणीय व सौंदर्यमयी हो पाती है। काव्यवस्तु के सौंदर्य पर विचार करते हुए उसके रूपगत परिप्रेक्ष्य को नजर अन्दाज करना दरअसल कविता की बुनियादी शर्त को इन्कार करना है। समकालीन काव्याभिव्यक्ति के रूपगत संरचना में, जहाँ काव्यसृजना के अन्यान्य उपादानों तथा बिम्ब-प्रतीक, व्यंग्य पर विचार किया जाना अवश्यम्भावी होता है वहाँ-छन्द मुक्त छंद, गीत-नवगीत, गजल-शेर, खण्ड-काव्य आदि कविताओं के सृजनात्मक स्वरूपों की वस्तुगतता पर विचार किया जाना श्रेयस्कर होता है। अभिव्यक्ति के विभिन्न शैली रूप संरचना ही परिपूर्णता से काव्यान्र्तवस्तु एवं सौंदर्यानुभव के प्रतिफलन में कारगर तत्व बन पाते हैं।

गांधीवादी दर्शन से अनुप्रेरित रहने पर भी भवानी प्रसाद मिश्र के पास सामाजिक जीवन की विसंगतियों की, अन्तर्विरोधी जटिलताओं की पहचान "जीवन संघर्ष की पक्षधरता" के कारण कम नहीं रही है। पूँजीवादी उत्पादन की जटिलताओं को उन्होंने "गीत फरोश" के माध्यम से अनावृत किया था। दरअसल रागात्मक बोध तथा नारी-प्रेम की कविताओं के संदर्भ में डॉ.रोहिताश्व की उक्ति ठीक लगती है "नारी-प्रेम की संवेदनशीलता के अभाव के बावजूद भी परिवेशगत प्रेम से जुड़ी है। उनका सुखःदुख रीकांत वर्मा या अज्ञेय के "समाधि शैली" का नहीं है।"[4] यथा उनका कवि-मन जिन समस्याओं को भोगा है इसे कच्चे माल के रूप में अभिव्यक्त करने की समस्या से जूझता है। भवानी प्रसाद मिश्र ने जन-जीवन संघर्ष की सौंदर्यबोधी संश्लिष्ठता में "मिसा की भारतीय चक्की" में अनावृत किया है अपने पूरे पक्षधर वजूद में -

"इस चक्की में पिसेंगे आप
तो बिल्कुल बारीक पिसेंगे
न आपकी हड्डी पहचानी जाएगी

---

[4] समकालीन कविता, और सौंदर्य-बोध, पृ.127

न पसली

तब नकली लगेगा

आप तक को....अपना पसीना और

असली लगेगी पाट के हर तेज चक्कर पर

देश की तरक्की

कहिए कैसी निकाली है हमने

"कान्सनट्रेशन केम्प" के पैटर्न पर

मिसा की भारतीय चक्की।"[5]

भवानी प्रसाद मिश्र की अपनी सीमा अनुभूति के गहरे मार्मिक स्तरों पर जाकर, अन्तर्जटिलता के विभिन्न रूपों में अभिव्यक्त नहीं करने की रही है। लेकिन संवादधर्मिता या बातचीत की शैली में सौंदर्यबोधी जीवन-संघर्ष की जटिलता कविता के शीर्षक "मिसा की भारतीय चक्की" से ही पाठक के मन में संघर्ष का बिम्ब उत्पन्न करता है। शोषण तथा हुकूमत का कहर अपातकाल में सोचनीय रहा। शोषण अन्याय के विरूद्ध आवाज उठानेवालों को "चक्की में" कहकर कवि उस दर्दनाक घटना की ओर इंगित कर दिया है। "पिसेंगे" "हड्डी" "पसली" जैसे बोलचाल के शब्दों का प्रयोग करने से उनकी जैसी सहज प्रतिभा अन्य समकालीनों में दुर्लभ है। आगे कवि ने उस क्रूर अन्याय पर व्यंग्यात्मक ढंग से क्षोब व्यक्त किया है जो "असली लगेगी पाट के हर चक्कर पर" कहकर देश का खोखलापन अनावृत्त हुआ है। अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग करने से विषय-वस्तु के "रूप" में निखार आया है यथा -"कान्सन्ट्रेशन केम्प" और "पैटर्न" जैसे शब्दों द्वारा तत्कालीन भयावह स्थिति का रूप विश्लेषित हुआ है। "बारीक पिसेंगे" "न आपकी" "न पसली" "देश की तरक्की" "कैसे निकाली" में तुकबंदी का अतिशय मोह अभिव्यक्त हुआ है। रचना-प्रक्रिया की पंक्तियों में आत्मलोचन प्रक्रिया में कवि की बेचैनी और चिंता के उपरांत भी "रूप" में नवीनता मिलती है। परिवेश की समस्त विसंगतियों, मुद्राओं तथा तनाव को वे चमत्कार, चौंका देने वाली स्थितियों द्वारा तुकबन्दी की ओर मिश्रजी का अत्याधिक रुझान है। तुकबन्दी से भाषा में प्रवाह तो आता है पर इसकी अति के कारण कई स्थलों पर अर्थ का अनर्थ हो जाता है। यह भवानी प्रसाद मिश्र में नहीं हुआ है।

---

[5] कल्पना: अंक 274, पृ.5

5.2. विभिन्न काव्यान्दोलन

यदि हम काव्यान्दोलनों की दृष्टि से देखें तो छायावाद के पूर्ण उत्कर्ष काल में भवानी प्रसाद मिश्र का प्रवेश हुआ। "गीतफरोश" की लगभग सभी कविताएँ छायावाद काल में लिखित कविताएँ हैं। उन्हीं के शब्दों में - "लगभग सभी कुछ बँधे-बँधाएँ ढंग से बँधी-बँधाई बाते कह रहे थे। उन दिनों उसे छायावाद कहा जाता था। लेकिन मैंने वह सब कुछ नहीं लिखा और उस ढंग से नहीं लिखा।"[6] यह अलगाव उन्हें प्रगतिवाद से भी न जोड़ सका। उनमें प्रगतिशीलता है किंतु उनका सामाजिक यथार्थवादी मार्क्सवाद से सम्बद्ध नहीं। समाज के वैषम्य, शोषण, दैत्य, अनाचार आदि से वे क्षुब्ध हैं और उससे मानव की मुक्ति के आकांक्षी हैं किंतु उसके पीछे कोई आयातित विचारधारा का प्रभाव नहीं हैं। वह भारतीय जीवन की सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों की उपज है जिसके पीछे मानवीय दृष्टि है। इस तरह वे "सप्तक" के कारण प्रयोगवाद से जुड़े रह कर भी मूलतः उसके बाहर हैं। कुछ समीक्षक उन्हें मध्यवर्ती स्थिति का कवि बताने की कोशिश की है। लेकिन भवानी प्रसाद मिश्र में प्रगति और प्रयोग के श्रेष्ठ तत्वों का समन्वय हुआ है किंतु उनमें व्यक्तिवादिता और सामूहिकता का द्वन्द्व दिखाई नहीं देता अतः मध्यवर्ती कवि बताना उचित नहीं है। कुछ विद्वानों ने "नयी कवि और नये गीत के मध्य में मूल्यांकन" करना चाहा है क्योंकि "उनका काव्य शिल्प नई कविता का है ओर उनका काव्य वस्तु गीतात्मक। यह तथ्य भी सटीक नहीं बैठता क्योंकि जैसी विषय वस्तु है उसके अनुरूप रूप होता है। ये दोनों घुले-मिले हैं। अक्सर बदलती स्थितियों के अनुरूप जब विषय में परिवर्तन होता है तो रूढ़िगत काव्य भाषा भी अतिक्रमण करने लगती है। कुछ समीक्षक इन्हें प्रयोगवादी रूझान का प्रगतिशील कवि मानते हैं पर उनकी सहजता प्रयोग वृत्ति के अनुकूल नहीं दीख पड़ती। वह तो एकदम प्रकृत है। सही अर्थों में हम कह सकते हैं कि भवानी प्रसाद मिश्र सहज मानवतावादी कवि हैं जिनकी चेतना युगानुकूल है और वे वादीय भूमि से स्वतंत्र हैं।

साठोत्तरी कविता में जब समकालीन काव्य के साथ नये आन्दोलनों का दौर आया- अकविता, अस्वीकृत कविता, विद्रोही कविता, अधुनातन कविता, बीट कविता, टटकी कविता, ताजी कविता, प्रतिबद्ध कविता, नंगी कविता- आदि तब उनमें भी भवानी प्रसाद का कवि रूप किंचित भी नहीं ढल सका। गोया, उनमें किसी मतवाद का आग्रह नहीं है। सामान्य जीवन के

---

[6] बुनी हुई रस्सी (अपनी ओर से), पृ.6

यथार्थ की पकड़ और व्यवहारिक बोलचाल का रूप, शिल्प उन्हें नए काव्य का सशक्त हस्ताक्षर बनाता है।

5.2.1. छायावाद

छायावाद कविता यद्यपि अपनी स्वच्छन्दतावादी बल्पनाशीलता और व्यक्तिगत सौंदर्य तथा प्रेम के ही कारण जानी जाती है किंतु इन प्रवृत्तियों के समानान्तर यथार्थबोध से अनुप्रेरित एक ऐसी रचनाशीलता भी बराबर गतिशील रहती है जिसका आधार देश तथा जनता का जीवन है। साथ ही "छायावाद जिस व्यक्तिवादी चेतना" के उन्मेष से स्पंदित है, वह उन्मेष अपने मूल में समाजविरोधी नहीं है। वह विरोधी है सामंती जड़ सामूहिकता का। अपने अनुभव, अपनी दृष्टि, अपना चिंतन अपनी कल्पना खोकर व्यक्ति जो समूह बनाते हैं उसकी सार्थकता नहीं है। रूढ़िबद्धय वर्णाश्रम व्यवस्था में जकड़े हुए सड़े-गले मूल्यों और स्थिर संबंधों में फसे हुए व्यक्तियों का समाज किस काम का। पूँजीपति और छायावादी व्यक्ति स्वतंत्र व्यक्तियों के अपने अनुभवों, चिंतन, कल्पना आदि को महत्व देता है और समाज का निषेध न करके एक ऐसे समाज की कल्पना करता है जो स्वतंत्र और जीवंत व्यक्तियों से बना हो। यह व्यक्ति स्वातंत्र्य, व्यक्ति चेतना का यह उन्मेष निश्चय ही एक प्रगतिशील चेतना है, जो पुरानी व्यवस्था से टकराती एक नई व्यवस्था के भीतर से फूट रही है। छायावादी कवियों ने इस स्वर को वैज्ञानिक दृष्टि से परीक्षित किया हो या न किया हो, उनका अनुभव बड़ी तीव्रता से कर सकते हैं।

हिन्दी समालोचना के क्षेत्र में छायावाद का प्रचलन सन् 1918-20 के लगभग हो चुका था। वर्तमान समय तक उपलब्ध साहित्यिक सामग्री के आधार पर जबलपुर की "श्री शारदा" नामक पत्रिका के सन् 1920 जुलाई, सितम्बर, नवम्बर, दिसम्बर के अंकों में प्रकाशित "मुकुटधर पाडेय" द्वारा लिखित "हिन्दी छायावाद" शीर्षक लेख के अन्तर्गत चार निबंधों को छायावाद के स्वरूप विश्लेषक निबंध माने जाते हैं। द्वितीय निबंध "छायावाद क्या है?।"[7] के अन्तर्गत उन्होंने छायावाद की प्रायः सभी मूल विशेषताओं - अंतरंगता, कल्पना तत्व, प्रकृति प्रेम, इत्यादि का उल्लेख किया है तथा छायावाद को पाश्चात्य मिस्टिसिज्म का पर्याय मानते हुए कहा कि अंग्रजी या किसी पाश्चात्य साहित्य

---

[7] श्री शारदाः(जबलपुर) अंक सितंबर 1902, छायावाद क्या है? पृ.340

अथवा बंग साहित्य की वर्तमान स्थिति की कुछ भी जानकारी रखने वाले तो सुनते ही समझ जायेंगे कि यह शब्द मिस्टिसिज्म के लिए आया है और आगे कहा कि - छायावाद एक ऐसी मायामय सूक्ष्म वस्तु है कि शब्दों द्वारा उसका ठीक-ठीक वर्णन करना असम्भव है - छायावाद के कवि वस्तुओं का असाधारण दृष्टि से देखते हैं, चित्र दृश्य वस्तु की आत्मा का ही उतारा जाता है - उनकी कविता देवी की आँखे ऊपर की ही ओर उठी रहती हैं, मर्त्यलोक से उसका कम सम्बन्ध रहता है।"[8] डॉ. नगेन्द्र ने छायावाद के स्वरूप का विश्लेषण करते हुए दो तथ्यों पर प्रकाश डाला है - "एक तो वे स्थूल के प्रति सूक्ष्म के विद्रोह को छायावाद की मूल प्रेरणा मानते हैं, जिसके अन्तर्गत उपयोगितावाद के प्रति भावुकता का विद्रोह, नैतिक रूढ़ियों के प्रति मानसिक स्वातन्त्र्य का विद्रोह और काव्य के बन्धनों के प्रति स्वच्छन्द कल्पना और टेकनिक का विद्रोह।"[9]

वस्तुतः छायावादी कविताओं की परिभाषा का निश्चय उन कविताओं में पायी जानेवाली सभी प्रवृत्तियों के आधार पर हुई है। क्योंकि छायावाद उस राष्ट्रीय जागरण की काव्यात्मक अभिव्यक्ति है जो एक ओर पुरानी रूढ़ियों से मुक्ति चाहता था और दूसरी ओर विदेशी पराधीनता से। इस जागरण में क्रमशः जिस तरह विकास होता गया, इसकी काव्यात्मक अभिव्यक्ति भी विकसित होती गयी, फलस्वरूप छायावाद का भी विस्तार होता गया।

भवानी प्रसाद मिश्र की प्रारंभिक रचनाओं की विशिष्टता यह है कि उन्होंने प्रकृति को प्रचलित रोमानी चश्मा लगाकर नहीं देखा, बल्कि खुली आँखों से उसके ठेठ "लोक" को देखा। इसलिए उन्होंने न तो प्राचीन कवियों की भाँति प्रकृति को उद्दीपन माना और न हीं, द्विवेदी युगीन कवियों की भांति प्रकृति पर नैतिकता का बोझ डालते हुए किसी प्रकार का उपदेशपूर्ण निष्कर्ष निथाला। छायावाद के उत्कर्ष के समय में रचनारत रहकर भी मिश्र जी छायावाद से लगभग अप्रभावित ही रहे। छायावादी कवि ने प्रकृति पर अहं का आरोप कर उसे अलौकिक रहस्य सत्ता का स्पन्दन बना दिया किंतु मिश्रजी का प्रकृति से ठीक वैसा ही सम्बन्ध है जैसा किसी बाल्य-सखा से होता है।

---

[8] छायावादः नामवर, पृ.13,14

[9] सुमित्रानंदन पंत: छायावाद, पृ.2

दरअसल भवानी प्रसाद मिश्र के प्रारंभिक रचनाएँ छायावाद के काफी समीप लगते हैं। "गीतफरोश" काव्य संग्रह में "आषाढ़", "मेघदूत", कोकिल आदि कल्पनाप्रधान कविताएँ हैं जिन में कवि कोयल को पक्षिणी के रूप में देखता है।

"कौन से नवदूत ने किस यक्ष से संकेत पाकर
प्यार का संदेश तुझको सात सागर पार जाकर
उड चलो कहकर दिया, तुम उड चली, तुम यक्षिणी हो
तुम न केवल पक्षिणी हो -।"[10]

और आषाढ़ के मेघ को मिलन, विरह, अभिसार का रूप-

"हे मेघ पुंजीभूत, हे जलधार,
हे तडित हे वेग, हे विस्तार,
हे पथिक के दूत, अक्षय प्यार,
हे मलिन हे विरह, हे अभिसार -।"[11]

किंतु अपनी प्रबल लोक-चेतना के कारण प्रकृति के प्रति मिश्र जी की सौंदर्य-दृष्टि यथार्थ में बदल गई। कॉलेज जीवन में रचित "सतपुड़ा के जंगल" कविता इसका प्रमाण है। इस कविता में जंगल का वातावरण अत्यंत सूक्ष्मता से अंकित हुआ है। कवि ने प्रकृति के अंचल विशेष को बड़ी यथार्थता के साथ रूपायित किया है।-

"झाड ऊँचे और नीचे
चुप खड़े हैं आँख मींचे
घास चुप है काश चुप है
मूक शाल पलाश चुप है
सतपुड़ा के घने जंगल
नींद में डूबे हुए से
उंघते उनमें जंगल-"[12]

---

[10] गीतफरोश, पृ.10
[11] गीतफरोश, पृ. 36
[12] गीतफरोश, पृ. 60

मूलतः इस कविता में प्राकृतिक उपादानों का सौंदर्य चित्रण जो हुआ है, इसमें "रूप" ही निखर हो उठा है। रूपगत परिप्रेक्ष्य का माध्यम, काव्यात्मक प्रस्तुति की औपचारिक माध्यम ही नहीं होता है बल्कि वह अन्तर्वस्तु का सहवर्ती-प्रतिरूपी माध्यम होता है। कोई भी काव्यसृजना रूपगत माध्यमों की वस्तुगत संरचना से ही मूर्त और अभिव्यक्त हो जाती है। रूपगत परिप्रेक्ष्य की वस्तुगतता के संबंध में प्रभाकर क्षोत्रिय के विचार प्रासंगिक हैं कि "वस्तु या विचार जब तीव्र अनुभूति में तरंगित होते हैं तो .... सौंदर्य प्रतिरूपों में स्थानांतरित हो जाते हैं। इसलिए कविता के कथ्य को अर्थात् वस्तु को उसके रूप से या रूप को वस्तु से अलग नहीं किया जा सकता।"[13]

वस्तुतः "सतपुडा के जंगल" काव्य का कलापक्ष में रूपगत परिप्रेक्ष्य उसकी अभिव्यक्ति के रूपायन की सहीं सौंदर्यात्मक दृष्टि उजार हुई है। जो हर पाठक रचनाकार, व आलोचक के लिए आवश्यक है। "ऊँचे" नीचे, मींचे जैसे साधारण बोलचाल शब्दों का प्रयोग तथा "घाँस चुप" "काश चुप" "पलाश चुप" अंत्यानुप्रास द्वारा सतपुडा के जंगल का दृश्य-बिंब आँखों के सामने गुजरा करने लगता है। मुक्तिबोध ने ठीक ही कहा है कि - "पाठक का यह आदि और प्रथम धर्म है कि वह कलात्मक सौंदर्य को आत्मसात करते हुए कृति के मर्म में प्रवेश करें। कलात्मक सौंदर्य तो वह सिंद द्वार है। जिसमें से गुजरे कर ही कृति के मर्म क्षेत्र में विचरण किया जा सकता है अन्यथा नहीं।"[14] इसको मिश्राजी ने बखूबी निभाया ही नहीं बल्कि मिश्रजी कलात्मक सौंदर्य रूप के पोषक हैं।

5.2.2. प्रगतिवाद

हिन्दी में प्रगतिवादी आन्दोलन का प्रारंभ सन् 1935-36 के आसपास से माना जाता है। इस साहित्यिक आन्दोलन के पीछे राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियाँ थीं साथ ही निश्चित सामाजिक, वैचारिक उद्देश्य था। मार्क्सवादी जीवन-विवेक को ग्रहण करने के कारण कुछ लोग इसे कम्युनिष्ट विचारधारा का साहित्यिक रूपांतरण समझते हैं। तो प्रश्न उठता है या पश्चिमि जगत में "प्रोग्रेसिव राइटर्स एसोसियेशन" की स्थापना की प्रेरणा से ही भारत में "प्रगतिशील लेखक संघ" की स्थापना हुई। क्या इस स्थापना के पीछे उसकी प्रेरणा ही पर्याप्त थी या हमारी साहित्यिक परम्परा में, भारतीय सामाजिक जीवन में यह

[13] कविता की तीसरी आँख, पृ.105
[14] मुक्तिबोधः कामायनी एवं पुनर्विचार, पृ.169

चेतना 1936 से पहले के दौर में भी विद्यमान थी? भारत की धरती पर इसका आरंभ आकस्मित नहीं हुआ, वरन् आधुनिक युग के प्रारंभ के साथ ही साहित्य में यथार्थ-लेखन की जिस वृत्ति का जन्म होता है, उसी यथार्थान्मुख प्रवृत्ति के गर्भ से मार्क्सवादी जीवन विवेक से सम्पृक्त प्रगतिवादी आन्दोलन जन्मता है। जिस यथार्थवादी दृष्टि को लेकर प्रगतिवाद चलता है, वह निश्चित ही भारतीय पुनर्जागरण के दौर में भारतेन्दुयुगीन साहित्य में मिलता है।

विज्ञान के नये-नये आविष्कारों और तकनीकी उन्नति ने अर्थव्यवस्था जीवनस्थर में भी परिवर्तन ला दिया है। बड़े-बड़े उद्योग धंधे फैल रहे हैं तथा नये और बड़े-बड़े शहरों में गाँव के लोग नौकरी और तड़क-भड़क की तलाश में गन्दी बस्तियों में जिंदगी बसर करने पर मज़बूर हो गये हैं। अतिजनसंख्या मनुष्य की निजी हैसियत को और भी कम कर रही है। मनुष्य योजना बनाने वालों के लिए केवल आकड़ों की समस्या बन कर रह जायेगा। इस में कोई संदेह नहीं कि इन भीड भरी बस्तियों में ऊँचे-ऊँचे भवनों का निर्माण भी हो रहा है। लेकिन घर खत्म हो रहे हैं। मानसिक तौर से लोगों में फासला बढ़ रहा है। भीड़ में खोये हुए लोग जितना एक दूसरे के करीब हो रहे हैं उतना ही उनके निजी जीवन का संकट बढ़ रहा है। नगरों की सभ्यता में पले लोग एक दूसरे से सहारा लेते हैं न देते हैं। वे सब गुमनाम, बेनाम, बेचेहरा लोग हैं। उनके सामने केवल यही समस्या नहीं कि वे बाह्य जगत के दबाव से अपने निजी जीवन को कैसे सुरक्षित रखे बल्कि आन्तरिक भय और वेदना से कैसे मुक्ति प्राप्त करें।

कार्ल यास्पर ने सही कहा है कि "मनुष्य के अस्तित्व के लिए सबसे बड़ा खतरा तकनीकी साधनों के बल पर भीड़ के लिए संगठित उत्पादन व्यवस्था है।"[15] आधुनिक कल्याणकारी राज्यों की विशाल यांत्रिक व्यवस्था में मनुष्य एक साधारण पुर्जा बन गया है और वह निजी तत्व, मन गहराई और आध्यात्मिक दायरे से दूर होता जा रहा है। बाजार अब ऐसे नियमों पर चलने लगा है जिसमें मनुष्य के निजी निर्णय और रूची का बहुत कम दखल है। वस्तुएँ, जरूरत और उपयोग के कारण कम विज्ञापन और कृत्रिम मांग के कारण अधिक बिकती है और फिर मुद्रास्फीती का संकट भी है। वास्तविक वस्तु(प्रायः

[15] देवेंद्र हस्सारः साहित्य और आधुनिक युगबोध, पृ. 2

नकली) के साथ-साथ पैकेट और विज्ञापन के दाम भी चुकाने पड़ते हैं। वस्तु के बजाय वस्तु का "इमेज" खरीदा और बेचा जाता है।

इस प्रकार की रचनाओं में इनकी "गीत फरोश" रचना की जितनी प्रशंसा की जाय थोडी है। विषय-वस्तु को व्यंग्य और एकालाप का रूप ही निखर लाया है। काव्य का प्रसार और प्रचार आज विभिन्न रूचि वाले पाठकों की व्यक्तिगत पसंद पर निर्भर करता है। यह रूचि अस्थिर और असंस्कृत है। आज कवि यदि अपने को अपने पाठकों तक पहुँचाना चाहता है तो या तो वह, जो वे चाहते हैं, वह लिखें, या फिर अपनी साधना का गला घोंट दे। इस प्रकार यह रचना आज के पाठक की गिरी रूचि और काव्य के मूल्यों की डॉवाडोल स्थिति की सूचक है। एक प्रकार से आज के युग पर यह एक तीखा व्यंग्य है। यह एक एकालाप है। बातचीत दो व्यक्तियों के बीच चल रही है, यद्यपि बोलनेवाला एक ही व्यक्ति है। प्रश्न उत्तर में ही निहित है और उत्तर प्रश्न में ध्वनित। कविता नाटकीय कथोपकथन का विलक्षण आकर्षण और माधुर्य लिए हुए है। इन सब के चलते इस कविता का "रूप" रूपवादियों के लिए सोचनीय है। यथा -

"जी हाँ हुजूर, मैं गीत बेचता हूँ,
मैं तरह-तरह के गीत बेचता हूँ,
मैं किसिम-किसिम के गीत बेचता हूँ!

....

जी पहले कुछ दिन शर्म लगी मुझको,
पर बाद-बाद में अकल जगी मुझको,
जी, लोगों ने तो बेच दिये इमान,
जी, आप न हो सुनकर ज्यादा हैरान-
है गीत बेचना वैसे बिल्कुल पाप
क्या करूँ मगर लाचार
हार कर गीत बेचता हूँ।
जी हाँ हुजूर मैं गीत बेचता हूँ,
मैं तरह-तरह के गीत बेचता हूँ,

मैं किसिम-किसिम के गीत बेचता हूँ।"[16]

इस कविता में "जी" "गीत" "तरह-तरह" "मैं" जैसे शब्दों का बार-बार प्रयोग होने से अनुप्रास रूप साकार हो उठा है। इस प्रकार की अनगीनत कविताएँ मिश्रजी ने लिखे हैं। जैसे -"सातपुड़ा के जंगल", "कवि", "गाँव", "आषाढ़", "मेघदूत", "ऐसा कर", "आज नीश्चित हो" आदि।

मूलतः यह भी स्पष्ट कर देना निर्विवाद न होगा कि भवानी प्रसाद मिश्र उन कवियों में हैं, जो कला से अधिक वस्तु का ध्यान रखते हैं। भाषा की सरलता की ओर इनका झुकाव प्रारंभ से ही रहा है। उन्होंने कहा भी है - जिस तरह हम बोलते हैं उस तरह तू लिख। परिणामतः शब्दों के तद्भव रूप प्रयुक्त करने के लिए ये प्रायः विवश हुए हैं। परवत, अरथ, मीत जैसे शब्द कहीं भी मिल जायेंगे। यह बात अरबी-फारसी शब्दों के साथ लागू नहीं होती। यह समझ में नहीं आता कि जो व्यक्ति रव्वाबीदा, मुसन्निफ, जिंदा और जाम शब्द का प्रयोग कर सकता है, साबित, सबब और यानी लिख सकता है, वह खड़ी बोली के क्षेत्र में उतरकर पै, लौं, रितु, आगी, नद्दी, जोती, जिनने आदि को सुधार कर क्यों नहीं लिख सकता। इनकी रचनाओं में अनेक स्थानों पर छंदोभंग और गति-भंग दोष पाया जाता है, जिसका कोई कारण समझ में नहीं आता, - सिवाय एक प्रकार की लापरवाही के। शब्दों के अशुद्ध प्रयोग भी हुए हैं। यथा -

"ऐसे बखत पर बिदली उठ करके छा गयी रे।[17]

तथा

कि उनने चीर कर जी बताया।[18]

तथा

जरा ठहरी कि सोचा रात हो लें।[19]

कहा गया है कि शैली ही व्यक्ति है। विषय तो सभी के समक्ष, सभी के लिए उपलब्ध होता है किंतु उसे ग्रहण करने व अभिव्यक्त करने में ही मौलिकता या निजस्विता है। डॉ. शशि मुदिराज ने ठीक ही कहा है कि - "वस्तु जगत के प्रति उपागम ही कवि की

---

[16] गीत फरोशः पृ. 180-82

[17] गीतफरोशः (पहला पानी कविता), पृ. 135

[18] गीतफरोशः पृ.

[19] गीतफरोशः (आशा गीत), पृ. 116

मौलिकता है और यही मौलिकता एक कवि को दूसरे कवि से पृथक करती है, उसकी पहचान को रेखांकित करती है। अनुभव में अनुभूति में, अभिव्यक्ति के चयन में कवि की निजी भंगिमा कार्य करती है। प्रत्येक कवि का अपना भाषाई तेवर होता है, बोलने और लिखने का अपना अन्दाज होता है जिसे किसी भी दशा में छिपाया नहीं जा सकता। रचना में इसी कारण रचनाकार की पहचान उतर आती है। इसीलिए निर्विकल्प, अत्यंतिक व्यक्तित्व-संगोपन अथवा दमन संभव नहीं।"[20]

5.2.3. प्रयोग वाद

प्रयोगवादी कविता कमोबेश रूप से यथार्थवादी और व्यक्ति केंद्रित कविता थी। इसके रचयिता मध्य-वर्ग के बौद्धिक व्यक्ति थे। स्वाभाविक रूप से इस वर्ग के व्यक्ति की कुण्ठा, अनास्था, उलझी संवेदनाओं के अंकन की प्रवृत्ति इसमें विशेष रूप से उभरी। छायावादी और प्रगतिवादी कविता की भावुकता पूर्ण मुद्राओं की जगह इसमें बौद्धि रूझान दिखाई पड़ता है। इसके अलावा छायावाद की रोमानी सौंदर्य-दृष्टि जो मूलतः अतीन्द्रिय, वायवी, अमूर्त और अमांसल थी, कि बजाय ऐन्द्रिय वस्तुगत, मांसल और मूर्त सौंदर्य-दृष्टि को अपनाया गया।

प्रयोगवादी काव्यान्दोलन की भूमिका में एक लंबे अरसे तक सन् 1943 में प्रकाशित "तारसप्तक" का महत्व प्रयोगवाद के सुसंगठित आन्दोलन के रूप में चर्चित रहा है। कारण "तारसप्तक" के संपादक अज्ञेय ने संपादकीय वक्तव्य में संकलित रचनाओं के संदभ्र में कह चुके थे कि कवि प्रयोग कर रहे हैं और राहों का अन्वेषण कर रहे हैं। कई संकलित कवियों ने भी अपने वक्तव्य में "प्रयोग" की बात उठाई थी। संभवतः इन्हीं संकेतों के आधार पर छायावादी आलोचकों ने "तारसप्तक" की कविता और उसकी शैली तथा रूप में लिखी गई अन्य रचनाओं को उनकी अलग इयत्ता में समझने की दृष्टि से "प्रयोगवाद" संज्ञा से अभिहित किया। अज्ञेय को यह नाम पसंद नहीं आया इसलिए "दूसरा सप्तक" में इसकी प्रतिक्रिया कर दी। मूलतः वे अपने को "वाद" की संकीर्ण सीमा में बांधने को तत्पर नहीं थे। अतः उन्होंने जाहिर किया -"प्रयोग अपने-आप में साध्य नहीं है साधन है। "व्यक्ति सत्य" को "समष्टि सत्य" तक उसी रूप में

---

[20] छायावाद में आत्माभिव्यक्ति, पृ.29

पहुँचाने की समस्या ने प्रयोग का आग्रह किया है। प्रयोग का कोई "वाद" नहीं है,"[21] ऐसा कहते हुए प्रयोगशील बनें रहना अधिक उपयुक्त समझा था।

कवि का उत्तरदायित्व मुख्यतः तीन वस्तुओं के प्रति होता है - व्यक्तिगत अनुभूति के प्रति, काव्य सत्ता के प्रति और सामाजिक जीवन के प्रति। किंतु प्रयोगवादी कवियों में एक भी पक्ष परिपुष्ट नहीं है। इस रोचक संदर्भ पर आचार्य नंददुलारे वाजपेयी जी ने प्रयोगवादी रचनाकारों को सलाह दी थी कि -"नवीनता लाइए पर अपनी विरासत से मुँह न मोडिए। उत्तराधिकार न छोड़िए। अन्वेषण ही नहीं, जीवन सम्बन्धि धारणा और साधना के लिए, प्रचुर साधन हैं। उस ओर आगे बढ़िए। अपने प्रति, अपनी अनुभूतियों के प्रति, काव्य के प्रति और समय, समाज के प्रति, उत्तरदायित्व भूलकर प्रयोग नहीं किये जा सकते। उन प्रयोगों का अर्थ होगा शून्य पर दीवाल खड़ी करना।"[22]

प्रयोगवादी कवियों में मुक्त छन्द के प्रयोगों की दृष्टि में भवानी प्रसाद मिश्र के प्रयोग उल्लेखनीय है। यद्यपि अज्ञेय के मुक्त छन्दों की लय बार-बार टूटी है और कभी-कभी लयहीनता की स्थिति आ गई है, किंतु वे मानते हैं कि -"लय को छोड़ने पर कविता नहीं होगी। जितनी ही वह सहज और सूक्ष्म होगी उतनी ही अन्तःस्थल और अलक्षित रहेगी।"[23] यह सहजता और सूक्ष्मता सामान्य पाठक के लिए लयहीन भी दिखाई देती है। प्रारंभ में भवानी प्रसाद मिश्र लम्बे-लम्बे चरणों वाले छंदोबद्ध कविताएँ लिखते थे, किंतु बाद में उनके मुक्त-छंदों की कविता अधिक रही। उनके परिपक्व काव्य काल के मुक्त-छंदों में न तो परम्परागत छन्दों के लयाधार हैं, न वक्तृत्वकला से प्रभावित प्रवाह बल्कि बातचीत का लहजा ही मुखर उठा है। "त-माशा" कविता में कवि शब्दों से खिलवाड1 करता-सा जान पड़ता है। वह कविता नहीं लिख रहा है, कविता के माध्यम से प्रयोग करता-सा जान पड़ता है। यथा -

"एक बे-

मालूम

धूम के आस-

---

[21] सप्तक काव्य, पृ. 87

[22] नया साहित्य-नया प्रश्न, पृ. 9

[23] अज्ञेयः लिखि कागद कोरे, पृ. 81

पास की

आशा

त-

माशा

तोले दो तोले

इसे कौन-सा

शब्द बोले

उठाकर जो-

खम

बड़े बोल का

कम या

ज्यादा।"[24]

इस कविता में "रूप" और शैली का प्रयोग बेजोड़ हुआ है। मूलतः मिश्रजी ने अपने संपूर्ण रचनाओं में अपनी अपनी शैली का प्रयोग किया है। अनुकरण या अनुसरण से वे मूलतः दूर रहे हैं। मुक्तिबोध ने मिश्रजी की शैली के प्रसंग में ठीक कहा है कि -"जो कवि अपने भाव-विचारों के लिए स्वयं की शैली पा लेता है, वह सिद्ध कवि है। ऐसे ही कवियों में भवानी प्रसाद मिश्र भी हैं।"[25]

सप्तक में प्रयोगशील नये कवियों को प्रस्तुत करते हुए अज्ञेयजी ने लिखा था कि -"आज का कवि अपनी उलझी हुई संवेदनाओं को जिनके मूल में अनेक प्रकार की यौन-वर्जनाएँ रहा करती है, प्रकाशित करने के लिए अधूरे वाक्याँशों सीधे-टेढ़ी लकीरों, उल्टे-सीधे मुद्रणों के माध्यम से अपने काव्य में प्रेषणीयता लाने का जो उपक्रम कर रहा है, वही उसकी प्रयोगशीलता है।"[26] इसको और स्पष्ट करते हुए उनहोंने लिखा है -" प्रयोग सभी काल के कवियों ने किये हैं, यद्यपि किसी एक काल में किसी एक दिशा में प्रयोग करने की प्रवृत्ति होना स्वाभाविक ही है। किंतु कवि क्रमशः अनुभव करता गया है कि जिन क्षेत्रों का

[24] मूस की आगः पृ. 11
[25] सं. नंदकिशोर आचार्यः मन एक मैली कमीज है (मुख पृष्ठ पर)
[26] अज्ञेयः आत्मनेयपद, पृ

अन्वेषण करना चाहिए जिन्हें अभी नहीं छुआ गया है या जिनको अज्ञेय मान लिया गया है। भाषा के अपर्याप्त पाकर विराम-संकेतों से अंकों और सीधी तिरछी लकीरों से छोटे-बड़े टाइपों से सीधे या उल्टे अक्षरों से, लोग और स्थानों के नामों से, अधूरे वाक्यों से, सभी प्रकार के इतर साधनों से कवि उद्योग करने लगा कि अपनी उलझी हुई संवेदना की दृष्टि को पाठकों तक अक्षुण्ण पहुँचा सकें।"[27] प्रयोग के नाम पर कवियों ने अपनी उलझी हुई संवेदनाओं को ऐसी अटपटी, अधूरी भाषा में मनमाने प्रतीकों, और बिंबों के रूप में प्रकट किया कि प्रयोग के लिए प्रयोग करना ही उनका लक्ष्य बन गया। किंतु भवानी प्रसाद मिश्र इस परिवेश से अछूते नहीं रहे, और उसमें डूब भी नहीं गये। अप्रैल सन् 1972 में एन.आर.ई.सी स्नातकोत्तर कॉलेज, खुराना (मेरठ विश्वविद्यालय) में अपने वक्तव्य में स्वीकार किया था -"यह कठिनाई तब और बढ़ जाती है, जब किसी कवि पर यह उत्तरदायित्व डाल दिया जाय। मैं वर्षों तक कविता लिखता रहा। बहुत बाद में पता चला कि मैं प्रयोगवादी कवि हूँ। मैं कैसे कहता कि मैं प्रयोगवादी कवि नहीं हूँ। शब्द नया था, फिर मैंने अनेक प्रयोग भी किये। पर विश्वास रखिए मैं मात्र कविता लिखता हूँ। बहुत से कवि आजकल वाद पहले लिखते हैं, कविता बाद में।"[28] प्रयोगवादी कवियों में भवानी प्रसाद मिश्र की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि जहाँ आगे के प्रयोगवादी कवियों ने अधिकांश भाषा-शैली के प्रयोग तक ही अपने को सीमित रखा और विषय-भाव पक्ष की अवहेलना की, वहाँ मिश्रजी का प्रयोग-क्षेत्र बहुत विस्तृत है। भाव, भाषा, विषय, छंद, गीत, संगीत आदि सभी क्षेत्रों में मिश्रजी ने सुंदर प्रयोग किये हैं और कहीं भी भाव या विषय की उपेक्षा नहीं की। "फर्क" नामक कविता -

"मेरा और तुम्हारा
सारा फर्क
इतने में हैं
कि तुम लिखते हो
मैं बोलता हूं
और कितना फर्क हो जाता है इससे

---

[27] शक्तिपुंज-निराला, पृ.213
[28] भवानी प्रसाद के आयामः पृ. 145

तुम ढाकते हो मैं खोलता हूँ।"[29]

इस छोटी कविता का भाव तथा भाषा का प्रयोग बोलचाल के रूप में हुआ है। शब्द लगभग आम आदमी के हैं किंतु भाव गंभीर हो उठा है। "और कितना फर्क हो जाता है इससे" पंक्ति के चलते भाव विस्पोट करके श्रोता को सोचने पर विवश करता है और "लक्षणा" के द्वारा दुगले आदमी का प्रतीक सामने आता है। इसी तरह "एक और आसमान" कविता देखी जा सकती है -

"मछली
उछली
उजली चांदनी ने
उस पर हाथ फेरा
चांदनी से भी
उजले पानी का
पानी पर
एक घेरा बन गया
मन गया मानों
नीचे धरती पर भी एक आसमान।"[30]

5.2.3.1. वर्तुलाकार लय

भवानी प्रसाद मिश्र कई बार एक पद या अर्थाली की आवृत्ति से एक किस्म की वर्तुलाकार लय निर्मित करते हैं जो पहले अंदर की ओर फैलती आवृत बनाती है और बाद में अपने केंद्र की ओर लौटती हुई आवृत का रूप लेती है। मिश्रजी की "जाहिल मेरे बाने" शीर्षक कविता सम्पूर्णता के साथ उदाहृत्त करती है। यथा -

"मैं असभ्य हूँ क्योंकि खुले नंगे पावों चलता हूँ
मैं असभ्य हूँ क्योंकि धूल की गोदी में पलता हूँ
मैं असभ्य हूँ क्योंकि चीर कर धरती धान उगाता हूँ
मैं असभ्य हूँ क्योंकि ढ़ोल पर बहुत जोर से गाता हूँ

[29] भवानी प्रसाद के आयामः पृ. 10
[30] भवानी प्रसाद के आयामः पृ. 66(हद न मन)

आप सभ्य हैं क्योंकि हवा में उड़ जाते हैं ऊपर

आप सभ्य हैं क्योंकि आग बरसा देते हैं भू पर

आप सभ्य हैं क्योंकि धान से भरी आपकी कोठरी

आप सभ्य हैं क्योंकि जोर से पढ़ पाते हैं पोथी

....

धोती-कुरता बहुत जोर से लिपटाये हूँ यानें "[31]

इस कविता का रूप केन्द्रगामी एवं केन्द्राभिगामी रचनात्मक शिल्पों को मिलाकर संभव हो सका है। कवि पहले एवं दूसरे कड़वे के बीच, "असभ्य हूँ" की आवृत्ति से एक स्वाभाविक अन्तर्बन्ध पैदा किया है जिसे हम इसके रूप बंध का केंद्रीय बिंदु या तो अदृश्य होता है या नदारत। उससे परत-दर-परत कई परते हो सकती हैं। उसमें आवृत अंदर से बाहर की ओर फैलते या बाहर से भीतर की ओर या बाहर की तमाम चीजों को उस बिन्दु पर खड़े समेटनेवाली स्थिति वहाँ तकरीबन बनाई हैं। "मैं असभ्य हूँ" की आवृत्ति उस छ्दम सभ्यता पर "यंग्य" करती है जो हवाओं पर बाते करते हैं। "आप सभ्य हैं" जैसी मामूली मुहावरा भी मान लें तो वह साधारण कवि-कौशल नहीं है। वास्तविकता के मर्म की यह आंतरिक पहचान कोई नैतिक दृष्टि नहीं, अतएव एक मूर्तिमता यह है कि तथाकथित बिम्बवादी मूर्तिमता से कितनी अलग है।

"जैसा दिखता है" कविता में अरूप को व्याख्यायित करने का प्रयत्न किया है। यथा जैसा, वैसा, कैसा, कैसी जैसे शब्दों के प्रयोग होने से एक प्रकार की लय उत्पन्न हुई है। जिससे रहस्यात्मक बिम्ब का बोध होता है। यथा -

"आसमान जैसा दिखता है

वैसा नहीं है

और न धरती

जैसी दिखती है वैसी है

ठीक नहीं कह सकता कोई

---

[31] सं.विजबहादूरसिंह:आज के हिन्दी कवि-भवानी प्रसाद मिश्र, पृ.26-27

वह कैसा है यह कैसी है।"[32]

बीसवीं सदी के उत्तरार्ध चरण में हिन्दी काव्य-जगत के अग्रगामी परिवेश में सक्रिय भूमिका अदा करनेवाले प्रायः तमाम प्रबुद्ध काव्य-चिंतक इस बात पर एकमत हो चुके हैं कि कविता अपनी समूची निर्मित की हैसियत में एक सक्षम सोद्देयेश्य भाषा की अविर्भूति होती है जिसमें वस्तु और रूप एकमेकता की अनिवार्यता होती है। बेशर्त इस एकमेकता से बाहर वस्तु और रूप को तलाशना, वस्तुतः कविता की अविभाज्यता पर हमला करना होगा और इससे काव्य का प्रामाणिक मूल्यांकन प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। आज वस्तुस्थिति यह है कि कविता की अविभाज्यता को नकार कर उसकी वस्तु और उसके रूप आदि के अलग-अलग विश्लेषण के नाम पर कुछ तथ्य जोड़ते हुए अंत में एक निर्णयात्मक टिप्पणी से कविता की जय-जयकार अथवा अनेक बार उसकी संपूर्ण रचनात्मक क्षमता को ध्वस्त कर देनेवाला छद्म द्वन्द्ववाद समकालीन कविता के मूल्यांकन के प्रसंग में वैज्ञानिक द्वन्द्ववाद के द्वारा लगभग विस्थापित किया जा चुका है। दूसरे शब्दों में प्रगतिशील चेतना संपन्न समकालीन कविता के मूल्यांकन के प्रसंग में आज "वस्तु-रूप" से संबंधित उन तालिकाबद्ध सिद्धांतों की कोई कद्र नहीं है जिसका आधार द्विखंडात्मकता की अवधारणा है। समकालीन हिंदी कविता की मुख्यधारा प्रगतिशील, जनपक्षधर एवं मानवीय है, जिसके रचनात्मक प्रवाह में सारी अप्रासंगिक प्रविधियाँ अपने-अपने रूप-विवेचन के प्रतिमानों के साथ सृजनात्मक ग्रहणशीलता के बाहर हो चुकी है। सच तो यह है कि आधुनिक कवियों द्वारा रचित अधिकांश कविताएँ आरंभ से ही आचार्यों और प्रवर्तकों के विचार-संप्रदायों की वाहिका नहीं रही है और आज तो वे लक्षणकारों द्वारा सुरक्षित निकायों के जंगल से बिलकुल बाहर आकर सीधे-सीधे जनता के गत्वर जीवन से जुड़ने लगी है। भवानी प्रसाद मिश्र प्रगतिशील एवं मानवीय यथार्थवादी काव्यधारा के ऐसे ही एक कवि हैं जिनकी रचनाशीलता जीवन्त मानवीयता के गत्वर जन-साहचर्य में सक्रिय रहे।

[32] सं.नंद किशोर आचार्यः मन एक मैली कमीज है, पृ. 47

5.2.3.2 वस्तु-रूप संबंधों का अन्यथाकरण :

भवानी प्रसाद मिश्र अपने समय के सामाजिक यथार्थ एवं उसके अंतर्विरोधों को गहराई से परखकर उसे रचनात्मक अभिव्यक्ति प्रदान करने वाले कवि हैं। किंतु अनेक बार जब वे सामाजिक यथार्थ को काव्यात्मक यथार्थ में रूपांतरित किये बिना उसे सीधे-सपाट ढंग से व्यक्त करने लग जाते हैं तो उनकी ऐसी कविताएँ काव्यात्मक संघटन की दृष्टि से विश्रृंखलित होकर अपनी रचनात्मक उर्जा खोते नज़र आती है। विभिन्न जनांदोलनों से जुड़ता जहाँ भवानी प्रसाद मिश्र कवि के लिए बहुत हद तक स्फूर्तिदायक एवं फलप्रद रहा है वहीं एक हद तक इससे उनकी अनेकानेक कविताओं का कलात्मक विन्यास भी प्रभावित हुआ है। यह गड़बड़ी तब और अधिक होती है जब भवानी प्रसाद मिश्र विभिन्न राजनेताओं अथवा विभिन्न छोटी-बड़ी समसामयिक घटनाओं को विषय-वस्तु बनाकर काव्य रचना करने का लोभ संवरण नहीं कर पाते। इस क्रम में कई बार उनका अत्यन्त संवेदनशील मन भी कविताओं के रचनात्मक स्खलन का कारण बनता है, विशेषतः तब जबकि वे किसी घटना अथवा व्यक्ति के अंतर्विरोधों को द्वन्द्वात्मक तरीके से समझे बिना अपने अनुभूत विचारद्रव्य को सही-सही काव्यात्मक परिणति तक पहुँचाने के बजाय पहली पंक्ति से ही लगता है वे किसी से बात कर रहे हैं, तत्पश्चात जैसे-तैसे अभिव्यक्ति देने लगते हैं। उदाहरण के लिए-15 अगस्त, सन् 1947 को लिखी गई "पत्र साम्यवादी मिश्र को" से-

"आओ जरूरत है हमें आज एके की
कम्युनिष्ट, सोशलिस्ट, हिंदू-सिख, मुसलमान,
सब की जरूरत है माता को अपनी।
... ...
गांधी बनें कम्युनिष्ट
कम्युनिष्ट गांधी बनें।[33]

गांधीवाद और साम्यवाद के बीच जो विरोध है, उस पर कवि की प्रतिक्रिया सराहनीय है। स्वराज्य से आठ-दस साल पहले एक विचार तरंग उठी थी कि गांधीवाद

[33] गांधी पंचशती, पृ.

और साम्यवाद के बीच कोई बड़ा भेद नहीं है। श्री किशोरीलाल मशरूवाला ने कहा था कि-"साम्यवाद अगर हिंसा को छोड़ दें, तो वह गांधीवाद से अभिन्न हो जाएगा।"[34] लेकिन कवि की यह आशा पूरी नहीं हुई। गांधी जी स्वर्गीय हो गए ओर गांधीवाद तथा साम्यवाद के बीच की दरारें बढ़ती गईं। 15 अगस्त, सन् 1949 को कवि ने साम्यवादी मित्र को संबोधित किया। यहाँ कविता कम लगती है किसी को बोलचाल में समझा रहे हैं। यथा-

"इसलिए साध्य का अच्छा होना ठीक किंतु,
साधन का होना शुद्ध ऐन आवश्यक है।
तुम इसे मूर्खता कहते हो कुछ इस ढब से,
मुझको पूरे सिद्धांत तुम्हारे पर शक है।"[35]

भवानी प्रसाद मिश्र के काव्य में ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं जहाँ कवि ने निहायत तात्कालिक घटनाओं एवं छोटे-मोटे राजनेताओं को रचना की विषयवस्तु के रूप में स्वीकारा है। स्पष्ट कहें तो कवित्व के अभाव के कारण ऐसी रचनाओं की एकमात्र नियति है अकाल कवलित हो जाना। जहाँ तक इन कविताओं में वस्तु और रूप के परस्पर अंतःसंबंध का प्रश्न है मूलतः उनकी कविताएँ अन्यथाकृत वस्तु-रूप का ही उदाहरण हैं। उन्हीं के शब्दों में-"शैली (रूप) कविता की एक प्रधान बात तो होती है, मगर आखिरकार वह किसी भीतरी चीज़ का बाहरी रूप है, सर्वाधिक प्रधान बात तो वह नहीं ही है।"[36] विदेशी आक्रमण के समय दो-चार लाख भारतवासी अहिंसक प्रतिरोध करते हुए मन जायें तो युद्ध का सिलसिला खत्म हो जाएगा। युद्ध को विषयवस्तु बनाकर कवि ने जो कुछ लिखा है वह कविता कम नारेबाजी अधिक है। इस रचना के गुजरते ऐसा लगता है मानो कवि काव्य रचना के बहाने नारेबाजी कर रहा है। यथा-

"गांधी के देश के बेटों,
यह मौका है, हिंसा को नंगा करो।
मेरी समझ में तुम मारो मत, मरो।
यह मौका है,

---

[34] भवानी प्रसाद मिश्र के आयाम-पृ.77
[35] भवानी प्रसाद मिश्र के आयाम-पृ.77
[36] बुनी हुई रस्सी-(अपनी ओर से)-पृ.1

अपने त्याग से, बलिदान से, वीरता से

कोरे मारनेवालों को हिला दो।

हमेशा के लिए हिंसा को खाक में मिला दो।"[37]

भवानी प्रसाद मिश्र ने अस्तित्ववादियों को नहीं बख्शा। हिंदी कविता में एक लंबा दौर आया, पाँचवें, छठे और सातवें दशक में। उस समय का तरुण कवि भी एक अजीब निराशा में फँस गया। असल में यह सब काफी हद तक इन रचनाकारों के अंतर्राष्ट्रीय चिंतन और साहित्य से विशेषकर अस्तित्ववादियों से, बौद्धिक संपर्क का परिणाम था। काफ्का, कामू, सार्त्र, इलियट, एजरा पाउंड आदि सामने थे। प्रतीकवाद, बिंबवाद की भी गूँज थी। वात्सायन स्वयं इस तरह के एक दौर से गुज़रे थे, पर वे बहुत चतुर थे और उनके चिंतन की अपनी आधारभूमि अधिक दृढ़ थी। उन्होंने यह सब एक स्वतंत्र दार्शनिक मुद्रा के साथ पेश किया। "इत्यालम" के मुख पृष्ठ पर बॉदलेयर की कविता "इकोरस की कविता" की कुछ पंक्तियाँ हैं, जिनमें एक है-किंतु मैं-मेरी भुजाएँ टूट गई हैं आदि। भवानी प्रसाद मिश्र इससे अलग थे और दुखी भी थे। बहुत कम लोग जानते हैं कि भवानी प्रसाद मिश्र ने कई कविताएँ लिखीं, अज्ञेय को और उनके साथ या पीछे चलती हुई नयी पीढ़ी के उन रचनाकारों को संबोधित करते हुए, जो निराश थे या निराशा की मुद्रा में बैठे थे और अकेले, अर्थहीन या शून्य होने की पीड़ा से गुजर रहे थे। भवानी प्रसाद मिश्र ने "कोई कहे" कविता की शुरुआत ही इस एकांत, शून्य विषय-वस्तु से करते हैं। यथा-

"कोई कहे

ना, तुम अकेले नहीं हो

मैं भी हूँ

वह भी है

बहुत-से हैं हम

अकेले-अकेले

एक-एक

छिन्न-भिन्न

---

[37] भवानी प्रसाद मिश्र के आयाम-पृ.76

नहीं हैं हम.....।"[38]

अन्य कविता "अदेय का सपना", "चकित है दुःख" में संकलित। इस में वात्स्यायन की कविता "हरी घांस पर क्षण भर" का संदर्भ-संकेत तुरंत पहचान में आ जाता है। इससे पता लगता है कि यह कवि अपने समकालीनों के रचनात्मक रुझानों से बेखबर अनासक्त नहीं था। इसी अनासक्त को विषय-वस्तु बनाकर कविता रूपायित होती है तो उसमें रूप निखर उठता है। प्रश्नोत्तर नाटकीय शैली में कवि कहता है-

"किसने कहा तुमसे
कि तुम सबसे अलग हो!
सब जैसे देते हैं अपना सब कुछ
आसपास को
वैसे दोगे तुम इस हरी घास को
जिस पर तुम मन से बैठे भी नहीं हो।
... ...
उठो इस एकांत से
दामन छुड़ाओ
इस महज शांति से।"[39]

यह कविता कवि की अंतरात्मा की आवाज़ को उजागर करती है। सी.एल.प्रभात ने ठीक ही कहा है कि-"वह एक आदर्शवादी स्वप्नशील व्यक्ति था, पर सपनों में उसने कभी शरण नहीं ली। आध्यात्मिक था, पर आध्यात्मिकता में उसने एक क्षण के लिए भी पलायन नहीं किया।"[40]

भवानी प्रसाद मिश्र की ऐसी कविताओं में "वस्तु" के "रूप" में तत्वांतरण की बात तो दूर, इनमें काव्य के विषय का काव्य-वस्तु में रूपांतरण तक नहीं हुआ है जो किसी सफल रचना के लिए अनिवार्य है। वस्तुतः "विषय" के "वस्तु" में रूपांतरण की प्रक्रिया का संबंध रचना-प्रक्रिया से है, जिसके गुज़रे बिना केवल विषय को ही लेकर लिखित

---

[38] भवानी प्रसाद मिश्र के आयाम-पृ.203
[39] भवानी प्रसाद मिश्र के आयाम-पृ.203
[40] भवानी प्रसाद मिश्र के आयाम-पृ.204

कविताओं में स्वाभाविकता की जगह अस्वाभाविकता की अधिक संभावना रहती है। अतः हम कह सकते हैं कि जहाँ कहीं भी भवानी प्रसाद मिश्र ने रचनात्मक संयम से काम नहीं लिया है वहाँ रचनाप्रक्रिया बाधित हुई है। भवानी प्रसाद मिश्र काव्य के संदर्भ में मुक्तिबोध ने ठीक ही कहा है कि-"जो कवि अपने भाव-विचारों के लिए स्वयं की शैली पा लेता है, वह सिद्ध कवि है। ऐसे ही कवियों में भवानी प्रसाद मिश्र हैं।"[41]

किंतु पूरा का पूरा भवानी प्रसाद मिश्र-काव्य अन्यथाकृत वस्तु-रूप रचना का ही नमूना है। मिश्र जी के यहाँ ऐसी कविताएँ भी अनगिनत हैं जहाँ रचनाकार का काव्य-कौशल कविता के बड़े-बड़े महारथियों के लिए स्पर्धा का विषय बन सकता है। इस काव्य-कौशल के अलावा मिश्र जी में अपने समय के यथार्थ को सही-सही परखने की जो अद्‌भुत दृष्टि है उसके कारण ही आज हिंदी के लगभग सभी महत्वपूर्ण कवियों में प्रतिनिधि कवि के रूप में उल्लेखनीय हैं।

5.2.3.3 स्वगत में मुक्त संवाद का फार्म :

भवानी प्रसाद मिश्र-काव्य के रूप विधान पर विचार करें तो मिश्र जी ने इतने छंद, इतने ढंग, इतनी शैलियाँ और रूपविधानों का प्रयोग किया है कि उनकी केंद्रीय प्रवृत्ति को तलाशना बहुत उलझन भरा काम है। लेकिन उनके शिल्प की कुछ खूबियों में ताक-झांक करना हमारे लिए मूल्यवान हो सकता है। उनकी अभिव्यक्ति का ढंग तिर्कस भी है और कहीं बेहद ठेठ और सीधी। रूप के स्तर पर उनमें किसी प्रकार की बाधा नहीं है। राष्ट्रीय आंदोलनों ने जहाँ उनके अस्तित्व को अधिक सामाजिक सक्रियता दी है वहीं उनमें तिक्तता और अकेलेपन के तीखे अहसास भी हैं। जैनेंद्र के शब्दों में-"हिंदी संसार में कवि के रूप में उनका अलग स्थान है और रहेगा। वे किसी खाने में नहीं रखे जा सकते। वे आदर्शनिष्ठ थे, ऊर्ध्वगामी थे, कवि उनका सहज स्वरूप था। कविता उन्हें बनानी नहीं हुई, वह स्वतः निःसृत होती गई। इसी से बोलचाल की भाषा उनकी कविता के लिए अनुपयुक्त नहीं रह गई। कविता असल में वे करते नहीं थे, जीते थे। उनकी कविताओं में विषाद, पीड़ा है, निराशा नहीं।"[42] जैनेंद्र के उद्धरण से स्पष्ट होता है कि मिश्र जी कविता करते नहीं थे कविता बनती थी। इस काव्य कौशल एवं सामाजिक सक्रियता और अकेलेपन के तीक्ष्ण

---

[41] भवानी प्रसाद मिश्र के आयाम-पृ.82

[42] भवानी प्रसाद मिश्र के आयाम-पृ.79

अहसास के कारण जो द्वैत उत्पन्न हुआ है उससे भवानी प्रसाद मिश्र की रचना का एक प्रमुख रूपविधान विकसित हुआ है और वह है-"स्वगत के फार्म में मुक्त बातचीत का फार्म।" यह एक ऐसी मुक्त बातचीत है जो स्वगत के ढंग में है। दूसरे शब्दों में कहें तो यह ऐसा स्वगत है जो दूसरों के साथ बातचीत की तरह है। इस शिल्प का प्रयोग ज्यादातर उनकी गद्य कविताओं में हुआ है जिनमें गद्य की लय का उठान काव्यलय तक होता है। ओर इसके विपरीत कई बार वहाँ काव्य लय की परिणति ठेठ गद्य के रूप में भी दृष्टिगत होती है। इस फार्म में भवानी प्रसाद मिश्र ने अपनी विवरण-कला और कविता-पाठ का खास किस्म से उपयोग किया है, जो विशेष रूप से उत्तर-भारत के लोगों के बातूनीपन की तरह है। इसके अंतर्गत गप्प मारने, हँसने-हँसाने, यहाँ तक कि "शरारत" तक का वे बेहद उपयोग करते हैं। इस रूपविधान के खुलेपन का भरपूर उपयोग उन्होंने किया है और भरपूर स्वतंत्रता भी ली है।

यदि हम भवानी प्रसाद मिश्र के "स्वगत में मुक्त संवाद" जैसे फार्म पर विचारें तो वहाँ हमें इसको उदाहृत करने वाली ऐसी अनेकानेक कविताएँ मिलती हैं जिनका उपयोग कवि ने अक्सर अत्यन्त आत्मिक स्तर पर किया है। "शब्दों के तल्प पर" कविता में जहाँ सिर्फ कवि नहीं आजादी के पूर्वापर तमाम दृश्य, लोक और नागर बिंब, वे चिताएँ जहाँ हमारे समय की जलती हुई शलाकाएँ हैं और वह संयत हौसला और अविचल धैर्य भी, जिसके बिना कोई महाराग शायद गाया जा सके। यही वह पूर्व कथन है एक पाठक का, जिसे कविता ने अपने ही इशारे में लिखवा लिया है। गौर करें-

"अबोध में अपने डाल ली थी,
यहाँ मैंने झोपड़ी
मगर अब रहते-रहते इसके किनारे
जागने लगी है इच्छा
कि बोध का स्पर्श हो।
उत्कर्ष दे सारी ध्वनियों के अर्थों का
मुझे मेरे शब्दों की रेवा।"[43]

[43] आज के प्रतिनिधि कविः भवानी प्रसाद मिश्रः विजयबहादुर सिंह-पृ.83

बुढ़ापे और बीमारियों ने कुछ कम छल नहीं किया था उनके साथ। पर वे भी डटे रहे बिना परास्त हुए। वे हमेशा अत्याचारी की आँख से आँख मिलाकर जीते रहे। यथा-

"थक जो गयी है मेरी देह

टूट जो गया है मेरा शरीर

अधीर हैं वे इसलिए कि क्या जाने

क्या हो जाए दूसरे ही पल में।"

सचमुच वे अपराजित हृदय के कवि थे। न अत्याचारी की निगाहें उन्हें त्रस्त और पराभूत कर पाई, न वह शरीर जो बार-बार अपने कारणों से लडखडाकर गिरने लगता था, उनका मनोबल तोड़ पाया। वे ठहरकर विश्राम की एक साँस लेते और फिर चल पड़ते। एक अनथक यात्री की तरह कभी न खत्म होनेवाले सफर पर। अपने अंतिम वर्ष तक वे इसी सफर में थे जबकि वे सूरज से फूटे हुए प्रकाश की तरह चलते ही चले जाते थे।

भवानी प्रसाद मिश्र-काव्य के रूपविधान में "स्वगत में मुक्त संवाद" के फार्म की जो बात पहले की जा चुकी है, उसका एक बेहतर उदाहरण निम्न पंक्तियों में देख सकते हैं। आपतकाल के दरम्यान रचित इस लंबी कविता में शासन का विरोध एवं प्रतिक्रिया का भाव है तो कहीं गहन मानवीयता एवं जनहित उत्थान के लिए उल्लास व्यक्त हुआ है। आपातस्थिति ने इस आदर्श को ही उलट दिया है। शासन व्यवस्था इसलिए समाजहित के बजाय व्यक्तिहित का ही अधिक चिंतन करती नज़र आती है। यथा-

"कौन है इस मुल्क का मालिक

और कैसा मालिक है वह

कौन है इस खल्क का खालिक

और कैसा खालिक है वह

क्या यही उसकी रजा है

कि एक ही व्यक्ति देश है

एक ही व्यक्ति प्रजा है

यह कैसा मजा है।"[44]

वस्तुतः कवि इस रचना में "स्वगत में मुक्त संवाद" के फार्म का प्रयोग आत्मिक स्तर पर किया है। इस फार्म में रचित उनकी दूसरी कविताओं की ही तरह यहाँ भी आत्मकथ्य के अंश एकाधिक बार आए हैं। इसके अलावा एक दूसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि भवानी प्रसाद मिश्र जब उपरकथित फार्म का प्रयोग करते हैं तब कई बार गद्य लय की उठान काव्य लय तक होता है, तो इसके साथ ही काव्य लय ठेठ गद्य लय में परिणत हो जाती है। उदाहरण के लिए उनकी "पक्के घर पक्के आदमी" कविता में आवेगपूर्ण वक्तव्य-प्रवाह के कारण स्वगत में मुक्त संवाद का रूप लिया। बलदेव वंशी के अनुसार- "युवा पीढ़ी के कवि अपने पाठकों को चमत्कृत करना चाहते हैं, किंतु चमत्कृत करने के उनके साधन अलंकारों में नये प्रकार के चित्रालंकार, वर्जित शब्दावली का प्रयोग और आक्रामक भावनाएँ आदि हैं। इसलिए उनमें उपमा-मूलक अलंकारों से भिन्न अलंकार खोजना व्यर्थ का श्रम है। उल्लेख एक ऐसा अलंकार है जो आधुनिक हिंदी कविता में प्रारंभ से ही विद्यमान रहा है। संभवतः इसलिए कि उसमें चमत्कार की अपेक्षा आवेगपूर्ण-प्रवाह का सहज अंग होने की क्षमता अधिक है। इसलिए वह युवा पीढ़ी की कविता में भी मिल जाता है।"[45] कविता की पंक्तियाँ दृष्टिगत हैं-

"एक पक्का घर
दूसरे पक्के घर से लगा हुआ
या एक पक्का घर
दूसरे पक्के घर से जरा हट कर
... ...
एक पक्के घर में
दो-चार पक्के आदमी
... ...
सब आत्मनिर्भर हैं
लेना-देना आपस में

[44] श्रीकाल संध्य-पृ.109
[45] उपनगर में वापसीःबलदेव वंशी-पृ.93

न चीज़ों का है न विचारों का

वे चीज़ें लेते हैं

बाज़ारों से

विचार लेते हैं अखबारों से।"[46] (खुशबू के शिलालेख)

यहाँ ध्यातव्य है कि इस कविता की रचनात्मक प्रकृति एवं उदयोश्य दोनों ही "पक्का घर पक्के आदमी" जैसी विवरणात्मक एवं भावोच्छ्वासजन्य कविताओं से नितांत भिन्न है। रचनात्मक प्रकृति एवं उद्देश्य की भिन्नता सर्वप्रथम रचनाकार द्वारा विषय चयन एवं बाद में इस "विषय" के "वस्तु" में रूपांतरण की प्रक्रिया को प्रभावित करती है। आगे चलकर इस कविता का रूप विधान गद्य-लय को छोड़कर काव्य के समीप आ जाता है। यथा-

"तरल प्रकृति तक को

बना डाला है उन्होंने पक्का

गरमी ठंड बरसात

आये चाहे जायें।"[47]

वस्तुतः भवानी प्रसाद मिश्र यहाँ जो कहना चाहते हैं उसके लिए काव्य-लय को अपनाना उनकी बाध्यता है अन्यथा वस्तु की प्रकृति के अनुकूल "रूप" नहीं अपनाने से रचना का यह विशेष प्रभाव पाठक तक संप्रेषित नहीं हो सकता जो कवि का अभिप्रेत है। कविता के अंतिम चरण में हमें इस कविता के वास्तविक विषय-वस्तु जो आधुनिक मनुष्य बाजारू, यंत्र तथा कृत्रिमता का आदि हुआ जा रहा है ध्यातव्य होता है। यथा-

"पक्के आदमी पक्के घर

प्रकृति तक पक्की बनाकर छोड़ दी।"[48]

इस छंद की शुरुआत है "एक पक्का घर" दूसरी पंक्ति आती है "दूसरे पक्के घर से लगा हुआ" लेकिन अंत में "पक्के आदमी पक्के घर" का संयोजन करके विषय-वस्तु

---

[46] भवानी प्रसाद मिश्र के आयाम-पृ.64

[47] भवानी प्रसाद मिश्र के आयाम-पृ.65

[48] भवानी प्रसाद मिश्र के आयाम-पृ.66

का स्पष्ट विवेचन अंतिम पंक्ति "प्रकृति तक पक्की बनाकर छोड़ दी" में तत्वांतरित किया है।

भवानी प्रसाद मिश्र "गद्यात्मक कविताएँ" भी लिखे हैं। "गीत फरोश" में संकलित "नर्मदा के चित्र" तथा "चकित है दुःख में", "इस परिस्थिति के शब्द दो" जैसी कविताएँ देखी जा सकती हैं। संबोधनात्मक शैली में यह गद्य-कविता का रूप साकार हो उठा है। यथा-

"भाई, इन तमाम लोगों के लिए भी लिखो, जो लगभग तुम्हारे लिए मन गये हैं
लगभग इसलिए कहता हूँ कि तुम बहुत बुद्धिमान हो
और इतनी प्रशंसा तुम्हें उनकी स्वीकार नहीं होगी
कि वे तुम्हारे लिए मर गये हैं
तुम कह सकते हो वे मरने का वेतन पात थे
तुम भी यही कह सकते हो,
क्यों मरे वे किसी दूसरे के लिए? ....मूर्ख थे वे
तुम्हारा कुछ ठीक नहीं है, अहसान तुम दिन भर में
जाने कितने लेते हो, मगर लेते इस तरह से हो
जैसे दे रहे कम्बख्त समाज को अपना कन-कन
अहसास किसी का यहाँ तक कि
अपने पैदा होने का तुम नहीं मानते
जिस बात से किसी अहसान की तरह
इशारा भी झाँक जाये उसे तुम बर्दाश्त नहीं करते
इसीलिए कहता हूँ वे लगभग तुम्हारे लिए मरे हैं
कुछ लिखो उनके बारे में
अगर इस सबब को न मानो तो एक दूसरा सबब देता हूँ।"[49]

---

[49] चकित है दुःख-पृ.89-92

5.3 नई कविता :

हिंदी में "नई कविता" का आरंभ सन् 1951 में "दूसरा सप्तक" के प्रकाशन के साथ माना जाता है। लेकिन नई कविता में जो कुछ भी नयापन है, वह उस समय की तात्कालिक उपज न होकर साहित्य की क्रमशः विकासमान प्रक्रिया का परिणाम है। इस शताब्दी के चौथे दशक के आरंभ तक छायावाद के भाव तत्व और रूप-आकार के प्रति एक प्रकार का असंतोष प्रकट होने लगा था। यह समझा जाने लगा कि छायावाद की वायवीय भाव-वस्तु और उसके अनुरूप अत्यन्त सूक्ष्म शिल्प आज के जीवन अभिव्यक्ति में सफल नहीं हो सकता। इसी कारण छायावाद के प्रति प्रतिक्रिया हुई। एक स्तर पर प्रगति और प्रयोग में कोई बड़ी विभाजना नहीं रह जाती। प्रगति और प्रयोग दोनों ही कल्पित कगार हैं, जिन्हें समग्र नई काव्यधारा तोड़ती हुई आगे बढ़ती है। डॉ.नामवर सिंह के शब्दों में-छायावादोत्तर काल की यह सारी सार्थक काव्य सर्जना उस नई कविता के इर्द-गिर्द हैं, जो इस काल की मुख्य काव्यधारा रही है। स्पष्ट ही यहाँ नयी कविता का आशय....समग्र नई काव्यधारा से है।"[50]

नई कविता की विषय-वस्तु में क्षण का महत्व, लघुमान की प्रतिष्ठा, पारंपरिक मूल्यों का नकार, संज्ञा, नैराश्य, कुण्ठा, संत्रास, हताश, टूटन, कटुता, विद्वेष-घृणा आदि नकारात्मक पक्षों के अतिरिक्त नए मूल्यों की स्थापना, जीवन और भविष्य के प्रति विश्वास, नए मूल्यों की तलाश, अनुभूति की सच्चाई, यथार्थ चित्रण, संघर्ष और विद्रोह की चेतना इत्यादि सकारात्मक विषय-वस्तु पक्ष भी हैं। नयी कविता की प्रवृत्तियों को रेखांकित करते हुए इंद्रनाथ मदान ने लिखा है- "नयी कविता में उन प्रतीकों, बिंबों और साधनों का प्रयोग किया गया है जो यथार्थ जीवन से उपजे हैं। नयी कविता का विश्वास उस मानव के प्रति है जो लघु होने के साथ अपने प्रति जागरूक है। नयी कविता के लघु परिवेश में उस छोटे-से-छोटे क्षण के प्रति आस्था है जिसे महत्वहीन समझकर अवहेलना की दृष्टि से देखा जाता है।"[51] नई कविता के बारे में जगदीश गुप्त का कहना है-नई कविता आकर्षण को ही नहीं विकर्षण को भी टटोलती है। व्यंग्य करना, चोट करना, झकझोर देना, ध्यान में डूबे हुए को जैसे टोक देना और कुछ सोचने पर मजबूर कर देना उसका

---

[50] कविता के नये प्रतिमान-पृ.67

[51] नयी कविताः पृ.44-45

स्वभाव है। वह रिझाती तो कम है सताती अधिक है। ....कभी-कभी वह जीवन के भयानक तथ्यों की ओर संकेत करके हमें सहमा देती है।"[52]

नयी कविता युगीन परिवेश और समसामयिक जीवन का यथार्थ के धरातल पर साक्षात्कार कराती है। उसमें विस्तृत जीवन का जटिलताओं का साक्षात्कार है। नयी कविता की एक विशेष प्रवृत्ति है-बौद्धिकता। यह बौद्धिक आग्रह अतिशय भावुकता और कल्पनाशीलता को संयमित ओर अनुशासित करता है तथा वस्तु स्थिति को विश्लेषित करता है। इसलिए उसमें यथार्थ चित्रण का आग्रह है, पूर्वाग्रह से मुक्ति की लालसा है, जीवन से सीधा संपर्क है। कहीं-कहीं अतिबौद्धिकता भी दिखाई देती है जिसे स्वस्थ लक्षण नहीं कहा जाता। नयी कविता आधुनिक बोध को लेकर चली है अतः समसामयिकता से उसका गहरा लगाव है। संशय आदि प्रवृत्तियाँ प्रत्यक्ष रूप से अभिव्यक्त हुई है। नयी कविता द्वन्द्व में और तनाव की स्थिति का मूल कारण है अनाचार, स्वार्थपरता और व्यक्तिवादी प्रवृत्ति जो व्यक्ति को भविष्यहीनता, आशाहीनता की संभावना से आक्रांत कर रही है। नयी कविता फ्रायड के प्रभाव से अवचेतन मन की कुंठाओं और वर्जनाओं को व्यक्त करती है। प्रेम और काम को प्रकृत रूप देकर यौन प्रतीकों द्वारा वासना या भोग मूलक दृष्टि को भी नए काव्य में स्थान मिला है। कहीं-कहीं वैयक्तिक अहंवादी अन्तर्मुखी दृष्टि भी परिलक्षित होती है। अस्तित्ववादी दर्शन ने कवि को क्षणवादी बना दिया है अतः वह "अभी और यहीं" की बात सोचता है। ईश्वर और धर्म में अनास्था नयी कविता का एक लक्षण है क्योंकि कवि के पास वैज्ञानिक दृष्टि है।

वस्तु और रूप सैद्धांतिक विवेचन में विवेचित किया गया है कि वस्तु के अनुसार रूप भी स्थानांतरित होता है। नयी कविता की भाषा गद्यात्मक है, सहज भाषा के समीप है फिर भी उसमें एक लय है और बिंबों तथा प्रतीकों की बहुलता के स्थान पर सपाट बयानी है। उसमें व्यवहृत पौराणिक प्रतीक नये संदर्भ लेकर आये हैं। आंचलित तत्वों के अनुरूप कई बोलियों के शब्दों का प्रयोग है। नयी कविता यथार्थवादी धरातल पर व्यंग्यात्मक हो उठी है। समाज का खोखलापन, व्यक्तिमन की रुग्णता, अंतर्बाह्य का सामंजस्य, शोषण और अनाचार का बोलबाला कवि को स्वभावतः व्यंग्यात्मक शैली की ओर ले जाती है। उसमें उग्रता और आक्रामकता भी दिखाई देती है। नया कवि हमारे चारों ओर व्यहृत होती हुई भाषा का प्रयोग करता है। इस तरह नयी कविता

---

[52] नयी कविताःस्वरूप और समस्याएँ-पृ.83

आधुनिक संवेदना और नए शिल्प को लेकर अपना यथार्थ रूपरंग प्रकट करती है। वह आम आदमी की कविता बनती जा रही है।

यह ध्यान में रखना चाहिए कि पहले तारसप्तक और दूसरे सप्तक में स्थिति तथा व्यक्ति का बहुत बड़ा भेद है। दूसरे सप्तकवालों को अच्छी परिस्थितियाँ मिली थीं। साथ ही, तब तक पहले सप्तक वाले भी काफी आगे बढ़ चुके थे। इसलिए जिन प्रश्नों को लेकर पहले सप्तकवाले आगे बढ़े उन प्रश्नों को लेकर दूसरे सप्तक वाले नहीं। पहले सप्तक वालों की रोमांस भावना की आयु बहुत अंशों में, छायावाद में ही बीत चुकी थी। वे अपनी छायावादी अवधि पार कर, उसके विरुद्ध प्रतिक्रिया करते हुए प्रयोगवादी थे। तो दूसरे सप्तक वाले अपनी नवीन रोमैंटिकम भावनाएँ लेकर प्रयोगवाद में आए। पहले सप्तक और दूसरे सप्तक में यह मौलिक भेद हैं। व्यक्ति के विकास की दृष्टि से पहला तारसप्तक अधिक मजबूत है, दूसरा सप्तक रोमैंटिक परिधान की दृष्टि से अधिक मनोरम। रौमैंटिक भावनाएँ जीवन की यथार्थता है। मनोवैज्ञानिक यथार्थवादी दृष्टि से वे अतएव प्रयोगवाद के लिए निषिद्ध नहीं ठहरतीं, बशर्ते कि उनकी ओर देखने की दृष्टि कुहरिल न हों। अतः मिश्र जी ने रोमैंटिक भावना का प्रयोग "सोना उसका और मेरा" कविता में यूँ करते हैं-

"इसक्की क्या शिकायत
सोना सूरज का था
उसने अपना सोना
बीन लिया
मगर नींद मेरी थी
उसने
क्यों छीन लिया
मेरा सोना।"[53]

प्रकृति पर सूरज के किरणें फैलने से सारा वातावरण सोने जैसा लग रहा है। किंतु कवि इसकी तुलना में अपना "सोना" से करते हैं तो यहां एक नये छंद का प्रयोग हुआ है। काव्यशास्त्रीय व्याख्या के अनुसार जहाँ पर शब्द की अनेक बार भिन्न अर्थों में आवृत्ति होती है, वहाँ "यमक"

---

[53] मन एक मैली कमीजःसं.नंदकिशोर आचार्य-पृ.114

रूप का नियोजन होता है। प्रस्तुत कविता में "सोना" सूरज के प्रकाश किरण से सुबह की लालिमा है और कवि का "सोना" की तुलना से सुंदर "यमक" का प्रयोग हुआ है।

भवानी प्रसाद मिश्र छायावाद के पतन बिंदु से अपनी प्रस्थान यात्रा शुरू करने के बावजूद छायावादी कवियों से अपने को अप्रभावित रख सके। ऐसा उन्होंने स्वीकार भी किया है। प्रकृति के संदर्भ में रोमांटिक दृष्टिकोण को तोड़नेवाले अंश तथा सत्व उनके काव्य में कूट-कूट कर भरे हैं। उदाहरणार्थ-"सतपुडा के जंगल" कविता सन् 1938 में लिखी गई थी, उसमें प्राकृतिक उपादानों की विषय-वस्तु के औपचारिकता पर जोर दिया गया है किंतु इस कविता में लय, तथा मुक्त-छंद का रूप निखर उठा है। इस में प्रकृति का सौंदर्य वर्णन तो हुआ पर उसे जीवन से जोड़ा गया है। लगातार नष्ट किए जाने के फलस्वरूप पर्यावरण संकट बढ़ता जा रहा है। मिश्रजी में सृष्टा और दृष्टा दोनों गुण हैं। जंगल उजड रहे हैं। उनका मन क्षुब्ध है। इसलिए उनका स्वर अक्सर व्यंग्यात्मक हो उठा है -

"ऋतुएँ अगर आती भी यहाँ
तो वे शोर में
अपने गीत
क्या खाकर गाती
इसलिए अच्छा ही है
कि प्रकृति यहाँ
नहीं बची
ऋतु और प्रकृति-हीनता में
पले यह शहर
काट रहे हैं
चीजों के बीच
अपनी शाम।"[54]

भवानी प्रसाद मिश्र ने "संप्रति" की भूमिका में लिखा है - मैं अपनी उदासी को भी दीप्ति दिये बिना नहीं रहता। उदासी आती स्वाभाविक है। मगर आसान है उसको रगडकर चमका लेना।

---

[54] भवानी प्रसाद आयामः पृ.267

निराशा गलत है। मैं अपने पास नहीं फटकने देता।.... मुझे लगता है कि जीवन मुझे अकेले का नहीं है। मैं हूँ सो इसलिए कि तमाम सब हैं। और जब मैं रहूँगा तब भी और तमाम सब रहेगा। इस तरह मैं भी रहूँगा ही रहूँगा।"[55] दरअसल भवानी प्रसाद मिश्र प्रकृति के साथ साहचर्य का अनुभव व्यक्त करनेवाली कविताएँ लिखी है। ये कविताएँ साधारण भाषा में लिखी जाने के बावजूद असाधारण प्रभाव उत्पन्न करने में सक्षम हैं। प्रकृति के प्रति ऐसा मानवीय भाव, बिम्ब, रूप एक साथ नई कविता और छायावादी कविताओं में भी दुर्लभ हैं। वह प्राकृतिक वातावरण से जितनी दूर जाता है, रूखेपन के पास उतना ही कसक जाता है। फलस्वरूप सहजता को भूलकर वह असहज हो उठता है। जब मानव इन परिस्थितियों को अपनी नियति मान लेता है, तो पिछली यादें भूल जाता है। आज स्थितियाँ बिल्कुल ऐसी हैं। माहौल अविश्वास का है। स्वर में आशा की जगह अवसाद है। इस अवसाद को अभिव्यक्त करने के लिए मिश्रजी ने जो रूप अपनाया है वह कविता कम, अभिव्यक्ति के लिए प्रयोग कर रहे हैं-

"नगाडे
नाच
और रात
कब से नहीं
सुने देखे
देखना-सुनना हो
तो कहाँ जायें
अब कहाँ हैं
जंगल में मंगल
बल्कि कहो
कहाँ है जंगल
कहाँ है मंगल।"[56]

"न जंगल न मंगल" कविता में प्रश्नोत्तरी लहजे में "नगाडे" शब्द से अस्सी प्रतिशत देहातियों का प्रतीक बनता है। "रात" में सरसराती हवा और प्रकृति का कंपन का बिम्ब उत्पन्न

---

[55] संप्रतिः पृ.4
[56] भवानी प्रसाद मिश्रः सं.विजयबहादूर सिंहः, पृ.126

होता है। कवि प्रश्न सायास लगता है "तो कहाँ जाये" तथा "जंगल में मंगल" से अनुप्रास हुआ है। अंत में प्रश्न करके धनघोर अंधकार की ओर संकेत करता है।

5.4 संरचनात्मक संश्लिष्टता :

काव्य संरचना पर विचार करते हुए अज्ञेय ने लंबी कविताओं की अपेक्षा छोटी कविताओं को अपने अनुकूल माना है। उनका विचार है कि भावना-प्रधान कविता छोटी ही हो सकती है, नहीं तो अपने भावों का पैराफ्रेज होने लगता है।"[57] इसके विपरीत मुक्तिबोध ने अपनी काव्य संरचना पर विचार करते हुए लिखा था कि "मैं छोटी कविता लिख नहीं पाता।" इसका कारण बताते हुए वे लिखते हैं-"यथार्थ के तत्व परस्पर गुंफित होते हैं, साथ ही पूरा यथार्थ गतिशील होता है। अभिव्यक्ति का विषय बनकर जो यथार्थ प्रस्तुत होता है, वह भी ऐसा ही गतिशील है और उसके तत्व परस्पर गुंफित है।"[58] मिश्रजी का छोटी कविताओं पर बल देना अकारण नहीं भवानी प्रसाद मिश्र कविताओं में भावना को प्रधान मानते हैं। यही कारण है कि वह यह कहते हैं कि भावना प्रधान कविताओं के लंबे होने से भावों का पेराफ्रेज होने लगता है।

कविताओं में भावना की अपेक्षा यथार्थ को अधिक महत्व देने के कारण ही मुक्तिबोध कहते हैं कि यथार्थ के तत्व परस्पर गुंफित होते हैं तथा पूरा यथार्थ गतिशील होता है, इसलिए उनके लिए छोटी कविता लिखना संभव नहीं होता। मुक्तिबोध का कहना भी विशेष अर्थ रखता है कि "कहीं भी खतम कविता नहीं होती/कि वह आवेग-त्वरित काल-यात्री है।" भवानी प्रसाद मिश्र भी "आवेग-त्वरित" की बात स्वीकारते हैं जब वह छोटी कविता में मुख्य बल भाव की संहिता और तीव्रता पर देते हैं। लेकिन मुक्तिबोध उसे "काल-यात्री" भी मानते हैं। काल यात्री से उनका तात्पर्य यथार्थ की गतिशीलता से है। इसलिए वह यथार्थ के तत्वों को परस्पर गुंफित मानने के साथ ही पूरे यथार्थ को गतिशील भी मानते हैं। इस प्रकार काव्य संरचना की दो नितांत भिन्न दृष्टियाँ आधुनिक कविता के दौर में विद्यमान रही है।

जब कवि की दृष्टि केवल किसी भाव-विशेष पर होती है तब वह केवल भाव की संहति और तीव्रता को काव्य की संरचना के दौरान सुरक्षित रखना चाहता है। इस प्रकार उसकी कविता

---

[57] आत्मनेपद-पृ.32

[58] मुक्तिबोध रचनावली:भाग चार-पृ.170

भावों के वृत्त में घूमती है। इसे डॉ.नामवरसिंह ने वर्तुलाकार और अनुचिंतनात्मक कविता कहा है तथा इसे प्रगीत की विशेषताएँ माना है।"[59]

डॉ.नामवर सिंह ने अमरीकी आलोचक आइवर विंटर्स के हवाले से कहा है कि-"छोटी कविता मूलतः प्रगीत कविता है, जबकि लंबी कविता नाटकीय कविता है। छोटी कविता के लिए किसी विषय-वस्तु का होना आवश्यक नहीं है, विषयवस्तु निहायत मामूली-सी कोई चीज हो सकती है, किंतु प्रगीत का कवि उस वस्तु का अनुकरण करने के लिए बाध्य नहीं है। प्रगीत कविता न अनुकरणात्मक है, न वर्णनात्मक और न कथात्मक। इसके मूल में अनुचिंतन या अनुभूति की प्रधानता है।" छोटी कविता और लंबी कविता का यह भेद महत्वपूर्ण है लेकिन उक्त मत की सीमा यह है कि इसमें कवि की यथार्थ के प्रति दृष्टि का विवेचन नहीं है जबकि भवानी प्रसाद मिश्र यथार्थ को ही काव्य-संरचना के केंद्र में रखते हैं। इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि छोटी कविताएँ अयथार्थ होती है या नाटकीय कविताएँ अनिवार्यतः लंबी होती है। डॉ.नामवरसिंह ने कई लंबी कविताओं के विश्लेषण द्वारा यह सिद्ध किया है कि लंबी कविताएँ अनिवार्यतः नाटकीय हो यह आवश्यक नहीं है।

भाषा एक सामाजिक संपदा होती है। प्रत्येक कवि अपनी प्रतिभा और सूझ की बुनियाद पर इस सामाजिक संपदा से अपनी व्यक्तिगत काव्य भाषा तैयार करता है। जनसाधारण की भाषा, रोजमर्रे की भाषा या आमबोलचाल की भाषा से ही अपनी अभिव्यक्ति की भाषा खोजने वाले कवि भवानी प्रसाद मिश्र हैं। छायावाद के भाषागत की अतिबौद्धिक भाषा-सौष्ठव से भी दूर रहे। इनकी भाषा में साधारणता, सहजता और सादगी का आग्रह है। सादे ढंग से कहने और बहने की असाधारणता उनकी भाषा की विशेषता है। वे बोलने और लिखने के बीच आचार्यत्व का बौद्धिक अंतराल खत्म करने के लिए दि उत्सुक दिखते हैं ताकि जिस तरह बोलते हैं उस तरह लिखने के बावजूद कवि के बड़े दिखने की "टेक" बनी रह सके। शब्द के समर्पण और विद्रोह दोनों का अनुभव है उन्हें। सन् 1953 अप्रिल में रचित "कवि" कविता "गीत फरोश" काव्य संग्रह की प्रथम कविता में बोलचाल की भाषा द्वारा रचित शब्द तथा भाषा में निहित बल का सहज ढंग से विवेचन करते हैं।

"पहले पहल,

शब्दों के महल,

---

[59] कविता के नये प्रतिमान-पृ.151

जब मैंने बनाये,

तो वे

मुझे बहुत भये।

....

नाराज़ अंगरेज पर

चोट की!

तब शब्दों को

मेरा बड़ा खयाल था,

मैं उनसे कहूँ-भर

तो उनका यह हाल था

कि अभी शब्द,

अभी महल अभी किले

अभी बैन

अभी बान, अभी बानों के सिलसिले

आधी रात को इशारा कीजिए,

एक अंगडाई लेकर तैयार।"[60]

आधुनिक कविता के विस्तृत परिप्रेक्ष्य में विभिन्न काव्य-प्रवृत्तियों के रचनाकार सक्रिय हैं। प्रगतिशील, जनवादी, प्रयोगवादी, निष्पक्षवादी पक्षधरता के कवि यदि जीवन-संघर्षों, रागात्मकबोध एवं सौंदर्यबोधी रूपांतरण की सृजना करते हैं तो अपनी अंतर्जटिलता में प्रयोगवादी-प्रगतिविरोधी रचनाकार भाषा, बिंब-प्रतीक, काव्य-विधा संबंधी विविधताओं में, दिग्भ्रमिता की रहस्यात्मक अनुभूतियों में खोये रहते हैं। जबकि जीवन संघर्षों जनवादी रचनाकार उपर्युक्त रूप-शैली अंतर्वस्तुगत सभी माध्यमों का जनसंप्रेषणीयता के लिए उपयोग करते हैं।

समसामयिक सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक दबावों में कोई भी आत्मचेतस रचनाकार, युगीन-एतिहासिक द्वन्द्व की सकारात्मक व नकारात्मक शक्तियों को पहचान लेता है और अपनी-अपनी शिक्षा दीक्षा, अनुभव-सौंदर्यबोध की प्रवृत्ति से चेतना के रूपांतरण में अपनी-अपनी भूमिका

---

[60] गीत फरोश-पृ.1-2

अदा करता है। जिसमें रचनाकार का केवल अनुभव बोध ही पर्याप्त नहीं होता है बल्कि उसके संवेगात्मक ज्ञानात्मक भावबोधों की कलात्मक संप्रेषणीयता प्रस्तुति भी काव्य सृजना की "समग्रता" में पर्याप्त महत्व रखती है।

आधुनिक कविता के सृजनात्मक द्वन्द्व में प्रगतिशील एवं प्रगतिविरोधी परिदृश्य एक सरलीकृत रूप में सक्रिय नहीं रहे बल्कि वे अपनी अंतर्जटिलताओं में युगसापेक्षता व रचनाकार की राजनैतिक चेतना व मानवीय सौंदर्यबोध से विकासशील बनते रहे हैं। प्रगतिशील एवं प्रगतिविरोधी कवियों की अपनी-अपनी रूपगत शैलियाँ रही हैं तथा उन शैलियों का विकास भी अनवरत होता रहता है। मुक्तिबोध के विचारानुसार भी पूर्वपक्ष की "नयी कविता में स्वयं कई भाव-धाराएँ रही हैं, एक भाव धारा नहीं। इनमें से एक भावधारा में प्रगतिशील तत्व पर्याप्त सक्रिय रहे हैं।"[61] जिसके विकासशील होने की संभावना उन्होंने स्वीकारी थी। नयी कविता के परवर्ती विकास के समकालीन दौर में, अब जहाँ विभिन्न पूर्ववर्ती और परवर्ती दौर के चार विभिन्न पीढ़ियों के रचनाकार सक्रिय हैं वहाँ उनकी अपनी-अपनी रचना-प्रक्रिया के वस्तुपरक विश्लेषण की विशद सम्भावनाएँ हो सकती हैं।

जाहिर है वस्तु और रूप की अंतर्द्वन्द्वी, सहवर्ती रचना प्रक्रिया में जहाँ भवानी प्रसाद मिश्र ने मुक्त-छंदों में यथार्थवादी रागात्मक संवेदनाओं को रूपायित करते रहे, प्रकृति-चित्रों को सौंदर्य-बहुल दृष्टि के साथ मानवीय सक्रियता व रागात्मक जीवन की दृष्टि सक्रिय रही तथा गंवई और शहरी विसंगतियों की मार्मिक अनुभूतियाँ, राजनैतिक चेतना की उदबोधन प्रवृत्यात्मकता गीतों व सामूहिक गीतों में, बिंब, प्रतीक आदि रूपों के माध्यमों में अभिव्यक्त हुई है।

5.5 लंबी कविता :

आधुनिक काल की प्रबंध कविता की विकासात्मक परिणती लंबी कविता में हो रही है। लंबी कविताओं के कई रूप आधुनिक काल में जन्में और विकसित हुए हैं। इनमें से एक काव्य रूप है पद्यात्मक निबंधों का। इन कविताओं में विचारों एवं भावों की मिश्रित श्रृंखला होती है। इनमें घटनाओं या वस्तु वर्णन की प्रधानता नहीं होती, वैचारिक एवं भावात्मक एकसूत्रता आवश्यक होती है। व्यक्तिप्रधान निबंध की तरह इन पद्यात्मक निबंधों में विषय के साथ रचनाकार की आत्मीयता होती है। इन पद्यात्मक निबंधों का प्रारंभ भारतेंदु युग में हो गया था। द्विवेदी युग में

---

[61] कृति-फरवीर, मुक्तिबोध-पृ.32, 1960

यह परंपरा विद्यमान रही। द्विवेदी युगीन इन पद्यात्मक निबंधों की तुलना में वस्तुपरकता बढ़ी है और भारतेंदु युगीन इन पद्यात्मक निबंधों की तुलना में वैयक्तिकता का स्पर्श कम हुआ है। द्विवेदी युग के बाद इस प्रकार के पद्यात्मक निबंधों की रचना में कोई उल्लेखनीय प्रगति नहीं हुई है, संभवतः इसलिए कि इस नवीन काव्य रूप की काव्यात्मक संभावनाएँ अधिक नहीं हैं।

आधुनिक काल में लंबी कविताओं का एक अन्य प्रकार विकसित हुआ है जिसे "पद्यकथा या अख्यान गीत" कहा गया है। इस प्रकार की रचनाओं का एक रूप वह है जिस में एक छोटी-सी एतिहासिक, पौराणिक या लोक कथा को सीधे-सीधे पदबद्ध कर दिया जाता है। इनके घटनाविन्यास शैली और रागतत्व या विचारादि में किसी प्रकार की जटिलता नहीं, इस प्रकार की रचनाओं का दूसरा प्रकार वह था जिसमें घटनात्मकता की तो प्रधानता रही, किंतु वस्तु-प्रधान आख्यान शैली का स्थान आत्माभिव्यक्ति की शैली ने ले लिया। अर्थात किसी सार्वजनिक घटना के प्रति किसी सार्वजनिक अनुभूति की इस रूप में व्यक्ति-संवेद्य अभिव्यक्ति की वह समष्टि के भाव का प्रतिनिधित्व करे, रचयिता का व्यक्तित्व उसमें तटस्थ व असम्पृक्त प्रतीत न हो तथा आत्मोल्लास और व्यक्तिपरक दृष्टिकोण से उसमें अंकन किये जाये।"[62] इन्हीं पद्यकथाओं को वस्तुतः "आख्यान गीत" कहा जा सकता है। यह अंग्रेज़ी के "बैलेड" (वीर गीत) के निकट का काव्य रूप है।

वस्तुतः आत्मकथात्मक लंबी कविताओं का एक और प्रकार या रूप विकसित हुआ जिसका उदाहरण भवानी प्रसाद मिश्र की "एक किरन अधिक भूल", "एक तरफा बातचीत-जीवन के प्रभु से", "खुशबू के सिलालेख", "शब्दों के तल्प पर" कविताएँ हैं। ये कविताएँ वस्तुतः घटना शून्य है। इनमें वर्णनात्मकता भी नहीं है। ये भावनाओं और विचारों को अभिव्यंजित करनेवाली कविताएँ हैं। इनमें भावनाओं और मुक्त चिंतन का आभास ये कविताएँ देती हैं। बहुत प्रयत्न करने पर इनमें एक सूक्ष्म वैचारिक श्रृंखला खोजी जा सकती है।

छोटी कविताओं में किसी भी पक्ष को कई पहलू से नहीं देखा जा सकता है जबकि लंबी कविता में एक ही मनःस्थिति को कई ढंग से प्रस्तुत किया जा सकता है। इस संदर्भ में भवानी प्रसाद मिश्र द्वारा डॉ.रामसुधार किसंह को लिखे पत्र के अंश को उदृत करना उचित होगा। "लंबी कविता में सिवा इसके कि वे लंबी होती है और उनका फलक बड़ा होता है, मैं कोई और अलग

---

[62] आधुनिक हिंदी काव्य में रूपविधान-पृ.297-98

बड़ी खूबी नहीं मानता। उनमें एक विचार या मनःस्थिति विस्तार से और सालंकार यानी खूब दिखाई दे सके ऐसे ढंग से कही जा सकती है- अनुपात तो उनमें भी हो सकता है। छोटी कविता में बात को सात-सात, आठ-आठ पहलुओं से नहीं देखा जा सकता है। आपने मेरी लंबी कविताओं में "खुशबू के शिलालेख" की अधिकांश और विशेषतः "शब्दों के तल्प पर" को सबसे अधिक विचारणीय माना होगा। "अनाम तुम आते हो" लंबी कविताओं का संग्रह है-विचारणी है।[63] लंबी कविता "अनाम तुम आते हो" कहा अनाम पूरी कविता में व्याप्त है। कभी सूरज की किरण की भांति, कभी धारा की तरह, कभी गति की तरह वह कवि को प्रभावित करता है और कवि के होठों को प्याले की भांति छू लेता है। "अनाम" को कवि कई पहलुओं में रखकर रूपायित करता है। "अनाम" का नाम जानने के लिए कवि की उत्सुकता देखने लायक है। यथा-

"तो भी अब मैंने आज
तुमसे तुम्हारा नाम पूछा है
या समझ लो
नहीं भी पूछा है
मगर वक्त आ गया है
अगर नाम है तो बताने का
और अगर नहीं है तो तय करने का।"[64]

सन् 1973 में प्रकाशित "खुशबू के शिलालेख" काव्य संकलन तथा सन् 1976 में "अनाम तुम आते हो" में भवानी प्रसाद मिश्र ने लंबी कविता के रूप का इस्तेमाल किया है। "एक किरन अधिक भूल", एकतरफा बातचीत जीवन के प्रभु से, दिशाएँ चार हैं, खुशबू के शिलालेख, शब्दों के तल्प पर, अनाम तुम आते हो, दो तुकडे देश, दस तुकडे जनम दिन, रात के खयाल में, अपनी झोली के दिन आदि कविताएँ देख सकते हैं।

"एक किरन अधिक भूल" लगभग एकतीस पृष्ठ की लंबी कविता है, जिसमें कवि ने आस्था के साथ अंधेरे मन को प्रकाश और रंग से भरना चाहा है। मृत्यु तो सब की होती है किंतु अपने भीतर जो जितने रंग और प्रकाश भरता है उतना गहरा इस धरती पर छोड़ जाता है। यथा-

---

[63] नयी कविता की लंबी कविताएँ:डॉ-पृ.58

[64] अनाम तुम आते हो-पृ.22

"जो जितने ज्यादा रंग
भरता है अपने भीतर
उतनी काली छाया छोड़कर
जाता है वह
एक दो दस शताब्दियों तक
अपने बाहर।"[65]

"शब्दों के तल्प पर" कविता एक ऐसी ऊंचाई पर हमें ले जाती है "जिसके आगे राह नहीं।" कवि ध्वनियों के माध्यम से हमें प्रज्ञाशिखर की सीढियों तक ले जाना चाहता है। सत्य और शिवं के साथ वह सौंदर्य की स्थापना चाहता है। पार्थिवता से ऊपर उठने की लालसा लिए हुए है। वह संदेह के अंधकार के स्थान पर सूर्योदय के आकांक्षी हैं-

"शिवता जब जहाँ नजर डालूं
वहीं दिख जाये
तब कोई एक ख्याल जो मेरा है
सार्थक हो और लिख जाये
सूर्योदय हर संदेह की दीठ में।"[66]

कवि शब्दों के हलचल नहीं, उसके गतिशील अर्थ को पकड़ना चाहता है। उसके प्राण अर्थवान गीत गाना चाहते हैं-शब्द अर्थों की घटा उठा दें और बरसे बाँधकर झडी। शब्दों की वह हलचल बेकार है जो मन के भीतर पड़ी परछाइयों की शोभा सूक्ष्मता से व्यक्त न कर पाये। कवि उनमें तीव्रता, सूक्ष्मता और गतिशीलता भरना चाहता है। शब्द की समवेत शक्ति से वह मन की सारी सौंदर्य धारा बहाना चाहता है जिससे सहज प्रेम, प्रबल, संघर्ष और अपार आनंद फूट पड़े। उन्होंने लिखा भी है-"मेरी समझ में", "होने के अंधेरे तथ्य" पर चेतना की चिनगारियाँ उछालते रहकर उसे मशाल की तरह जला देना ही आदमी के अस्तित्व का हेतु है। अवचेतना या अचेतन हमारे चेतन को जितना प्रभावित करते हैं उससे कई गुना ज्यादा चेतना के हाथों अवचेतन और अचेतन को प्रभावित किया जाना है। अलग-अलग लोग इसे अलग-अलग ढंग से करेंगे। मैं इसे

[65] खुशबू के शिलालेख-पृ.35
[66] खुशबू के शिलालेख-पृ.144

कविता की प्रक्रिया से गुज़रकर करना संभव देख पा रहा हूँ।"[67] शब्दों के गतिशील सूक्ष्म अर्थों को वह अपनी समूची काव्य साधना समर्पित कर अपने भीतरी अस्तित्व का दर्पण बनाना चाहता है जहाँ आत्मा की तहें भी साफ-साफ प्रतिबिंबित हो उठें। चाँद कहते ही मन के भीतर की चाँदी छिटक जानी चाहिए और वृक्ष शब्द लिखते ही पूरी तरह पेड़ों की कतार हरहराना चाहिए। यह है शब्द शक्तियों का चमत्कार जो भवानी प्रसाद मिश्र के काव्य साधना का लक्ष-

"जैसे जब मैं कहता हूँ
किसी भी संदर्भ में चाँद
तो जितनी चाहता हूँ मैं
मन के भीतर उतनी चांदनी
क्यों नहीं उससे छिटकती
या जब मैं लिख देता हूँ
किसी पंक्ति में वृक्ष
तो पूरी वह सतर की सतर
हरहराती क्यों नहीं है।"[68]

जिस प्रकार शब्दों का प्रयोग इस कविता में हुआ है, दरअसल शब्दों का प्रयोग कोई साधारण बात नहीं है, वह साधना है। कवि केवल इस बात से संतुष्ट नहीं है कि उसके शब्द अंधेरी गलियों में किरनें बन जायें, सूने विस्तारों में अभय प्रदान करे, एकाकी स्थिति में साथी बनकर किसी पड़ाव तक पहुँचा दें, वह तो शब्दों के अर्थों की सर्प जैसी तीव्र गति और तारा के प्रकाश जैसी क्षिप्रता चाहता है ताकि गंतव्य तक पहुँच सके। जब रेत का कण चक्रवात में पड़कर आकाश तक जा सकता है तब शब्द कवि के मन की तपन में तपकर बादल बनकर क्या धरती पर नहीं बरस सकता। इससे मन का मरुस्थल भी सरसता पावेगा और मानव मात्र पर, सृष्टि की अनगिनत चीज़ों पर उसका प्यार बरसेगा-

"वाणी का ऐसा ऐश्वर्य
शब्दों के अर्थों से खिंचकर बरसे
तो सरसे कम से कम

---

[67] बुनी हुई रस्सी-पृ.10
[68] खुशबू के शिला-पृ.151

मेरे मन का बंजर विस्तार।"[69]

मिश्रजी की ये भावनाएँ तथा संवेदनाएँ कोई "यूरोपिया" नहीं है, क्योंकि उन्हें छोटे बच्चों से दोस्तों तथा विदेशी अतिथि से, गरीब किसान से है। ध्वनियाँ सुहावनी और सार्थक होती हैं। ध्वनियाँ शब्दों से कहीं बहुत आगे उन्मुक्तता प्रदान करती है-

"निरर्थक हों ध्वनियाँ तो भी
संभावनाएँ सार्थकता की
बहुत जागती है ये मुझमें
शरण भर दें पाते हैं सार्थक शब्द
मुक्त कर देती हैं ध्वनियाँ।"[70]

कवि इन ध्वनियों में केवल खो नहीं जाता बल्कि मानव हितार्थ इनका उपयोग करना चाहता है। ये ध्वनियाँ ही तो संबंध जोड़ती है वृक्ष से, नदी से, बादलों से, जंगलों से। चालीस वर्षों तक कवि ने शब्दों की प्रवाहमान धारा के किनारे बैठकर शब्दों की तरंगें और वर्णों की छटाएँ देखी हैं-

"शब्दों की जिस नदी को
चुनने का संयोग मिला है
वह मेरे भाग्य से नर्मदा है।"[71]

कवि की गहन साधना का मंतव्य यह है कि इन ध्वनियों के अर्थ अधिक से अधिक उस पर खुलें और मन की गहनतम स्तरों मालिन्य घुलकर स्वच्छ और शुभ्र हों-

"कि रचते-रचते कभी अपने मन की ऋतुएँ
लीन हो जाऊँ निर्वात अपने ही प्राणों में ऐसा
कि दिए जले निष्कंप अर्थों के अवधान में
उतरें रूप और अरूप, नाद और अनहद।"[72]

कवि बिना किसी दबाव या तनाव के अभय की स्थिति में आ गया है। क्योंकि अभय तो शब्द, स्वर और ध्वनि का पहला देय है। और यह देय कवि में जन्मजात अवतरित हुए हैं। डॉ.संतोष कुमार ने कहा है-"इन की ध्वनियों के "रूप" पर जहाँ नये-नये अर्थों और अभिप्रायों में

---

[69] खुशबू के शिलालेख-पृ.153
[70] खुशबू के शिलालेख-पृ.156
[71] खुशबू के शिलालेख-पृ.157
[72] खुशबू के शिलालेख-पृ.159

डूबकर हर्ष, उल्लास की स्थिति आती है, झूठे विचारों के दंभ नष्ठ हो जाते हैं और कला अपने निसर्ग रूप में जन्म लेती है।"[73] जहाँ आज के कवि तथाकथित नग्न रूपों से नाता जोड़कर आडंबर करते हैं वहाँ मिश्रजी खेत, वन और धारा के स्पंदनों में डूबे ध्वनियों के रहस्य में खोये हैं।

"अनाम तुम आते हो" संकलन में लगभग चौंसठ पृष्ठों की लंबी रचना है-"दो तुकडे देश, दस तुकडे जनम दिन" नामक इस कविता में कवि की पूरी जिंदगी का एक सर्वेक्षण है, ऐसी जिंदगी जो "विद्रोह का उच्चारण" सीख गई थी और उसके ख्याल "इंक्लाब जिंदाबाद" सीख गये थे। भारत और पाकिस्तान के दो तुकड़ों में हम आज़ाद हुए, मोह भंग हुए और जिंदगी एक खालीपन के सिवा कुछ न दे सकी। फलस्वरूप कवि ने सात-सात दिल के दौरे सहन किये। प्रभात फेरी का स्वर और खादी का तार ही नहीं टूटा, जंगली सुगंधों से हीन हवाओं ने आ घेरा। नेह का दरिया और प्रेम का ज्वार आदमी के निकम्मेपन को सोख लिया। फिर भी कवि देह, बुद्धि, मन को सही ढंग से बरतने और समझने की बात को रेखांकित करता है और हमें जीने का छंद देना चाहता है। वह ठहराव के खिलाफ है-

"बहाव का आधार पानी है
विचार का वाणी है
विचार रम न जाए
पानी की धारा थम न जाए
तो सब ठिकाने लग जाते हैं
फूल पत्ते लकड़ी नावें दीप
और शरीर
सुगंध और प्रकाश
और विश्वास
और इच्छाएँ अधीर।"[74]

हम सब एक त्रिकोण में जीते हैं-खटना, खाना और सो जाना। इसी कारण हम क्षण-भंगुरता का उत्सव तो मनाते हैं अमरता का नहीं। भूत और भविष्य के टुकड़ों में जिंदगी जीना

---

[73] भवानी प्रसाद मिश्र की काव्य यात्रा-पृ.112
[74] अनाम तुम आते हो-पृ.66

ठीक नहीं। तीन कालों की समग्रता को एक-एक तागे में तागकर कवि जीना चाहता है और आदमी की असंख्य संभावनाओं को वह पूरे ब्रह्माण्ड में देखता है-

"जिसे करने के ख्याल से
बड़े से बड़े लोग जिये
हो नहीं पाया वह आज तक
इसीलिए आज नहीं होगा
ऐसा मत जानों
अपने आप को पूरा ब्रह्मांड जानों।"[75]

दरअसल इस कविता की विशेषता यह है कि आज़ादी के पूर्व और बाद की राष्ट्रीय स्थिति का संक्षिप्त लेखा-जोखा प्रस्तुत करती हुई कवि की सक्रिय जिंदगी का संदर्भ पेश करती है और मनुष्य की सामर्थ्य तथा गरिमा को अनंत संभावनाओं से जोड़ती हुई संघर्षशील आस्था को रेखांकित करती है।

अवधिहीन छोरों से लौटकर कविता मूलतः समयातीत स्थिति की शांत और विलीन स्थिति को अभिव्यक्त करती है-

"अपने को शून्य, शांत और
विलीन कर लिया है मैंने
ऐसा कि न मेरे वर्तमान है
न भूत है न भविष्य....
मैं एक शांति एक सुंदरता
एक लय और एक विलय
की स्थिति में आना चाहता हूँ।"[76]

"रात के खयाल में" नामक कविता में भवानी प्रसाद मिश्र के भारतीय चिंतन का प्रमाण देती है क्योंकि इसमें एक ग्राम की शाम और शहर की शाम का चित्र प्रस्तुत करते हुए शहरी संस्कृति के विरोध में ग्राम्य-जीवन को खड़ा किया गया है। जब गाँव की संध्या में लोग घर लौटते हैं और गृहिणी सांझ-बाती में लग जाती है तब चित्र कवि प्रस्तुत करता है-

---

[75] अनाम तुम आते हो-पृ.83
[76] अनाम तुम आते हो-पृ.90

"शहर की शाम से
इसका क्या वास्ता है
रास्ता यहाँ का तो अब
दिन से भी ज्यादा व्यस्त है
क्योंकि दलों में अब
पंछी नहीं आदमी लौट रहे हैं
और अब आकाश नहीं
सड़क व्यस्त है
प्रकाश भी यहाँ
उस क्षण से
ज्यादा-ज्यादा बढ़ता जा रहा है
जब से सूरज अस्त है।"[77]

कवि ने विज्ञान की चकाचौंध में खो जाने वाली शहरी संस्कृति को ग्राम्य-संस्कृति के समानांतर रखकर तुलनात्मक चित्र, बिंब प्रस्तुत किया है। जब शही साने जाते हैं तब गाँव वाले खेतों, नदियों की ओर। कवि ग्राम्य जीवन को भारतीय परिवेश में देखना चाहता है।

5.6 हाइकु (त्रिपदीप) :

हाइकु काव्य रूप नवीनतम विधा है जिसका आविर्भाव 1959 में अज्ञेय की काव्यकृति "अरी ओ करुणा प्रभामय" के साथ स्वीकारा जाता है। कुछेक समीक्षकों के मतानुसार भारत में हाइकु का आगमन 1923 ई. में रवींद्रनाथ टैगोर की बंगला कृति "जापानी यात्री" में हाइकु विवेचन-विश्लेषण के साथ हुआ। इस प्रकार हायकु अपनी चार दशक की यात्रा पूरी कर रहा है। यह काव्य सबसे छोटी एवं सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। डॉ.नामवर सिंह के शब्दों में-"हाइकु केवल एक छंद, एक काव्य नहीं बल्कि एक पूरी संस्कृति है।" आज के परिप्रेक्ष्य में यह तथ्य विचारणीय है कि विगत दो दशकों से हाइकु काव्यधारा में अधिक प्रवाह एवं गतिशीलता आई है। द्रुतगति से हाइकु का सर्जन एवं प्रकाशन इसका जीता-जागता साक्ष्य प्रस्तुत करता है। इसका रसास्वादन पाठकों के आकर्षण का केंद्र बिंदु है तथा रचनाकारों की वैयक्तिक अनुभूति को अभिव्यक्ति देने का

[77] अनाम तुम-पृ.106

एक सशक्त माध्यम। हाइकु की सूक्ष्मता, संक्षिप्तता तथा प्रभावोत्पादकता इसकी मंद गति के लिए उत्तरदायी हैं। कम्प्यूटर और इलेक्ट्रानिक मीडिया की होड ने आज मानव को सूक्ष्म से सूक्ष्मतर की ओर अग्रसर होने हेतु आकर्षित किया है तथा अल्प समय में असीमित आकांक्षाओं एवं अभिलाशाओं की पूर्ति हेतु व्याकुल कर दिया है। यही कारण है कि समयाभाव के कारण पाठक, श्रोता एवं रचनाकारों के लिए हाइकु काव्य-विधा आज के परिवेश में अधिक सार्थक एवं उपयोगी सिद्ध हो रही है। विश्व की सबसे छोटी काव्य-विधा हायकु भविष्य में अधिक लोकप्रिय एवं महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है।

हायकु काव्य की रचना 5-7-5 अक्षरों के सामंजस्य से होती है जिसका स्वतंत्र अस्तित्व अलग-अलग होते हुए भी आपस में एक दूसरे से पूर्णरूपेण समन्वित है। भारत में हाईकु "जापानी कविताएँ" शीर्षकान्तर्गत 1977 में प्रकाशित हुआ तथा 1978 ई. में "हाइकु क्लब" की स्थापना प्रो.सत्यभूषण वर्मा की अध्यक्षता में हुई। इस प्रकार हाइकु पत्र के माध्यम से देश-विदेश के हाइकु रचनाकार एक दूसरे के संपर्क में आए तथा हाइकु काव्य रूप के लिए अनुकूल वातावरण तैयार हुआ।

कविताएँ या तो बिंबात्मक होती हैं या सूक्तिपरक। नीचे उद्धत भवानी प्रसाद मिश्र की कविता "अनुत्तर स्थिति" सूक्तिपरक है। यथा-

"जहाँ उत्तर है
वहाँ नहीं है
प्रश्नोत्तर।"[78]

तथा "अति संकरी" कविता भी देखी जा सकती है-

"यह अच्छी
रचना
रची
अलग
खड़े रहने तक की
जगह नहीं बची।"[79]

---

[78] संप्रति-पृ.49
[79] संप्रति-पृ.57

ऊपर विवेचित किया जा चुका है कि "हायकु" में छोटी कविता तथा त्रिपदीय रचना का समावेश होता है। अतयव भवानी प्रसाद मिश्र की साठोत्तर काव्य संग्रहों में "त्रिपदीय" रचना का रूप देखा जा सकता है। चकित है दुःख, अंधेरी कविताएँ, बुनी हुई रस्सी, व्यक्तिगत, अनाम तुम आते हो, परिवर्तन जिए, इद न मम, शरीर कविता फूल और फसलें, संप्रति, तूस की आग, नीली रेखा तक संकलों में मिश्र जी का प्रिय छंद त्रिपदीय रहा है। यथा-

"बैठ गया उसकी
गोद में जैसे
डाल कर पाँव।"[80]

तथा

"चलने फिरने की
फिर भी बड़ी
गुंजाइश है इसमें।"[81]

तथा

"उन लाखों तारों को
जिनका मैं
कुछ नहीं जानता।"[82]

तथा

"हिल नहीं लगते
उस तरह
पेड़ जामुन का।"[83]

तथा

"कि साधारण जन
ठीक जन है

---

[80] व्यक्तिगत-पृ.86
[81] व्यक्तिगत-पृ.82
[82] व्यक्तिगत-पृ.102
[83] व्यक्तिगत-पृ.109

उससे मिलो-जुलो।"[84]

तथा

"गीता पढ़ने वाली

मेरी बेटी को

चमेली की क्षुप को।"[85]

छोटी कविताओं के संदर्भ में भवानी प्रसाद मिश्र ने अपनी रुचि जाहिर करते हुए लिखा है कि-"किसी न किसी कारण से मुझे इन दिनों अपनी छोटी कविताएँ अधिक प्रिय लग रही है। इन्हें लिखकर मुझे बहुत अच्छा लगा है। जितना अच्छा कविता लिखकर पहले कभी नहीं लगा।"[86] साठोत्तरी के संकलन लगभग छोटी कविताओं के ही हैं जो कालांतर में मिश्र जी के कविताओं का "रूप" परिवर्तित होता गया है।

निष्कर्ष :

"वस्तु और रूप" को सैद्धांतिक विवेचन में निरूपित किया जा चुका है कि श्रेष्ठ काव्य के लिए उसका सह-अस्तित्व होना जरूरी है। लगभग सभी समीक्षकों ने वस्तु और रूप की संरचना को स्वीकारा है।

कवि अपने युग में उठनेवाले आंदोलन, अंतर्विरोधों से आंदोलित होकर रचना सृजन करता है। सम-सामयिक युग में उठनेवाले सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक तथा साहित्यिक आंदोलनों, परिवर्तनों को विषय-वस्तु बनाकर कलात्मक अभिव्यक्ति देता है जिसके चलते नये-नये रूप-विधान विकसित होते हैं। विषय-वस्तु परिवर्तनशील होता है। अतः कवि तत्युगीन विषय-वस्तु को प्रभावकारी बनाने के लिए नये-नये काव्य रूपों का इस्तेमाल करता है। अध्याय पांच में पायेंगे कि भवानी प्रसाद मिश्र के काव्य में भी "वस्तु और रूप" का विकासात्मक विश्लेषण हुआ है। यथा कवि का काव्य रचना में आगमन उस समय होता है जब देश भर में स्वतंत्रता की लडाई जोरों पर थी। साहित्यकार इस लडाई को साहित्य के माध्यम से जोर लगा रहे थे। भवानी

---

[84] व्यक्तिगत-पृ.94

[85] व्यक्तिगत-पृ.96

[86] बुनी हुई रस्सी-पृ.12

प्रसाद मिश्र जी भी इससे अछूते नहीं रहे और उम्र की 17 वर्ष की अवस्था में नरसिंहदास अग्रहवाल के गीत के जवाब में लिखें-

"मैं माता का पूत, कसौटी का कोई पत्थर ले जाए

मुझ में ऐसी रेखा खिंचेगी, जिससे सोना भी शरमाए।"

मिश्रजी समसामयिक युग के अनेक आंदोलन झेले हैं। कवि मन के युवावस्था के सामने छायावाद का वर्चस्व था किंतु छायावादी व्यक्तिगत-स्वप्नलोक तथा सूक्ष्मता में मिश्र जी नहीं खोये। बशर्ते प्रारंभिक रचनाओं में "गीत फरोश", "तारसप्तक", "चकित है दुःख" में छायावाद का प्रभाव देखा जा सकता है किंतु लोक चेतना के कारण उनकी सौंदर्य चेतना यथाथ्र में विश्लेषित हुई है। उन्होंने यथार्थ प्राकृतिक सौंदर्य एवं समस्याओं को काव्य में बोलचाल की भाषा में रूपायित किया। मार्क्सवाद से प्रभावित प्रगतिवाद में यथार्थ लेखन का जन्म होताहै। वैज्ञानिक आविष्कारों ने जीवन स्तर पर परिवर्तन ला दिया और मनुष्य की हैसियत को कम कर दिया। बेरोजगारी, बेनाम, गुमनाम परिस्थितियों को व्यंग्यात्मक एवं बोलचाल तथा प्रश्नोत्तरी रूप में अभिव्यक्त किया। प्रयोगवाद में लगभग मिश्रजी की लेखनी नये-नये बोझिल विषय-वस्तु को लेकर प्रयोग करने लगी और दूसरे-सप्तक के प्रथम कवि रहे। मुक्त-छंद के प्रयोग में मिश्रजी अव्वल रहे। प्रारंभ में मिश्रजी लंबे-लंबे चरणों वाले छंदोबद्ध कविताएँ लिखते थे किंतु प्रयोगवाद में परिपक्वता के चलते लयधार, वकृत्व कला का निषेध कर बातचीत का लहजा ही अपनाया। वर्तुलाकार लय, वस्तु रूप का अन्यथाकरण, स्वगत में मुक्त संवाद का रूप में विश्लेषित कविताएँ यथा पक्के घर पक्के आदमी, शब्दों के तल्प पर, आदेय का सपना, कोई कहे, आदि में प्रयोगवाद के अंश देखे जा सकते हैं। नई कविता में छायावाद, प्रगतिवाद तथा प्रयोगवाद के भावतत्व और रूपतत्व के प्रति असंतोष प्रकट होने लगा था। भवानी प्रसाद मिश्र नई कविता के क्षण में नैराश्य, कुण्ठा, संत्रास, हताश, टूटन, द्वेश-घृणा आदि विषय-वस्तुओं को नये-मूल्य दिए और भविष्य के प्रति विश्वास जगाया। सतपुडा के जंगल, जंगल में मंगल, आशा गीत आदि कविताओं में जिजीविषा का विश्लेषण हुआ है।

* * * * *

उपसंहार

कविता किसी विचार की प्रवक्ता बनकर या भावानुवाद करके सामाजिक स्थिति और मनोदशाओं का चित्रण नहीं कर सकती। यह सत्य है कि विचार या दर्शन की आवश्यकता समाज को है किंतु कविता में आनेवाला विचार या दर्शन वही नहीं होता जो राजनीति और धर्म तथा आध्यात्म में होता है। रचनात्मक शक्ति विचारों में विहित जड़ता को तोड़ती भी है। वह कवि अपने भीतर विचारों की थाति संजोए काव्य की रचना करता है न कि काव्य के माध्यम से विचार या दर्शन का प्रचारक बनता है। विचार को स्वीकार करते हुए, काव्यात्मकता की रक्षा करते हुए कविता करना ही कवि का धर्म होता है। कविता में विचार का होना बहुत जरूरी है न कि विचार में कविता करना। कवि विचारों और काव्य तत्वों को आपस में घुलामिलाकर, अपने अनुभवों से जोड़कर उसे प्रस्तुत करता है। मुक्तिबोध की शब्दावली में कहें तो बाह्य का अभ्यांतरीकरण और आंतरीकरण का बाह्यकरण है। कवि ने यदि विचार को सतही स्तर पर स्वीकार कर, मानस की गहराई से उसका सरोकार नहीं स्थापित किया है तो कविता की संरचना-वस्तुगत और रूपगत दोनों स्तरों पर डगमगाने लगती है।

प्रस्तुत प्रबंध में ऊपर विवेचित विचार, दर्शन तथा काव्य में विषय-वस्तु और रूप को दर्शाया गया है। पहला अध्याय है-"वस्तु" और "रूप" का सैद्धांतिक विवेचन। इसके अंतर्गत बताया गया है कि "वस्तु का अंतर्विधान अंतर्वस्तु कहलाता है, जिसमें इंद्रिय-बोध, भाव-बोध और विचार का समावेश होता है तथा कल्पना भी इसमें अपना सहयोग करती है। कृति में रचना-प्रक्रिया के दौरान अर्जित मूल्य ही उसकी अंतर्वस्तु में समाहित हो पाते हैं न कि उसका विषय। काव्य की अंतर्वस्तु, विषय-वस्तु से भिन्न होती है। काव्य की वस्तु, अर्थात मनस्तत्व कवि मन के भीतर की अर्थतत्व की व्यवस्था का ही एक भाग होता है। यह अंर्ततत्व बाह्य-जीवन-जगत के आभ्यांतरीकरण का जो सिलसिला बचपन से जारी होता है, उसी के विकसित रूप में उपस्थित होते हैं। अंर्तवस्तु से ही कविता का रूप बदलता है इसलिए नवीन प्रक्रिया पहले अंर्तवस्तु के धरातल पर होती है। प्रसिद्ध विचार अर्न्स्ट फिशर ने "रूप" को गौण नहीं माना है। रूप को भी क्रांतिकारी कहा जा सकता है, जिसमें गति और परिवर्तन निहित होता है। वस्तु लगातार बदलती रहती है, कभी वह अज्ञात ढंग से बदलती है तो कभी बड़ी तीव्र के रूप में

बदलती है। वह रूप के साथ संघर्ष करती हुई एक धमाके से रूप के अस्तित्व को मिटा देती है और नये रूपों को जन्म देती है, जिनमें परिवर्तित वस्तु कुछ समय के लिए एक बार फिर स्थायित्व पाता है। कविता की वस्तु और उनके रूप में होनेवाले परिवर्तन कवि के ऊपर पड़नेवाले सामाजिक दबावों के कारण भिन्न हो जाते हैं। नगरों-महानगरों को देखने की गति और लय नयी पद्धतियों का इजाद करती है। वह उसी तरह प्रकृति के उपमानों को नहीं देखता और न प्रफुल्लित होता है, जिस तरह एक किसान होता है।

प्रस्तुत प्रबंध के अध्याय दो में भवानी प्रसाद मिश्र के व्यक्तित्व जिसमें उनका युवावस्था से लेकर प्रारंभिक लेखन प्रक्रिया से होते हुए युगीन-परिप्रेक्ष्य का विवेचन किया गया है।

भवानी प्रसाद मिश्र की काव्य-यात्रा मूलतः सन् 1930 से आरंभ हुई है। तत्कालीन अनेक वादों से मिश्रजी की रचना-यात्रा गुजरी है किंतु उनकी विशेषता रही कि वे समकालीन किसी भी प्रवाह में नहीं बहे। गांधी दर्शन के प्रति उनकी आस्था है परंतु यह दर्शन मूलतः आदर्श अर्थ में उन्नत करने का प्रयास किया है। उनका विचार था कि कविता में वह शक्ति होनी चाहिए, जो समसामयिक स्थितियों में उलझे सामान्य व्यक्ति को भी सही दिशा निर्देशित कर सके। अनास्था, कुंठा, पलायन जैसे अवधारणाओं का विरोधकार आधुनिक संदर्भ में जीवन के विविध आयामों को बदलकर नयी गति, विकास तथा मानवीयता और विश्वकल्याण की बात की है।

प्रस्तुत प्रबंध के अध्याय तीन में भवानी प्रसाद मिश्र के काव्य में विवेचित "वस्तु" का विश्लेषण किया गया है। रचनाकार इंद्रिय-बोध के माध्यम से वस्तु-जगत से जुड़ जाता है। तथापि बिना इंद्रिय-बोध के भी "वस्तु" विद्यमान रह सकता है। परंतु बिना वस्तु के इंद्रिय-बोध के अवकाश नहीं होता। वस्तु ही एकमात्र रचनाकार के लिए वास्तविकता है। काव्य में दो प्रकार के "वस्तु" माने गये हैं। एक व्यक्तिपरक, दूसरा वस्तुपरक काव्य-वस्तु। मनुष्य एक क्रिया है अपने मनुष्य होने के कारण। मनुष्य कोई बना-बनाया वस्तु नहीं होता, वह परिवेश के घात-प्रतिघात से बदलता-घड़ता है। प्रकृति को मनुष्य मानवीय प्रकृति बनाता है। दूसरी ओर सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक आदि व्यवस्थाओं में उसकी द्वन्द्वात्मक स्थिति संभावनाओं को संभव करती है, आशा जगाती है। यही चेतना उसके मनुष्य होने की पूर्व शर्त है। संपूर्ण जगत में मनुष्य ही है जो अपने होने को पहचानता है। मनुष्य की यह चेतना सौंदर्य नियमों के अनुसार रचनारत होती है और प्रकृति के बदलते नियमों में गढ़ते हुए मानवीय क्रिया चलती है। यही मानवीय जीवन-क्रिया स्वभावतः विषय-वस्तु का पद ग्रहण करता है। इसका स्पष्ट विवेचन

मिश्रजी के अद्योपांत काव्य में हुआ है। प्रारंभिक काव्य संग्रहों तथा "गीतफरोश", "चकित है दुःख", "गांधी पंचशती", "खुशबू के शिलालेख", "बुनी हुई रस्सी", में मानवीय भाव का वर्णन मिलता है। आधुनिक युग के बदलते परिवेश में औद्योगीकरण, भ्रष्ट राजनीति, बेरोजगारी, गरीबी के चलते जनता में उठनेवाले अधर्म, अन्याय, पीड़ा, त्रासदी तथा आक्रोश, व्यथा जैसे विषय-वस्तु का "त्रिकाल संध्या", "अनाम तुम आते हो" आदि कविता संग्रहों में वर्णन हुआ है।

हमारे जीवन में आदमी पर भरोसा अर्थात आदमीयत पर भरोसा सबसे अधिक आवश्यक माना गया है, क्योंकि वर्तमान औपनिवेशिक विकास उसे विरूपित कर रहा है। यह भरोसा जितना भी दृढ़ होगा हमारे जीवन का विकास उतना ही सरल होगा। वे चाहते थे कि यह आस्था और विश्वास उसी श्रेणी और स्तर का हो जितना सूर्य का सारी सृष्टि के लिए है। इसी क्रम में के जीवन के उन मूल्यों को भी रेखांकित करते हैं जिनसे आपसी प्रेम, सौहार्द और पारस्परिकता बढ़ती है। प्रेम का फलक विराट हो जाता है। वह किसी देश, जाति, काल या संस्कृति के घेरे में आबद्ध होकर नहीं रह जाता और संपूर्ण विश्व-मानवता, विश्व-कल्याण उसका लक्ष्य हो जाता है।

प्रस्तुत प्रबंध के अध्याय चार में भवानी प्रसाद मिश्र के काव्य में विवेचित "रूप" को दर्शाया गया है। रूप के अंतर्गत कविता का फार्म आता है। यह एक प्रकार से रचनाकार का रचना-कौशल है। इसके द्वारा कविता की आंतरिक ढांचे में रंग-सृष्टि होती है। प्रत्येक कवि अपने भावों को मूर्त रूप प्रदान करते समय अपने व्यक्तित्व को उससे अलग नहीं रख पाता। अतः हर कवि एक जैसे शब्द-चयन, वाक्य-प्रयोग, ताल-लय नहीं करता। इसी कारण प्रत्येक कवि का रचना-स्वरूप भिन्न-भिन्न होता है। कविता में कोई भी अभिव्यक्ति मात्र विचारों से जुड़कर पूर्ण नहीं होती वरन् कवि जिस भाषा का उपयोग करता है-उसके शब्द-प्रयोग, मुहावरे, सरल बातचीत का लहजा और एक हद तक व्याकरण तथा शब्दों का सृजन भी उसके विचारों के परिचायक हो जाते हैं। अतः कवि के रूप अर्थात् भाषा-प्रयोग, बनावट उसकी विचारधारा से गंभीरता से जुड़े होते हैं और कविता कवि की आस्थाओं, विश्वासों और विचारों की अभिव्यक्ति के साथ ही, उसकी भावनाओं, आवेगों और अनुभूतियों से सरोकार स्थापित कर लेती है। क्योंकि बताया जा चुका है "रूप" का अस्तित्व वस्तु-प्रक्रिया के भीतर ही तय होता है।

कविता में प्रयुक्त शब्दावली का वस्तुपरक अर्थ ही नहीं होता वरन् उसका एक गूढ़ार्थ भी होता है। इसी कारण एक सच्चा कवि हमेशा सब कुछ नये सिरे से करने के बारे में प्रयत्न नहीं

करता वरन् जहाँ तक विकास हो चुका है वहाँ से आगे की ओर जाने की चेष्टा में "रूप" शिल्प को नवीन आयाम देने की सोचता है। इसी को मुक्तिबोध ने "कला का तीसरा क्षण" कहा है। भवानी प्रसाद मिश्र ने भाषा की सहजता को स्वीकार कर सही दायित्व को निभाया है। भाषा की सहजता के कारण इनकी लगभग संपूर्ण कृतियाँ सामान्य जनता तक के लिए सक्षम बनी है। रूमानी और लावण्य भरी भाषा से परे, सीधी, सरल तथा बोलचाल, आम आदमी के जिंदगी की भाषा को अपनी लेखनी में उतारे हैं। पाठक के लिए कोई उलझन पैदा नहीं करती। भाषा जिंदगी के जितने समीप हैं उससे ज्यादा जिंदगी में भुनी है। गीतफरोश, कवि सन्नाटा, सतपुडा के जंगल, गाँव, शरीर और फसलें, कविता और फूल आदि कविताओं में बोलचाल की भाषा का इस्तेमाल हुआ है। वैसे समकालीन कविता में ऐसे कवियों की संख्या कम है, जिनके यहाँ विषय वस्तु और रूप की इतनी विविधता हो। अनुभूति के बादल जब फट पड़ते हैं, तब भवानी प्रसाद मिश्र की कविता का अविराल प्रवाह मचल उठता है। उनकी कविताओं का चरित्र लोकतांत्रिक है। सामाजिक यथार्थ के चित्रण में मुक्तिबोध की तरह उन्होंने फंतासी और मिथक का सहारा नहीं लिया। इसका कारण यह है कि उनका कवि-व्यक्तित्व जटिल न होकर, सहज है। उनके उद्‌गार इसीलिए सहज और स्वच्छंद है। भाषा एकदम बोलचाल के करीब है। वड्‌र्सवर्थ कहता था कि कविता की भाषा विषय के निकट और सहज होनी चाहिए सो इस पर मिश्र जी खरे उतरे हैं।

प्रस्तुत प्रबंध के पाँचवे अध्याय में भवानी प्रसाद मिश्र के काव्य में "वस्तु और रूप" का विकासात्कम विश्लेषण हुआ है। प्रारंभकालीन प्रकृति सौंदर्य के रागात्मक विषय वस्तु का चित्रांकन, रमणीय, अनुभूतिपरक और सूक्ष्म है। कवि "पावस" का गायक बनकर पहला पानी का पागल हो जाता है। अंधेरी कविताएँ दरअसल जीवन के समूचे आशय को समझने का उपक्रम है, क्योंकि अंधेरा कवि के मन को प्रकाश देता है और आत्मचिंतन को प्रखरता प्रदान करता है।

भवानी प्रसाद मिश्र के पूर्ववर्ती काव्य में वस्तु और रूप यथा "गीतफरोश" से "व्यक्तिगत" तक तथा परवर्ती काव्य संग्रह यथा "अनाम तुम आते हो" से "नीली रेखा" तक में वैविध्य अर्थात वस्तु और रूप विकासात्मक होता गया है। पूर्ववर्ती काव्य संग्रह में "रूप" को कवि शब्दों की ध्वनियों द्वारा बारीकी से पकड़ा है। शब्द संयम में पूरे योगी बन गये हैं-"शब्द का सही उपयोग/योग है/मनमाना उपयोग उसका/भोग है/और विनाशकारी है।" वास्तव में बातचीन का लहाजा, जो कविता में संबोधित करते हैं और साथ ही आत्मकथात्मक मालूम होते हैं।

"अनाम तुम आते हो", "परिवर्तन जिए", "इद न मम", और "त्रिकाल संख्या" काव्य संग्रह पर नज़र डालने से स्पष्ट होता है कि इनमें अपात काल की दुर्दशा, जयप्रकाश की भूमिका और आदमी की असंख्य संभावनाएँ विषय-वस्तु बनकर मानवीय गरिमा के साथ अभिव्यक्त हुई है। कवि पहले अपनी जिंदगी का एक सर्वेक्षण करता है, जहाँ उसने विद्रोह के उच्चारण सीखे थे, फिर उसे मोह भंग की स्थिति में रिक्तता का अनुभव। फिर भी कवि बुद्धि और मन के ठीक से बरतने तथा समझने के साथ हमें जीने का छंद देना चाहता है, जहाँ निरंतर गतिशीलता दिखाई देती है।

परवर्ती रचनाओं में एक खण्डकाव्य "कालजयी" है जो अशोक की कलिंग विजय के बाद उसकी मनोदशा के अन्तर्वस्तु का चित्रण मानवीय करुणा को रूपायित करता है। "शरीर कविता फसले और फूल", "सम्प्रति", "नीली रेखा तक" आदि काव्य कृतियों में कहीं भाषातीत स्थितियों का जिक्र है। यहाँ जिस विषय-वस्तु का विवेचन हुआ है उसमें रोजमर्रा के दुःखों के बीच आशा-आस्था और जिजीविषा का स्वर है। यहाँ आदमीयत सर्वोपरि मुखर उठी है। इस तथ्य को स्वीकारना होगा कि परवर्ती काव्य में समसामयिक युगबोध अपने दबावों, तनावों और यातनाओं के साथ खुलकर व्यक्त हुआ है। यहाँ क्रांति, परविर्तन और राजनीतिक स्थितियों के उलटफेर की सुगबुगाहट ज्यादा है। पूर्ववर्ती काव्य में प्रकृति के सौंदर्य चित्रों का जो ज्यादा ही प्रभावशाली रहा है। सामाजिक भावभूमि और मनुष्य केंद्रित जीवन दृष्टि उनमें क्रमशः प्रखर होती गई है। परवर्ती काव्य में आख्यान काव्य रूप के जरिए जो मानवीय करुणा, अहिंसा और स्नेह को रेखाकित करने की चेष्टा की है। इसमें अधिक सबलता, सक्षमता और मार्मिकता मुक्त-छंद की छोटी-बड़ी रचनाएँ दृष्टव्य हैं। परवर्ती काव्य में छोटी तथा हायकू रूप का प्रयोग बढ़ता गया है। शिल्प की दृष्टि से व्यंग्य रचनाओं में "गीतफरोश" जैसी कालजयी रचना परवर्ती काव्य में दिखाई नहीं देती। "सतपुडा के घने जंगल" जैसी भी रचना परवर्ती काव्य में नहीं मिलती। "त्रिकाल संध्या" में कॉकस की भूमिका अदा करते प्रारंभिक कविता "चार कौवे उर्फ चार हौवे" कविता को प्रतीकात्मक रचना की ख्याति प्राप्त हुई है।

* * * * *

ग्रंथ सूची

आधार ग्रंथ

रचनाकार	किताब	प्रकाशक एवं प्रकाशन	संस्करण
भवानी प्रसाद मिश्र	गीतफरोश	सरला प्रकाशन, दिल्ली	द्वितीय
भवानी प्रसाद मिश्र	चकित है दुःख	सरला प्रकाशन, दिल्ली	1968 प्र
भवानी प्रसाद मिश्र	अंधेरी कविताएँ	सरला प्रकाशन, दिल्ली	1968 प्र
भवानी प्रसाद मिश्र	गांधी पंचशती	सरला प्रकाशन, दिल्ली	1969 प्र
भवानी प्रसाद मिश्र	बुनी हुई रस्सी	सरला प्रकाशन, दिल्ली	1971 प्र
भवानी प्रसाद मिश्र	खुशबू के शिलालेख	सरला प्रकाशन, दिल्ली	1973 प्र
भवानी प्रसाद मिश्र	व्यक्तिगत	सरला प्रकाशन, दिल्ली	1974 प्र
भवानी प्रसाद मिश्र	परिवर्तन जिए	सरला प्रकाशन, दिल्ली	1976 प्र
भवानी प्रसाद मिश्र	अनाम तुम आते हो	सरला प्रकाशन, दिल्ली	1976 प्र
भवानी प्रसाद मिश्र	इद न मम	सरला प्रकाशन, दिल्ली	1977 प्र
भवानी प्रसाद मिश्र	त्रिकाल संध्या	राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली	1978 प्र
भवानी प्रसाद मिश्र	कालजयी	भारतीय साहित्य प्रकाशन, मेरठ	1978 प्र
भवानी प्रसाद मिश्र	शरीर कविता फसले और फूल	पश्यन्ती प्रकाशन, मेरठ हापुड	1980 प्र
भवानी प्रसाद मिश्र	मानसरोवर दिन	पराग प्रकाशनण दिल्ली	1980 प्र
भवानी प्रसाद मिश्र	सम्प्रति	किताब घर, दिल्ली	1982 प्र
भवानी प्रसाद मिश्र	नीली रेखा तक	-	1984 प्र
भवानी प्रसाद मिश्र	तूस की आग	हिमाचल पुस्तक भंडार, दिल्ली	1985 प्र

संदर्भ ग्रंथ

रचनाकार	किताब	प्रकाशक एवं प्रकाशन	संस्करण
अज्ञेय, वात्सायन	दूसरा सप्तक	भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली	1970 द्वितीय
अज्ञेय, वात्सायन	तीसरा सजक	भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली	1968
अज्ञेय, वात्सायन	आधुनिक हिन्दी साहित्य	राधा प्रकाशन, दिल्ली	1967
अज्ञेय, वात्सायन	आत्मनेयपद	भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली	1971 प्र
आनन्दवर्दन	ध्वन्यलोक	चौखम्भा संस्कृत सरोज, वारणासी	1917 प्र
अरविंद	सजक काव्य	मैकमिलन प्रकाशन, दिल्ली	1976
आर्य, देवेंद्र	हिन्दी संत काव्य में प्रतीक विधान		
इस्सार, देवेंद्र	साहित्य और आधुनिक, युगबोध		
किशोर, नवल	मानववाद और साहित्य	राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली	1972
केडिया, लक्ष्मण(संपादक)	भवानी प्रसाद के आयाम	समकालीन सृजन, कलकत्ता	1995 प्र
कृष्णबल प्रतिमा	छायावाद का काव्य शिल्प		
खण्डेलवाल, रामेश्वर	जयशंकर प्रसादः वस्तु और कला	नेश्नल पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली	1998
खगेन्द्र(लेखक)	भवानी प्रसाद मिश्र (संपादक)प्रेमशंकर रघुवंशी		
खण्डेलवाल,रामकुमार	हिन्दी काव्य और प्रयोगवाद	विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा	1959
गडकर, राजकुमारी	भवानी प्रसाद मिश्रःव्यक्ति और कृतित्व	अन्नपूर्णा प्रकाशन, कानपुर	1992 प्र
गुलाबराय, बाबु	भारतीय संस्कृति की रूपरेखा	ग्वालियर रवीन्द्र प्रकाशन	1974
गुप्त, प्रकाशचंद्र	साहित्य धारा		
गुप्त, जगदीश	नई कविता स्वरूप और समस्याएँ	भारतीय ज्ञानपीठ, वारणासी	1969

चौव्हान, शिवदान सिंह	आलोचना के मान		
जैनेन्द्रकुमार	अव्वल पुरूष गांधी	पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली	
जैन, कांतिकुमार	नयी कविता	हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल	1972 प्र
जैन, निर्मला	रस सिद्धांत और सौंदर्य शास्त्र	नेशनल पब्लिशिंग हाउस,	1967 प्र
जैन, निर्मला	साहित्य का समाजशास्त्रीय चिंतन	दिल्ली विश्वविद्यालय, प्रकाशन	
जैन, निर्मला	आधुनिक हिन्दी काव्य में रूपविधान	नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली	1963 प्र
जैन, नेमिचन्द (संपादक)	मुक्तिबोध रचनावली	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली	
जोशी, अरविंद	हिन्दी साहित्य पर गांधी विचार धारा का प्रभाव		
तिवारी, विश्वनाथप्रसाद	नये साहित्य का तर्कशास्त्र	संस्कृति प्रकाशन, अहमदाबाद	1989
तिवारी, विश्वनाथप्रसाद	कविता क्या है?		1989
तिवारी, संतोषकुमार	नयी कविता और भवानी प्रसाद मिश्र	भारतीय ग्रंथ निकेतन, दिल्ली	
तिवारी, संतोषकुमार	भवानी प्रसाद मिश्र की काव्ययात्रा	भारतीय ग्रंथ निकेतन, दिल्ली	1976 प्र
तिवारी, अजय	प्रगतिशील कविता के सौंदर्य-मूल्य		
द्विवेदी, हजारी प्रसाद	अशोक के फूल	लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद	
दिनकर, रामधारी सिंह	रेती के फूल	उदयांचल प्रकाशन, पटना	1965
दिनकर, रामधारी सिंह	शुद्ध कविता की खोज	उदयांचल प्रकाशन, पटना	1973
देवराज	संस्कृति का दार्शनिक विवेचन		
नगेन्द्र	भारतीय साहित्य कोश	नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली	

नगेन्द्र	आस्था के चरण	नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली	1968
नगेन्द्र	सुमित्रानंदन पंत-छायावाद		
प्रेमचन्द	कुछ विचार	अलाहाबाद, सरस्वती प्रकाशन	1973
पाण्डेय, कमलाप्रसाद	छायावाद प्रकृति और प्रयोग	रचना प्रकाशन, इलाहाबाद	1972 प्र
पाण्डेय, मेनेजर	साहित्य और इतिहास दृष्टि		
पंत, सुमित्रानंदन	पल्लव-प्रवेश	भारती भंडार, प्रयाग	संवत 2005 वि
बच्चन, हरिसंशराय	नये पुराने झरोखे	राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली	1967
मार्क्स, ऐंगेल्स	कम्युनिष्ट पार्टी का घोषणा पत्र(अनुवाद)	प्रगति प्रकाशन, मास्को	
मुक्तिबोध, गजानन माधव	एक साहित्य की डायरी	भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली	1976
मुक्तिबोध, गजानन माधव	नये साहित्य का सौंदर्यशास्त्र	राधा क्रिशन प्रकाशन, दिल्ली	1971
मुक्तिबोध, गजानन माधन	कामायनीः एक पुनर्विचार	विमाशु प्रकाशन, जबलपुर	1961
मुक्तिबोध,	नयी कविता का आत्म संघर्ष तथा अन्य निबंध	विश्व भारती प्रकाशन, नागपुर	1977
मुदिराज, शशि	छायावाद में आत्माभिव्यक्ति	परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद	1980 प्र
मुदिराज, शशि	द्विवेदी युगीन हिन्दी कविता और ठाकुर गोपाल शरण सिंह	रुचिर प्रकाशन, नागपुर	प्रथम 1988
मिश्र, रामदरश	हिन्दी कविता के तीन दशक	ज्ञानभारती प्रकाशन, दिल्ली	1969
मिश्र, भगीरथ	काव्यशास्त्र	विश्वविद्यालय प्रकाशन, वारणासी	1996
मिश्र, शिवकुमार	नया हिन्दी काव्य		
मिश्र, स्मिता	गीतफरोशःसंवेदना और शिल्प	वाणी प्रकाशन, दिल्ली	1995 प्र
रघुवंशी, प्रेमशंकर	भवानी भाई	सरला प्रकाशन, दिल्ली	

रविरंजन	प्रगतिवादी कविता में वस्तु और रूप	मिलिन्द प्रकाशन, हैदराबाद	1995 प्र
रेवतीरमण	समकालीन कविता का परिप्रेक्ष्य	नवनीत प्रकाशन, इलाहाबाद	1994 प्र
रघुवंश	प्रकृति और काव्य		
रोहिताश्व	समकालीन कविता और सौंदर्य बोध	वाणी प्रकाशन, दिल्ली	1996 प्र
वर्मा, नरेन्द्र	आधुनिक पाश्चात्य काव्य और समीक्षा के उपादान		
वंशी, बलदेव	उपनगर में वापसी		
वर्मा, महादेवी	साहित्यकार की आस्था तथं अन्य निबंध	लोक भारती प्रकाशन	1966 प्र
वाजपेयी, अशोक	फिलहाल	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली	1970
वाजपेयी, नन्ददुलारे	नया साहित्य नये प्रश्न		
शर्मा, रामविलास	भाषा और समाज	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली	
शर्मा, रामविलास	प्रगतिशील साहित्य की समस्या		
शर्मा, रामविलास	स्वाधीनता और राष्ट्रीय साहित्य		
शर्मा, रामविलास	आस्था और सौंदर्य	किताब महल, इलाहाबाद	1990
शर्मा, रामविलास	लोक जीवन और साहित्य	विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा	1955
शर्मा, रामविलास	परम्परा का मूल्यांकन	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली	1981
शुक्ल, रामचन्द्र	चिंतामणी	इंडियन प्रेस, अलाहाबाद	1981
सहगल, शशि	नयी कविता में मूल्यबोध	अभिनव प्रकाशन, दिल्ली	1976 प्र
सोनवलकर, दिनकर	गांधीमार्ग		
सिंह, विजयबहादुर (संपादक)	आज के हिन्दी कवि : भवानी प्रसाद मिश्र	राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली	1993
सिंह, नामवर	कविता के नये प्रतिमान	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली	1968

सिंह, नामवर	छायावाद	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली	1968
सिंह, नामवर	इतिहास और आलोचना	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली	1978
सिंह, शंभुनाथ	समकालीन हिंदी कविता का परिप्रेक्ष्य और नवगीत		
सिंह, रामसुधार	नयी कविता की लंबी कविता	राधा पब्लिकेशन, दिल्ली	1993 प्र
सिंह, वीरेंद्र	प्रतीक दर्शन	मंगल प्रकाशन, जयपुर	1977 प्र
सिंहल, शशिभूषण (संपादक)	साहित्यानुशीलन आधुनिक हिंदी साहित्य		
Bennett, Tony	Formulism & Marxism	London Methuen & Co. limited.	1979
Caudwel, Christopher	Illusion and Reality	Peoples Publishing House, Delhi, First India. Ed.	1947
Eaglton, Terry	Criticism and Idealogy	Verso Deidtion, London, third Ed.	1982
Erlic, Victor	Russion New Formalism, History, Doctrin	New Heavan and London, Yale University Press, Third Ed.	1981
Jameson, Fredric	Marxist Easthetics		
Lukas, Georg	Writer and Critic (Translation)	Merlin Press	1978 Reprint ed, Ed.
Marx, Karl	A contribution to the critic of political Economy (Translation)	Progress publisher, Mascow	1984 Reprint ed, Ed
Burtrand Russel	The History of Western Philosophy		
Seldon, Raman	Readers Guide to Contemporary Literature theory	Harvester wheat sheat, New York	1989

William, Raymond	Marxism and literature	Oxford University press, Oxford	1977 Ed.

पत्र-पत्रिकाएँ

1. साक्षात्कार : मार्च-मई 1981, पृ.97
2. नई दुनिया :25 फरवरी, 1973, पृ.59
3. कल्पना अंक 274, पृ.5
4. श्री शारदा (जबलपुर) अंक सितंबर 1902, पृ.340
5. पूर्वग्रह:दिसंबर 1974, पृ.
6. हरिजन
7. साक्षात्कार:नवंबर-दिसंबर, 1985, पृ.121

* * * * *